श्रीमती विश्वास

[जीवन की नाना परिस्थितियो के भीतर से झाँकनेवाली
एक समुज्वल नारी का अध्ययनपूर्ण सामाजिक उपन्यास]

लेखक

श्रीलक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी

प्रकाशक

साहित्य-प्रकाशन,
मालीवाडा, दिल्ली

प्रकाशक
साहित्य-प्रकाशन,
मालीवाड़ा, दिल्ली।

१९५५
[प्रथम संस्करण]
मूल्य - चार रुपया।

मुद्रक
रसिक-प्रिंटर्ज़,
५, सन्तनगर, करोल बाग,
दिल्ली ५

श्री महावीर 'त्यागी'

समर्पण

उन निर्भीक आत्माओ को, जिन्होने हमारे राष्ट्र का गौरव
बढाने में अपने जीवन का सर्वस्व अर्पित किया है, मै
अपने देश के अमर इतिहास का एक अग मानता हूँ।
उनकी महामहिम गरिमा और त्याग के आगे श्रद्धा से
मेरा मस्तक नत है। उनको तो मै राष्ट्रीय
अभिमान की दृष्टि से देखता हूँ, जो इस इति-
हास मे स्वर्णाक्षरो में अङ्कित है! ऐसे महान्
त्यागी, महामहिम श्रीत्यागी जी को—
सादर, समर्पित!

—लक्ष्मीचन्द्र बाजपेयी

भूमिका

इस उपन्यास को पढ कर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। हिन्दी काल्पनिक-साहित्य में "मिसेज़ विश्वास" का एक विशिष्ट स्थान होगा—इसमें मुझे सन्देह नही। लेखक ने इस नारी-रत्न के चरित्र-चित्रण मे अपूर्व सफलता पाई है। कहानी रोचक और हृदयग्राही है, साथ ही भारतीय आदर्शों की भी इसमें पूरी झलक मिलती है। इसके सभी पात्र—मिसेज विश्वास, सतीश, गिरीश, भाभी, मुन्ना, अविनाश, विमल, भीखू—सजीव है, हमारे बीच है, हम उनसे परिचित हैं। वे केवल कल्पना की सृष्टि नही हैं।

इस उपन्यास के पढने में अनेक स्थलो पर काव्य का रस मिलता है। श्री वाजपेयी जी की लेखन शैली अत्यन्त मनोरम है। इस उत्तम रचना पर उनको अनेक बधाइयाँ!

पटना
१२-५-५५

अमरनाथ झा

उपन्यास से पूर्व

जब सघन तमिस्त्रा मे, झाडियो के झुरमुट से, मक्खी जितनी जुगनू की रश्मि भी झलक उठती है, तब मै सोचता हूँ कि यह मृत्यु के अन्तर को चीर कर प्रस्फुटित हुआ जीवन-सकेत है ! जब भयकर हाहाकार एव मर्मान्तिक उत्पीडन हृदय की सीमाओ मे समा नही पाते और आँखो के सकुचित मार्ग से मोती की तरह झलक उठते है तब भी मै सोचता हूँ कि ये जीवन को व्यक्त कर रहे है ! अहर्निशि जन-जन के कोलाहल में जब श्रम, सघर्ष, बुद्धि और मानवात्मा की अन्तश्चेतना के अनन्त स्वर मेरे कर्णरन्ध्रो से टकराते और मेरी व्यस्त जीवन-धारा को एक ओर फेक सहसा दृष्टिगत हो ही जाते हैं, तब भी मै सोचता हूँ, यह जीवन है। और जब असफलताओ की सीढियाँ कालान्तर मे सफलता के पद-चिह्नो का स्पष्टीकरण बन जाती हैं, तब भी मै सोचता हूँ कि यह जीवन की व्याख्या है।

आज हिन्दी कथा-साहित्य के आँगन मे कथाकारो का जो लम्बा 'क्यू' लगा है, उसमे मै कहाँ हूँ, इतना जानता हूँ। आगे बढने के लिए मेरे पीछे खडे बन्धु जो हल्ला मचा रहे है, और मेरे जो अनेक अग्रणी कुछ ऐसी विचित्र स्थिति मे है कि न स्वय आगे बढते है, न मुझे आगे बढने का अवसर देना चाहते हैं, सघर्ष के नाम पर जिनके हाथ मे 'डिसआनर्ड' चेक है, मेरे हृदय मे उनके लिए भी कम सम्मान नही है। वस्तुस्थिति की उपेक्षा मे उनकी हठधर्मी का जो हिंसात्मक बलप्रयोग है, उस पर मै क्या करूँ, मुझे तरस आ ही जाता है। इसलिए नही कि मुझे अपने प्रति कोई असन्तोष है, इसलिए भी नही कि प्रतिस्पर्धा का

जलन से मै आक्रान्त हो गया हूँ, वरन् इसलिए कि साहित्य, कला और सस्कृति के उत्थान-मार्ग मे यह एक बहुत बडी बाधा है ।

मै बाधाओ का सहर्ष स्वागत करता हूँ ! जो मेरी कहानी इसलिए नही पढते कि उनको कहानी पढने का समय नही है, जो इसलिए नही पढते कि Superiority-ComPlex के शिकार हो चुके हैं और जो विदेशी कहानियो को मुट्ठी मे लेकर राष्ट्र-भारती के पावन किन्तु कोमल शरीर पर ककड की तरह मारना चाहते है, उन सबसे मुझे कहना है कि पहले देख लो, परख लो और तब कुछ कहो, तो मै उस पर विचार करूँगा । और दलबन्दी, प्रचार प्रदर्शन और सुनी-सुनाई, घिसी-पिटी धारणाओ एव मान्यताओ को लेकर यदि आप अपने विवेक का सयम भूल जाना चाहते है, तो मुझे केवल यह कहना है कि भविष्य सोया नही है, सोता भी नही है और वह सदा जागता ही रहेगा ।

कलाकार श्री शैलेन्द्रकुमार दत्त और कवि श्रीबैजनाथ गुप्त ! एक सन्ध्या को, रेस्ट्रा मे, चाय पीते समय आप लोगो ने जो एक सादी और ताजी नोट-बुक दी थी, पता नही था, वह ऐसी वाचाल होगी और कालान्तर मे एक कथा कहेगी !—लीजिए, आप लोग भी सुनिए और मुझे छुट्टी दीजिए ! अच्छा, धन्यवाद— नमस्कार !

त्रिवेदी-भवन, लाटूशरोड,
कानपुर, जून, ५५

—लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी

मझे बदल दे,
नवावरण दे,
ताकि मैं अपने
आत्म-विश्वास को,
एक बार फिर से,
अमिट होता देख लूं,
अमर होता देख लूं !

डायरी का एक महत्वपूर्ण, किन्तु क्रम-विशृङ्खलित जीवन-पृष्ठ ! जिस पर न दिनाङ्क अङ्कित है, न मास ही । इनकी न तो कल्पना की जा सकती है और न अनुमान ही लगाया जा सकता है ।

: १ :

फिर तूफान आ गया । दिशाएँ बवण्डर से धूमिल होकर भारी एवं बोझिल हो उठीं । विषाद की एक गहरी कालिमा प्रकृति के मुख पर चित्रित हो उठी । पक्षी इधर-उधर शरण के लिए दौड़ पड़े । घने अन्धकार से वातावरण अवरुद्ध और आच्छादित हो उठा । ऐसा प्रतीत हुआ, जीवनव्यापी प्रमत्त हाहाकार—आगे-पीछे, दाएँ बाएँ, चारों ओर—सर्वत्र, विद्रूप अट्टहास कर रहा है—ह ह ह ह !

सन्ध्या । मैं नीचेवाले ड्राइङ्गरूम में आया और धम्म से, एक ओर सोफे पर जा गिरा । थकान ज्यादा थी । उद्देश्यहीन जीवन और अनियमित गति-मति के कारण मन अवसाद से भरकर डूबने लगा ।

ड्राइङ्गरूम की वह अलस उदासी काटने लगी । फिर वही ड्राइङ्ग रूम—नीरव, शुष्क और प्राणहीन, चेतनारहित ! कठोरता उसकी ईंट-ईंट में जैसे समा गई हो । कब इस जीवन से मुक्ति मिलेगी ? फिर वही गहरी निराशा की काली बदली और फिर वही भयङ्कर तूफान··· ·तूफान का वेग······क्रुद्ध दिशाएँ और विषादपूर्ण वातावरण···· !

मै सिहर उठा, कॉप उठा। नहीं, तूफान नहीं, मानव-जीवन की प्रच्छन्न, छलनामयी स्मृतियो की गहरी प्रतिक्रिया का एक सजीव चित्र, एक तीव्र झटका, एक असंतुलित, विशृङ्खलित—अस्त-व्यस्त—जीवन का कटु नग्न स्वरूप और मायावी जीवन का एक तन्द्रिल स्वप्न··

मै सोच रहा हूँ, आखिर मै इस प्रकार अग्निशिखाओ को अपने जीवन के जीर्ण-शीर्ण आवरण में समेटने, भर लेने का जो दुर्दमनीय प्रयास कर रहा हूँ, क्या वे मुझे जलाकर, मिट्टी मे न मिला देगी? लेकिन नही, मानव-सुलभ केन्द्रित शक्ति का अबाध प्रमाद शैल शिखर मे निकलती वेगाकुल सरिता का निर्विरोध, उद्धत, उद्दाम प्रवाह··

× × ×

स्वप्न?—नहीं, स्वप्न से भी महान्, मोहक, रुचिर, भव्य किन्तु करुणामय भी ·!

मै मानता हूँ, मैने गलतियाँ की। मैने क्यो कीं, मै स्वय नहीं जानता। मुझे न करनी चाहिए थी, यह आज जानते हुए अपनी तब की अज्ञानता पर बरबस लज्जा का बोध इसलिए नही करता कि आज फिर अनेक बाते जानते हुए भी—अनजान में—उनकी पुनरावृत्ति करता चलता हूँ! ऐसा क्यो है, इसका भी उत्तर आप मुझसे न पा सकेंगे।

बस, ऐसा लगता है, एक गतिमान प्रवाह है, नियति-सचालित एक प्रवेगमय तूफान है, झंझावात से आन्दोलित एक विक्षुब्ध वातावरण है, जिसमें मै तृणवत्—नियति के सकेत पर—उडता चलता हूँ!—कहाँ, कौन जाने!—विवश हूँ, असमर्थ हूँ और परवश भी!

व्यथा और करुणा मानव-जीवन के एकान्त क्रोड मे दुबकी, छिपी, बैठी मिलेगी। मृगशावको की भाँति अनुकूल समय और वातावरण पाकर वे चञ्चल कुलाँछे मारने लगेंगी; निकल कर ही दम लेंगी, आन्दोलित कर देंगी ··और?—और ऐसा लगेगा जैसे कहाँ अनजान बनकर

एक महा अम्बुधि में डूबा जा रहा हूँ। तूफान ने कहाँ से लाकर यहाँ इस सख्त चट्टान पर, शिला पर पटक दिया है !

जी नहीं, आप मुझसे यह भी न जानें कि मैं आज क्या हूँ, कहाँ हूँ ! मैं भले ही कुछ लगाता रहूँ, पर जान पड़ता है कि जहाँ तब था, वहाँ से भी खिसक कर नीचे—बहुत नीचे—आ गिरा हूँ। ज्ञानोपार्जन से लोग ऊपर जाते हैं पर ज्ञान-भार से दब कर मैं नीचे कैसे और क्यों आ गया, इसका विश्लेषण भी आप करें, तो उसे भी अब मैं मिथ्या ही स्वीकार करता हूँ। मुझसे यह न होगा ··न होगा ! अब मुझे आप बिलकुल न उलझाएँ, व्यथित न करे !

उलझनो, स्मृतियो से आप खेलवाड करे, मैं न उलझूँगा, मैं खेलवाड़ भी नही करूँगा। बस, मैंने भर पाया। मैंने एक निश्चय कर लिया है। मुझे अब आप छोड ही दीजिए। मुझे इसी तरह पडा रहने दीजिए। मुझे दुखाइए नही, जरा भी, आह !

बौना होकर यदि मैं चाँद छूने की चेष्टा करूँगा, तो आप मेरी बुद्धिमानी मे शङ्का करेगे। साधारण-सा मनुष्य होकर यदि मैं उन्हें अपनी कलम मे लपेटने का साहस करूँगा, तो निश्चय ही मेरा मजाक बनेगा। मैं तुला लेकर बैठ गया हूँ और पहले अपने को ही तौलना प्रारम्भ किया है। हिसाब-किताब कुछ समझ नही सका, सब कुछ भूल गया हूँ। तब मैं भला आपको अपना लेखा जोखा समझाने का अधिकारी कैसे मान सकता हूँ ?—नही मान सकता, जी नही, किसी तरह नहीं !

तब, ठीक उसी तरह जैसे वायु का एक मन्द, मादक झोका आकर निकल जाता है और कुछ क्षण तक रजनीगन्धा की भीनी-भीनी सुवास मन-प्राण को, अणु-अणु को मुखरित करती रहती है।

× × ×

पहाड की उन मीठी-मीठी बातो, रातो और घातो को नही भूल

सकता ! चेष्टा करने पर भी शायद नहीं भूल सकूँगा। कारण, भूलने की चेष्टा करन का अप्रत्यक्ष रूप से तात्पर्य उसकी स्मृति को और अधिक तरो ताज़ा—सरसब्ज़—करने से होता है। इसलिए हो सकता है, जब मैं अपने आपको भूल जाऊँ, तब उस बेखुदी के आलम मे उन्हें भी भूल जाऊँ ! पर अभी तो मै अपने को—अपने आपको—पहचान रहा हूँ। इसलिए उन्हे भी, स्मृति-कोष मे, अन्धे की लकड़ी की भाँति, बडी सावधानी से, सुरक्षित किये हुए हूँ !

इधर स्वास्थ्य कुछ गिर गया था। एक दिन क्लब में नगर के मित्र हेल्थ-ऑफिसर डॉक्टर रामकुमार माथुर ने इस ओर मेरा ध्यान आकर्षित करते हुए जब यह कहा—'अच्छा तो यह होगा, आप कुछ समय के लिए मसूरी चले जाइए या किसी अन्य हिल-स्टेशन पर ! वायु-परिवर्तन से आपको बडा लाभ होगा।' तब अनायास ही मेरी मसूरी जाने की इच्छा बलवती हो उठी।

लौट कर घर आया तो देखता हूँ—भाई साहब एक कुर्सी पर बैठे 'सूरसागर' देख रहे हैं। कमरे मे सन्नाटा है। एक व्यक्ति कोने की ओर छाते मे झोला डाले हुए बैठा है। भाई साहब उससे बोले—'अभी उत्तर लिखे देता हूँ। दो मिनट ठहरो।' शायद वह कहीं से, किसी का, पत्र लाया था और उत्तर की प्रतीक्षा मे बैठा था। अब भाई साहब मेरी ओर देख कर बोले—"आज बड़ी देर कर दी सतीश !"

मैंने कहा—"जी, क्लब मे हेल्थ-ऑफिसर मिल गये थ ..."

मेरी बात अभी पूरी भी न हो पाई थी कि भइया बीच मे ही, चश्मा उतारते हुए बोल उठे—"कौन, वो रामकुमार बाबू ?"

"जी, आपको भी पूछ रहे थे और ... ?"

"और क्या ?"

"कह रहे थे कि अच्छा हो तुम कुछ समय के लिए मसूरी चले जाओ

या किसी अन्य हिल-स्टेशन पर !"

"बात तो ठीक कही उन्होंने। तुम कभी गये भी नही । इधर तुम्हारी तन्दुरुस्ती भी कुछ बहुत अच्छी नही कही जा सकती !—चले जाओ, क्या बुरा है ? रामलाल को ले-लो खाना बनाने के लिए और भीखू सेवा करने के लिए साथ चला जायगा !" एक क्षण के अन्दर भाई साहब ने अपना निर्णय ही नही दिया, बल्कि सारी व्यवस्था भी कर दी।

नवयुवक। सम्पन्न परिवार। सुविधाएँ थी। विचार आया और धारणा को कार्यरूप मे परिणत करने की व्यवस्था मे लग गया । किन्तु आज ? ''आज धारणा और विश्वास, सस्कार और दृष्टिकोण बिलकुल बदल गये है । ऐसा लगता है, अभाव की प्रतिक्रिया ही जीवन का वह स्फुलिंलग है, जिसके द्वारा कर्मठ और समयचेता व्यक्ति, गलतियो से नसीहत लेकर, महानता की महामहिम, गरिमामयी उन्नति-शिखा को छू अपने को कृतार्थ कर लेता है।

मेरा मित्र अविनाश उन दिनो मसूरी मे ही था। इस सम्बन्ध मे उससे पत्रव्यवहार हो चुका था।

होल्डाल, ट्रंक, अटैची, सूटकेस, बरफ से भरा थरमस, फल और नीबू आदि से भरी डोलची के अतिरिक्त रामलाल और भीखू को साथ ले, भाई साहब और भाभी के चरणो की धूलि मस्तक पर लगा, मुन्ना को चूम-पुचकार कर, मैं मसूरी-यात्रा के लिए चल पडा।

स्टेशन पर आकर, चलने से कुछ समय पूर्व, मैंने अविनाश को इस आशय का तार भी दे दिया—मै कल प्रातःकाल दस बजे तक मसूरी पहुँच रहा हूँ।

अब ट्रेन आगे खिसक रही है—पहिले धीरे, फिर तेजी से और फिर अधिक गति के साथ।—और मेरी दृष्टि अब भी उस पीले बोर्ड

पर लगी हुई है जिस पर गहरे काले अक्षरो मे लिखा हुआ है—कानपुर।

···और अब वे काले अक्षर धुन्ध की पृष्ठिभूमि मे शनैः-शनै विलीन होकर आँखों से बिलकुल ओझल हो गये—बिलकुल, जैसे कही खो गये हो।

: २ :

जीवन मे शैलश्रृग देखने का यह पहला अवसर था। अपने से बडे वृद्ध-जनो से सुना करता था कि पहाड बहुत भारी, बहुत ऊँचे, बड विस्तार मे होते है, लेकिन उनसे इनकी वास्तविकता का चीटी भर परिचय न मिल सका था। आज देखता हूँ—ये इतने ऊँचे है कि बादल इनके पास से छूते हुए चले जाते है। ये बादल से भी ऊँचे है। आकाश की नीलिमा उन पर ऐसी छाई हुई है, जैसे यह सारा ससार एक शामियाने के अन्दर आ गया हो और यह आकाश उसके ऊपर स्वच्छ चाँदनी की तरह तना हुआ हो।—और ये पत्थर?—ये इतने बडे है कि ससार की कोई भी शक्ति इनका कन्धा तक नही हिला सकती! पता नही, ये कब से इसी तरह, सजग प्रहरी की भाँति खडे, देश की रखवाली कर रहे है! कितने युग बीत गये, बचपन और जवानी कितनी इनकी बीत गई, क्या ये प्रारम्भ से ही ऐसे सपुष्ट वृद्ध रहे है!—एक हँसी खेल गई। और इनका वक्ष कितना बलिष्ठ है कि इनके रोओ को जड बनाकर पेड-के-पेड, जगल-के-जंगल, खडे हो गये है! जितने ये ऊँचे है, उससे अधिक गहरे है और इनकी गहराई भी अद्भुत है। एक गहराई समाप्त नही होने पाती कि दूसरी प्रारम्भ हो जाती है। अरे! यह मै क्या देख रहा हूँ? अपने गाव के, नगर के, घरों मे सूर्य को सदा सामने ही उगता हुआ देखता था, यहाँ देख रहा हूँ कि यह हमारी ऊँचाई से कितना नीचे है। मगर मै यह क्या कह गया? हमारी ऊँचाई है कहाँ?—हम पहाड पर चल रहे है, इस लिए यह ऊँचाई तो उसी की है!

हमारी ट्रेन आगे बढ रही है। कभी-कभी उसमे ऐसे मोड आते है, कि सबसे पीछेवाले कम्पार्टमेण्ट दाँई आँख के सामने रेंगते हुए जान पड़ते है। अच्छा, ये पहाड़ कभी आपस में बाते नही करते? इनके

होठ कभी खुलते नहीं ? और ये हँसते भी नही ? लेकिन मैंने उस दिन समाचारपत्र में पढा था कि नैनीताल मे सरोवर के उत्तरवाली चोटी नीचे ढह गई।—तो जान पडता है ये कभी-कभी हँसते है। 'और ये जो कही-कहीं इनसे पानी टपक रहा है, तो क्या इनके जीवन मे भी कभी कोई दुख आता है ? इनको भी रोने का अवसर मिलता है ? या ऐसा है कि प्रातःकाल का समय है, ये अपना मुँह धो रहे हों और इसलिए यह पानी टपक रहा हो। नही, नही, ऐसी बात नही है। ये तो जड है। लेकिन मैं यह क्या देख रहा हूँ ?—यहाँ तो अच्छा खासा झरना झर रहा है। अच्छा, तो यह बात है ! कहने मात्र को ये जड हैं। हृदय इनका झरने की तरह आँखो से झरता रहता है। खूब ! और यह हरियाली ? ऐसा जान पडता है कि कठोरता और मुलामियत इन पर्वतों ने एक साथ पाई है। मगर यह तो पुष्प का गुण है कि सुगन्ध निस्सरण के साथ-साथ सँभल कर न चलो, तो निकट ही निकला और उगता हुआ कण्टक धोती, पायजामा और पेण्ट का स्वागत करबैठेगा। कहने को पहाड जड, मूक, बधिर, पगु और उसमे इतने गुण हैं ? और ये पहाडी मकान दूर से ऐसे जान पडते हैं कि श्वेत चादर पर किसी ने लाल रग के छीटे डाल दिये हो। इतनी दूर से इन मकानो के आगे खडे हुए आदमी भुनगे से रेंगते हुए जान पडते हैं—अद्भुत। यहाँ आने पर यह प्रतीत हुआ कि आँखे भी मनुष्य को कितना धोखा देती है। अच्छा, इन पहाडो को जाडा कभी नही लगता ? इनके ऊपर बर्फ की ठडक भी कोई प्रभाव नही डालती। इनको नमूनिया नही होता कभी ? क्या पागलपन है ? मैं यह भूल ही जाता हूँ कि ये जड हैं, यद्यपि यह स्वीकार करने को जी नही चाहता कि ये जड हो सकते हैं। जड पदार्थ भी कही इतने सुन्दर होते है ?

अच्छा प्रश्न है—एकदम मूर्खता से भरा हुआ। सुन्दरता सदा जड़ होती है, निर्मम, कठोर। न विनय की वह कभी परवाह करती है, न

शील और सौजन्य की ही ?

अब लक्सर से हमारी गाडी देहरादून पहुँची और देहरादून से हम कार द्वारा मसूरी आ गये। ट्रेन में हमारे साथ जो लोग थे, उन मे से एक ऐसा परिवार भी हमारे साथ चल रहा था, जिसके आदमी से, भीखू की कुछ झपड़ हो गई थी। मै लैवेटरी मे से सुन रहा था।

अभी-अभी कुछ समय पहले साथ चलने वाले परिवार के महाशय शायद नीचे की बर्थ पर फैले हुए मेरे बिस्तर पर पैर रखकर ऊपर की बर्थ पर चढ रहे थे। क्योकि पहले से ही वे वही लेटे थे। जूते के तल्ले का दाग देखकर भीखू कुछ भुनभुनाने लगा। उसकी देहाती भाषा के ये शब्द मेरे कानो मे आये थे—"माफ कीन्हों बाबसाहेब, आप यो नही समझ्यो कि जइसे अपनि चीज, वइसे दुसर्यो केरि! जूता पहिने ऊपर चढि गयो औ यो न देख्यो कि इनका चदरा यहितना मैला ह्वै जाई। सरकार देखिहै, औ बेगडिहै, तो का आप बचाय लेहौ ?"

इस पर वे महाशय जामे से बाहर हो गये। भीखू को दुतकारते हुए बोले—"क्या बकता है! ऐसे चदरे-वदरे हमारे नौकर बिछाया करते हैं।"

"हाँ, तबही तो दुई चारि नौकर आपके इर्द-गिर्द हाथ बाँधे ठाढि रहति देखाई देत है। कासी जी ते आय रहे हौ। दस घण्टा बीतिगे। पान, सिगरट, चाह, लेमन, आपके बरे नौकरै-चाकर तो लीन्हे आवति है।"

बाबूसाहब ने ताव में आकर कहा—"क्या कहा? फिर तो कहना जरा!"

यह सारी चख-चख 'वाशबेसिन' मे हाथ धोता और टावल से मुँह पोछता हुआ मै चुपचाप सुन रहा था। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही थी कि भीखू ने उत्तर बडा अच्छा दिया है। मुस्कराता हुआ

मैं बाहर आया और मेरे मुँह से निकल गया—"क्यों लड रहे हो भीखू ? क्या बात है ? बिस्तर ही तो खराब हो गया। झाड-झूड कर ठीक कर लो। तुम्हारे लिए जैसे हम वैसे ही बाबूसाहब।"

मैंने देखा—बाबूसाहब तो कुछ नही बोले, लेकिन उनकी श्रीमतीजी की आँखे मेरे ऊपर आ पडी।—और ऐसा जान पडा कि प्रसन्नता की पहली मुहर उनके मुख पर बरबस झलक ही पड़ी हो। मै सोचता था—बाबूसाहब कुछ कहेगे, लेकिन वे एक सिनेमा-मैगज़ीन को चाट रहे थे। इसलिए उनको इधर ध्यान देने की फुरसत नहीं थी।

रास्ते की बात ठहरी। फिर हमारी यात्रा रेल की थी। क्षणिक सम्बन्ध अपना उचित मूल्यॉकन करा ही कहाँ पाते है ? लक्सर से जब हमारा कम्पार्टमेण्ट देहरादून जाने वाली गाडी मे जोड दिया गया और हम पहाड की ओर बढने लगे, तो बाबूसाहब की एक छोटी कन्या की तबीयत कुछ खराब हो गई और उसको मिचली आने लगी। बडी गनीमत हुई कि उनकी श्रीमतीजी पहले से चेत गई। नही तो कम्पार्टमेण्ट का फर्श उसके वमन से गन्दा हुए बिना न बचता। 'वाश बेसिन' के पास ही उसका अन्त हुआ। हाथ-मुँह धुलाकर वे उसे बर्थ पर ले आई। मेरे थरमस में बरफ पडी हुई थी और डोलची मे दो नीबू। बच्ची को फिर मिचली तो नही आ रही है, यह जानने के लिए उसकी माँ ने पूछा—"अब कैसा जी है किरन ?"

किरण बोली—"कभी-कभी ऐसा जान पडता है कि फिर उलटी हो जायगी माँ ! और सर मे भी दर्द मालूम पडता है।"

उस समय पखा फर-फर चल रहा था और बाबूसाहब, नीद के खर्राटे में पड़तो बोलते हुए-से जान पडते थे।

भीखू ने थरमस खोला और एक प्लेट में बरफ के चार-पॉच टुकड़े रख दिए।

मैंने कहा—"भीखू नीबू भी तो है ?"

"हाँ मालिक, वहौ देइत है।" और इतना कहकर उसने डोलची से नीबू निकाल कर काटा और उसका आधा भाग उस पर रखकर किरण को देते हुए कहा—"एकु टुकडा मुँह माँ धरि लेव बिटिया औ यहिका रखु तिनुकु-तिनुकु चूसत जाव! अबही तबीयत ठीक होति है।"

श्रीमतीजी ने पहले भीखू की ओर देखा, फिर मेरी ओर—"क्षमा कीजिएगा, आपको समझने मे हमसे भूल हो गई। उन्होंने सचमुच आपको ठीक तरह से समझा नही। मुझे बडा खेद हो रहा है। अगर ऐसी सभ्यता हम सब लोगो की बन जाय, तो यह सारा ससार एक दिन स्वर्गतुल्य हो उठे।" अब भीखू की ओर घूमकर कहा—"उनकी ओर से मै तुमसे माफी माँगती हूँ, भीखू! किरन बेटी, लो, बरफ का टुकडा मुँह मे रख लो और नीबू चूसो। ये बाबूसाहब, देखो इधर, ये जो साथ चल रहे हे, तुम्हारे चचा जी हे।"

मेरी दृष्टि पुन ऊपर की बर्थ पर जा पडी, तो क्या देखता हूँ—सिगरट बाबूसाहब ने मुँह मे खोस रक्खी हे और लाइटर से उसे जलाने की चेष्टा कर रहे हैं। मगर मालूम नहीं, लाइटर को क्या हो गया है कि जल ही नही रहा। यकायक मेरे मुँह से निकल गया—"अरे भीखू, माचिस तो देना बाबूजी को।"

जब भीखू बाबूसाहब को माचिस देने लगा तो उनके मुँह पर मुस्कराहट दौड गई। बोले—"शुक्रिया, शुक्रिया! यह लाइटर कुछ खराब हो गया जान पडता है।"

अपनी प्रकृति से लाचार हूँ। मेरे मुँह से फिर निकल गया—"लाइटर तो नही खराब है। जान पड़ता है, मसाला ही खतम हो गया है।"

इस पर अचानक उनको और साथ ही किरण की माँ को हँसी आ गई और भीखू ने अपना मुँह फेर कर कहा—"आपौ बैठि जाव

मालिक !"

मैं ज्योंही अपनी सीट पर बैठने के लिए आगे बढ़ा, त्योंही मेरे पैर में एक ठोकर लगी। भीखू ने फौरन उस सूटकेस को रास्ते से हटा कर बर्थ के नीचे खिसका दिया। मैंने देखा—उस पर अँगरेजी के श्वेत अक्षरों में लिखा है :

रुचिनाथ, एम० ए०

और छोटी अटैची पर :

रुचिता, बी० ए०

: ३ :

अविनाश से पत्रव्यवहार करके उसी के साथ, बँगले के एक भाग में ठहरने का प्रबन्ध पहले से कर लिया था। पर जब उसके यहाँ पहुँचा, तो मालूम हुआ—वह आज ही प्रातःकाल दिल्ली चला गया है। बहुत क्रोध आया उसकी लापरवाही पर! फिर यह सोचकर, मन मसोस कर, समझौता कर लिया कि यह हिन्दुस्तानी प्रगति है। यहाँ सब चलता है। उसे आज ही जाना था? क्या मेरा टेलीग्राम उसे नही मिला? यदि जाना ही था, तो मेरे ठहरने की व्यवस्था करके जाता! उसका नौकर बैठा-बैठा मूँगफली छील रहा था। मैंने पूछा—"क्यो, कल कोई तार वार नही आया?"

मूँगफली के छिलको को गमछे से छिपाता हुआ वह अदब के साथ उठ कर खडा हो गया और बोला—"तार? तार आया तो था मालिक, लेकिन जब वो चले गये तब आया! क्या आपने ही भेजा था तार?"

मस्तिष्क मे जैसे जलती हुई मशाल किसी ने छुआ दी हो। इसकी प्रतिक्रियास्वरूप उस दिन मैंने अपनी डायरी मे लिखा—बुद्धिवादी कहते है, भविष्य को सदा अपनी मुट्ठी मे समझो। मै पूछता हूँ, भविष्य की जो घटनाएँ मनुष्य को अपने जबडो के नीचे रख कर चने की तरह चबा डालती है, उन पर मनुष्य का क्या वश है?

फिर वहाँ से चुपचाप लौट पडा। चार सीढ़ी नीचे उतरा ही था कि बँगले के उसी नौकर ने दौडकर, पास आकर, हाथ जोड़ते हुए कहा—"हुजूर, मुझसे गलती हुई। माफ कीजिए। आप ऊपर चलिए। ड्राइगरूम में बैठिए। मेमसाहब आपकी याद कर रही है।"

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मेरे मुँह से निकल गया—

"मुझको ? मै ? मेमसाहब ? तुम भूल रहे हो ! मुझे तुम्हारी ममसाहब नही जानतीं। वे किसी दूसरे को बुला रही होंगी !"

"नही साहब, ऐसी बात नहीं। तार उन्हीं के पास है। उसी को देखकर ···आप इतना संकोच क्यों कर रहे हैं चलिये वो आपकी राह देख रही हैं। उन्होने आपको बुलाने के लिए ही मुझे भेजा है। आप नही चलेंगे, तो वो मुझ पर खफा होंगी चलिए कुछ सोचिए नही ·· चलिए ···· आइए ·· ·" तब मुझे लाचार होकर उसके साथ चलना ही पड़ा। मै अभी उस नौकर के साथ ऊपर चढता हुआ एक कमरे के सामने पहुँच ही रहा था कि द्वार पर मैंने एक 'नेम-प्लेट' देखा, जिसमे हिन्दी मे लिखा हुआ था

'श्रीमती विश्वास'

और उसके नीचे एक कोने मे खटके के अन्दर इतना और लिखा था : अन्दर है।

एक क्षण के लिए मै वहाँ ठिठुर कर खड़ा हो गया कि इतने में क्या देखता हूँ, एक महिला बाहर आ गई है। मैंने सोचा—शायद यही श्रीमती विश्वास है ।

उन्होने मुस्कराहट के साथ नमस्कार करते हुए कहा—"मुझे श्रीमती विश्वास कहते है ! आप ? शायद अविनाशबाबू के मित्र है ?"

प्रतिनमस्कार करते हुए मैंने कह दिया—"जी हाँ।"

"कोई बात नहीं !—वे तो एक आवश्यक कार्य से दिल्ली गये हैं। कुछ समय भी लग सकता है। ··फिर भी यह आपका ही स्थान है !··· आप चैन से ठहरिए··· ।" इतना कह कर वह चुप हो रही।

उनके साथ मेरा यही पहला साक्षात्कार था। आह ! आँखो में वह विलक्षण मोहिनी शक्ति। उनकी जब-जब मुझ पर दृष्टि पड़ती थी, लगता था, बार-बार श्याम घटाएँ घिर-घिर कर वायु के साथ आँख-

मिचौनी खेल रही है··· ।

अब उन्होने प्रश्न किया—"कहाँ से तशरीफ ला रहे है ? क्या काम करते है ? कितनी जगह चाहिए ?साथ मे आपके कौन-कौन है ?"

मैने अपना सब कुछ, सरल, स्वाभाविक ढग से कह सुनाया । वे मेरा परिचय पाकर ऊपर से बहुत प्रसन्न दिखलाई पडी । हल्के स्लेटी रग के चश्मे को, जिसे अब तक वह हाथ मे लिए हुए थी, लगाती हुई बोलीं—"अच्छा तो आप प्रोफेसर है और टूटा-फूटा कुछ लिख भी लेते है । पर यह टूटा-फूटा क्यो ? सम्पूर्ण और गौरवपूर्ण क्यो नही ?" इतना कह कर वह मुस्करा उठी ।

मैने देखा—रामलाल और भीखू, जो कुछ दूरी पर खडे थे, कौतुक-पूर्ण ढंग से हम लोगो की वार्ता सुनने को उत्सुक हो उठे है । क्योकि वे थोडा-थोडा खिसकते हुए हमारे निकट आ पहुचे थे ।

तब वह मुझ अनजान, किन्तु सद्य परिचित आगन्तुक को अन्दर ले गई —अपने ड्राइगरूप मे । एक कुर्सी की ओर सकेत कर के बोली—"तशरीफ रखिए ।"

मेरे साथ वे भी, टेबिल के दूसरी ओर पडी, कुर्सी पर बैठ गई और बोली—"यह बँगला मेरा ही है ।"

जब मैने उनका कुछ अधिक परिचय पाना चाहा, तो वह बोली—"मेरे पति बहुत बडे बैरिस्टर थे । बहुत पैदा किया, बहुत खोया भी " फिर यह भी उन्ही से मालूम हुआ कि उन्होने देशाटन भी खूब किया है । इधर वर्षों से अकेली रहती है और एकान्तता की पीडा से, जलन से, सूख रही है, ठीक उसी प्रकार जैसे श्रोतहीन सरिता ग्रीष्म-काल में अपना दम तोड कर अपना अस्तित्व तक समाप्त कर लेती है । उनका इस प्रकार रहना उन्हे कभी-कभी बडी बेचैनी पैदा कर देता है । वह रोना चाहती है, पर उनकी आँखो से आँसू ही नहीं निकलते । वह मर जाना चाहती है, पर उन्हे जुकाम तक नही होता ।

उन्होंन बतलाया—उनका आधा बँगला अभी यात्रियों के लिए खाली पड़ा है। आधे हिस्से मे वे स्वय रहती है। किराये की छोटी और ओछी बात पर विवाद करके समय नष्ट करना व्यर्थ है । यदि दोनो ओर ऐक्य है, दोनो सुलझे हुए है, तो सब कुछ हल समझिए।··· "किराया जो चाहे दे दीजिएगा, चाहे जब दे दिया कीजिएगा। न मात्रा का बन्धन है, न समय का प्रतिबन्ध।" इतना कह कर श्रीमती विश्वास हँस पडी और बोली—"एक बात और, न देने की तबीयत हो, तो उसमे भी मुझे एतराज न होगा।"

मै उलझन मे पड गया। यह एकात्म क्या है ? यह तदाकार तद्रूप और तन्मय होना क्या है ? मानव से मानव और जीव से जीव कैसे ऐक्य स्थापित करता है ? और उसका प्रयोजन क्या है ? तो क्या जीवन के प्रत्येक व्यापार की उत्पत्ति प्रयोजन के बीज से ही होती है ? यानी जो कुछ भी है, वह है प्रयोजन, फल और परिणाम ? और जाने उस क्षण कितने मूक प्रश्नचिन्ह नेत्रों के सामने बन-बन कर बिगड गये, उजड गये। ऐसा लगा, मानो जीवन भी तो एक विराट प्रश्न-चिन्ह है। इसके अतिरिक्त वह और है ही क्या ?

जैसे जीवन मे अनायास वर्षा हो गई है। मीठा, भीना सौरभ मेरे मस्तिष्क मे हौले-हौले भर रहा है।

मैंने अपना सामान एक हिस्से मे रखवा दिया । रामलाल और भीखू अपने कार्य मे लग गये। तत्काल ही चाय तैयार करनी थी, किन्तु स्टोव मे, समय की बात, तेल न था। यह जान कर वे प्रसन्नतापूर्वक अन्दर गई और अपने आप में उलझती तुरन्त बाहर आ गई। उनके पीछे-पीछे उनका सेवक एक दूसरा स्टोव लिए चला आ रहा था। बोली—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"भीखू।"

"और तुम्हारा जी ?"

"रामलाल !"

"ठीक, देखो रामलाल, इसका नाम है रामू ।" फिर रामू से बोली—"स्टोव दे दो।"

रामू ने स्टोव रामलाल को दे दिया। अब वे रामलाल से बोलीं—"देखो रामलाल, इसे अपने यहाँ रख लो। तुम्हे सुविधा होगी। मेरे पास कई स्टोव है। मै उनसे काम चला लूँगी। साहब को तकलीफ़ न होने पाये। यह भी उन्ही का घर है। और किसी चीज की जरूरत हो तो बैरा से ले लेना। संकोच न करना। हाँ!"

मैंने उनकी बाते सुन ली। अनायास जैसे बिजली लपक जाती है, ऐसा ही कुछ प्रभाव मन-प्राण पर पडा। उर्वर भूमि पर बीज पडते ही जिस प्रकार अनगिनत पीले-पीले अकुर खडे हो जाते है, शान्त, सकुल सरोवर मे एक ककड डाल देने से जिस प्रकार अनन्त लहरियो की सृष्टि हो जाती है और रात आते ही जिस प्रकार असख्य नक्षत्रो की दुनियाँ बस जाती है ठीक उसी प्रकार मेरे भावप्रवण मस्तिष्क मे, चाय पीते समय, उनकी एक-एक बात, क्रम-क्रम से, चक्कर लगा गई और विचारों, उडते बादलो को सँभालना मेरे लिए दुष्कर हो गया।

और दिन पर दिन बीतते जा रहे है।

उदारता, सदाशयता और विनम्रता की इस देवी पर मेरा आश्चर्य, विस्मय—शकालु प्रश्नो के रूप में—क्षण-प्रतिक्षण, उत्तरोत्तर बढता ही जा रहा था। कभी मन मे आता था, क्यो न जी खोलकर उनकी प्रशंसा करूँ, आरती उतारूँ। लेकिन फिर यही [सोचकर रह जाता था, कि प्रत्येक नई रचना, घटना और सृष्टि के पीछे प्रकृति का एक-न-एक प्रच्छन्न अभिप्राय अवश्य रहता है। श्रीमती विश्वास की सज्जनता के पीछे कोई मूक अभिप्राय अवश्य है। वे मुझसे कोई-न-कोई आकाक्षा अवश्य रखती है। मेरा उनका कभी का कोई परिचय नही; केवल एक बार मुझे सिर से पैर तक देख कर, मेरा एक-आध कथन

सुनकर, जो नारी मुझे अपने सौजन्य के कोमलतम आकर्षण से बाँध लेना चाहती है, वह कहीं पर अवश्य ही रिक्त है। मै उसका पूरक बनाया जा रहा हूँ।

इस प्रकार नाना रूप और भंगिमाओं में अनेक प्रकार के प्रश्न मेरे मन मे उठने लगे। लेकिन, सबसे बड़ी उलझन की बात यह थी कि जब श्रीमती विश्वास मुझे कोई सन्देश भेजती, खाद्य-सामग्री भेजतीं, चाय और मिष्ठान्न आदि तैयार करा कर दो-दो, चार-चार तश्तरियों में सजा कर अपने बैरे को सिखा-पढ़ा कर मेरे पास भेजा करती, तब-तब मै सारी शंकाओं को एक साथ भूल जाता था। यहाँ तक कि जब कभी वह सामने होती, तो ठगा-सा रह जाता और मुझसे यह भी न कहते बनता—"आइए, बैठिए, मै आपकी क्या सेवा करूँ? आप तो अपने आतिथ्य-सत्कार के बन्धनो से मुझे इतना खीच रही है कि मै नही जानता, उनसे कैसे मुक्त रह पाऊँगा।" और सकोच के साथ जब मै उनसे स्पष्ट कहता—"कैसे आपके इस सौजन्य का बदला चुकाऊँगा? शायद आप नही जानती कि प्रतिदान के नाम पर मेरे पास कुछ नहीं है।" तब वे ह ह ह करके हँस पडती—"आप अजीब किस्म के आदमी है। इतना भोला व्यक्ति तो कभी मेरे जीवन मे आया ही नहीं। कैसे आप ये सब बाते कह जाते है! मै तो हैरान रह जाती हूँ। आप तो प्रतिदान की बात करते है। मे पूछती हूँ, प्रतिदान तो आदान का होता है। मेरे पास ही आदान के लिए क्या रक्खा है? फिर, क्या सौजन्य का कोई भी कार्य केवल प्रतिदान के निमित्त होता है? सौजन्य का कोई प्रतिदान हो भी सकता है? आप यह क्यों नही सोचते, कि प्रतिदान भी तो एक आदान होता है। आपके पास प्रतिदान के लिए कुछ नही है, तो क्या आदान से भी आप रिक्त है?"

ऐसी-ऐसी बातें श्रीमती विश्वास अनायास कह जाती कि मै सोचता रह जाता क्या उत्तर दूँ इन बातों का! जल्दी कोई उत्तर मुझे

सूझता भी नही था। परिणाम यह होता, कि जब कभी मै कोई बात करता भी, तो उस पर, वे घुमा फिरा कर ऐसे ढंग से बोलती कि मै अवाक् और निरुत्तर रह जाता। बँगले का सारा वातावरण एकदम नीरव रहता था, या तो पक्षियो का कलरव सुनाई पड़ता, अथवा श्रीमती विश्वास का कहहास! रात-दिन कभी रेडियो से सगीत ध्वनित हुआ करता, कभी श्रीमती विश्वास की गुनगुन सगीत-लहरी और कभी हँसना, किलकना अथवा कोई बात बैरा से डाट कर कहना और फिर क्षण भर बाद फुसफुसाना।

उनकी एक सफेद बिल्ली बँगले भर मे इधर-से-उधर चक्कर काटा करती। मै जब चाय पीने बैठता और ठीक ऐसे ही समय श्रीमीत विश्वास के चप्पलो की आवाज सुनाई पड़ती और वह कमरे मे आने को होतीं, तभी एक मिनट पूर्व वह सफेद बिल्ली, जिसका नाम 'टेनर' था और केवल सफेद होने के कारण जिसे श्रीमती विश्वास ने दस रुपये मे खरीदा था, इसीलिए उसका नाम 'टेनर' पड गया था, मेरे दरवाजे के पास आकर मूँछो पर जीभ फेरती हुई बोल उठती—'म्याऊँ!' और तभी क्षण भर बाद श्रीमती विश्वास आ बिराजती। मेरी समझ में नही आता था, कि इस 'टेनर' को यह कैसे मालूम हो जाता था कि अभी थोडी देर बाद श्रीमती विश्वास यहाँ आयेंगी। मै सोचता रह जाता था कि श्रीमती विश्वास के आने की पूर्व-सूचना देने में यह 'टेनर' कितनी पटु है और तभी उसकी 'म्याऊँ' का भाव स्पष्ट हो जाता। उसका परिणाम यह होता कि सदा ही एक-न-एक बिस्किट वह मुझसे पा जाती और श्रीमती विश्वास बोल उठती—"आप इसकी आदत खराब किये दे रहे है। अब यह मेरे पास आकर इसी तरह बिस्किट के लिए जिद करने लगी है और यह भी एक अजीब तमाशे की बात है कि आप जब कभी मेरे यहाँ आते है, तब आपके आने की सूचना यह मुझे एक मिनट पूर्व अवश्य दे जाती है। क्या बात है, मै नही जानती। यह जानवर मनुष्य

का गुण कैसे सीख लेते है ।"

"जी हाँ, इसीलिए मै इसे कोरा 'थैंक' न देकर यह बिस्किट दे देता हूँ । आदत ख़राब न होगी ।"

इस प्रकार दिन में दो चार बार श्रीमती विश्वास से मेरा साक्षात्कार होने लगा । एक दिन चाय पीने के बाद जब श्रीमती विश्वास मेरे यहाँ से चली गईं तब मै सोचने लगा—श्रीमती विश्वास मेरे निकट क्या है ? मै क्या हूँ ? यह आदान-प्रदान क्या है ? मै आज कहाँ आ पहुँचा हूँ ? ये सब प्रश्न मेरे लिए एक अजीब पहेली-सी बन गये थे । मै उन्हे बार-बार सुलझाने का जितना प्रयत्न करता था, उतना ही उनके इन्द्रजाल में उलझ कर रह जाता था ।

रहस्यों, मायाजालो, शंकाओं और विशेषरूप से विचारो के झझावातो के बीच जब मै थपेडे पर थपेडे खाकर अनन्त जल-राशि में आकण्ठ डूबने-सा लगा, तब जैसे तिनके का एक सहारा मिल जाता हो, अन्धकार मे भटकता हुआ पथिक कौधा लपकने पर क्षणिक, क्षीण प्रकाश पा जाता हो । इतना ही नही, कुछ ऐसा लगा जैसे एक क्षण जल के ऊपर आकर साँस लेने का स्वर्णअवसर मिल गया हो ।

"छोटे भइया, ई मेमसाहेब बड़ी दयावन्त है । जइसे अपने हियाँ, न छोटे भइया, बुआ का सीध सुभाव है, ठीक वइसेहे इनहुन का । वहि दिन स्टोब दइ गई रहै । आजु अपने हियाँ कै काफी दइ गई है । कहती रहै, 'यह बहुत नीकि है ! हम बड़ी दूरिते मँगवाया है । इनका कउनिउ तकलीफ न होय पावै ! अपनै घरु समझौ !' भीखू जो उधर से जा रहा था, मुझे अकेला बैठा देख, निकट आकर यह सब विवरण देने लगा । अन्त मे बोला—"हम का बताई छोटे भइया, औतार है पूरा देवी का ।"

भीखू के मुख पर अपना घर—कुछ समय के लिए—छोड़ने के कारण, जो उदासीनता और अन्यमनस्कता की रेखाएँ मुद्रित हो रही

थी, वे सहसा ही इस पवन-दोलन से दूर हो गईं। उसे अब यहाँ कुछ अपना-अपना-सा मिला। उसे जैसे वह वस्तु मिली, जिसकी उसने शायद कभी कल्पना भी न की थी। भले ही उसे श्रीमती विश्वास मे बुआ का किञ्चित प्रतिबिम्ब ही देखने को मिला हो।

सहसा भीखू की अर्धप्रस्फुटित मुस्कराहट मे मैने भी भाग ले लिया और इस मुद्रा मे पाकर भीखू ने मुझसे कह ही तो दिया—"छोटे भइया, हियौ आपका कउनिउ तकलीफ न होय पाई, घरु होइगा है, घरु !"

उसी ढग से मैने भी उत्तर दे दिया—"जो कुछ सामने आयेगा, देखूँगा, भीखू !—चाहे वह सुख हो, चाहे कुछ !"

भीखू सामने की टेबिल पर बिखरी पुस्तकों और कागजो को ठीक करने लगा और उसी क्षण मेरे अन्दर अनेक प्रश्न घूम गये—क्या आनन्द और कुछ नहीं, केवल अपनत्व, निजत्व की प्राप्ति ?—और निजत्व की चित्रछाया के दर्शन एवं मिलन ? तात्पर्य यह कि जिसमे मै दिखलाई पडता हूँ अथवा जो मुझमें दिखलाई पडता है, इन दोनो परिस्थितियो का पारस्परिक मिलन और दर्शन ही आनन्द का उद्गमस्थल है ?

अब भीखू चुपचाप खडा था। मैंने कह दिया—"लेकिन भीखू तुमने उनकी काफी नहीं बनाई ?"

"वहौ बनि जाई छोटे भइया, का अपने हियाँ कउनिउ चीज कै कमी है!"—भीखू ने उत्तर दिया।

उस 'काफी' मे भी जैसे श्रीमती विश्वास थी। दूसरे शब्दो मे यह भी कह सकता हूँ जैसे अपनत्व रखनेवाले व्यक्तित्व की छाया विराट विश्व की जिस वस्तु या पदार्थ में दिखती है, वही प्रिय, आकर्षक बन जाता है। यानी विश्व भी मेरे लिए प्रिय आकर्षक और अपना बन सकता है, काश मै अपने व्यक्तित्व को भूल कर विश्व मे उँडेल दूँ, समाहित कर दूँ ?

किन्तु नही, सावन की बदली की भाँति निमेषमात्र मे विचारो की बदली की वह तह भी एक ओर उड़ गई, खिसक गई। अब फिर श्रीमती विश्वास के सम्बन्ध मे सोचने लगा। मै समाधान नही पा रहा था। आयु अभी अधिक नही है। युवती कही जा सकती है। मुख-छवि निशानाथ को भी लज्जित करती है। शत-शत दीपशिखाओं का मुखर सौदर्य उन पर न्योछावर है। आँखो मे दीप्ति है, वाणी मे मृदुला! बोलेंगी, तो मालूम होगा जैसे हँस-हँस कर मोती बरसा रही है। पुष्प खिल रहे है?

बिलकुल 'अप-टु-डेट' ढग से रहती है। सफाई पसन्द प्रकृति, घटों अपने वातावरण की सफाई और स्वच्छता के निरीक्षण मे समय देती है। स्वभाव अत्यन्त सरल, भावुक और मिलनसार! पहले तो भावुकता मे आकर वार्ता करने लगेगी और फिर—बाद मे—अनावश्यक वार्ता करके अपना तमाम मूल्यवान समय नष्ट करने के लिए पश्चाताप भी करेंगी, पछताती रहेंगी और अन्त मे, दोषी भी अपने को ही घोषित कर देगी।

कठोरता से उनका जैसे कभी कोई परिचय ही नही रहा। क्रोध के अकुर को अपने अन्दर ही आत्मसात कर लेती है। क्षमाशील तो इतनी है कि मुख से बस 'वाह' निकल पडता है। कभी किसी को सख्त बात नहीं कहेगी। अपनी हानि उठाना वे स्वीकार करेगी, किन्तु किसी के मन को दुखाना उन्हे सह्य न होगा।

अभी उस दिन की घटना है।—बिलकुल ताजी! उनके बैरा रामू ने जब ट्रे मे चाय लाते हुए उनके मूल्यवान पात्र तोड दिये थे, तो मुझे लगा—अब रामू की खैरियत नही। किन्तु हुआ ऐसा कब? जैसे एक कहानी दु:खान्त होते-होते सुखान्त में परिणत करदी गई हो और लेखक ने—कलाकार ने—अपनी उन्मत्तकारी कल्पना की अँगडाई लेकर, करवट बदल कर, सम्पूर्ण कथारूप को एकदम उलटते हुए,

पाठको की जिज्ञासुवृत्ति, पूर्वकल्पित अन्त और उनके निर्णय को सहज ही धता बता दी हो।

उन्हे क्रोध तक नही आया, बल्कि अधर किञ्चित खुलकर रह गये और जैसे 'यह क्या हुआ' के भावो के कुछ बल—अनेक लकीरो के रूप मे—मस्तक पर पड गये। अधिक नही बोली, केवल इतना भर बोली—"अरे! टूट·· गया! खैर?" और उनके शान्त क्रोध की इस सीमा-रेखा 'खैर' से मेरा मस्तक पकड़ कर, लगा, जैसे किसी ने टकरा दिया हो। मै उनका 'खैर' सुन कर चकरा गया।

मेरा उस ट्रे मे रक्खे पात्रो से यद्यपि कोई सीधा और विशेषरूप से घनिष्ठ सम्बन्ध न था, तथापि दूर रह कर जितना सम्बन्ध मैं स्थापित कर सका, उसे दृष्टि में रखते हुए मैंने कह दिया—"उपहार की यह मोहक वस्तु—टी सेट—भी आज नष्ट हो गई! ये लोग बड़ी असावधानी बरतते है।"

कथन अभी पूरा भी न हो पाया था कि बीच मे ही बात काटती हुई बोली—"समझी। किन्तु क्षमा के आगे और देने के लिए मेरे पास है ही क्या?"

"और कुछ होता भी नही।" कह कर मै हँस पडा। यद्यपि मुझे ऐसा जान पडा, उनके पास 'क्षमा' के अतिरिक्त यदि देने के लिए कोई अन्य वस्तु होती, तो उसे भी देने मे उन्हे शायद सकोच न होता।

किन्तु ट्रे के उन पात्रो की दृष्टि कुछ कह रही थी। मै मन-ही-मन सोच रहा था—इस स्थिति में निश्चय ही इन्हे क्लेश मिल रहा होगा। उनकी भी दृष्टि जैसे उन तमाम टूटे टुकड़ो पर दौड रही थी। ऐसा लग रहा था—किसी अतीत कालीन ऐतिहासिक भग्नावशेष की खोज किसी पुरातत्ववेत्ता ने की है और वह अनन्त जिज्ञासुदृष्टियो से उसका गम्भीरता के साथ अवलोकन, विवेचन और अध्ययन कर रहा हो।

अब उनकी दृष्टि मुझ पर आ पड़ी। मैंने प्रश्न कर दिया—"इस

पर किसी का नाम अंकित था शायद ?"

"प्रफुल्लबाबू का" इतना कहकर वह गम्भीर हो उठी और जिन-जिन खण्डो में उस रगीन नाम की झलक दिखाई दी, उन-उन टुकडों की ओर उँगली चलाई गई। बोली—"प्रफुल्लबाबू जब विदेश से लौटे थे, तो उपहाररूप देने के लिए विशेषरूप से यह 'टीसेट' भी वे साथ ले आये थे। सचमुच, बडा मोहक और मूल्यवान था।" इतना कह कर वे पुनः उन खडित, बिखरे पात्रो के टुकडो को देखने लगी, जैसे उन पर अंकित नाम एक से अधिक कितने खण्डो मे आज विभाजित हो गया है, इसका कुछ जीवन और जगत् से समन्वय और सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास कर रही हों।

एक दीर्घ निश्वास छोड कर बोली—"सतीशबाबू, खडित पात्रों के इन अनेक छोटे-छोटे प्राणवान टुकडो में मे अपना, अपने से सम्बन्धित अनेक परिचितो का और अपने नित्य के बनने और बिगड़ने, रोने और हँसने के विश्व का प्रतिविम्ब देखने की चेष्टा कर रही थी। पात्रो के टूटने का मुझे जरा भी गम नही है सतीशबाबू, युग-के-युग टूट कर इसी प्रकार बिखर गये। मै सोचती थी—क्या कही, किसी स्थल पर, फिर वे जुडे भी ? जीवन और प्राण विराग और वियोग मे ही खण्डित होते जायँगे, या कही—किसी सुदूर प्रान्त में—अन्तरिक्ष के किसी कोने में राग और नैसर्गिक आनन्द से लिपट कर मिलेंगे भी ?"

उनकी बातें छायावादी काव्य से कम रहस्यपूर्ण न थी। मै कूल को न पा सका। उस असाधारण अन्तर्प्रदेश की छानबीन करना भी मेरी शक्ति से परे की बात थी। मै मुस्करा उठा।

दिन इस प्रकार विचारो की मायानगरी में कितने बीत गये, पता नही। क्षण-क्षण मे जो सम्बन्ध बनते और दृढ होते चले गये, उनकी मेरे पास न तो कोई तालिका है और न सूची ही। मै इतने दिनों में सूर्यमुखी पुष्प की भाँति कितना और कैसा घूमता गया, इसका भी

मुझे ज्ञान नही। हम लोग एक दूसरे के कितने निकट आ गये, इसको तोलनेवाली जैसे कोई तुला आज तक बन ही नहीं सकी।

एक दिन जब चुपचाप बैठा विवेकानन्द के ग्रन्थ का 'माया'—सम्बन्धी अध्याय पढने मे डूबा हुआ था, तब भीखू चुपचाप आकर खड़ा हो गया और निर्विकार भाव से खड़ा रहा। मैने पूछा—"क्यो? क्या है भीखू!"

"कुछौ नही मालिक! अइसेहे ठाढ़ि ह्वइ गएन!" और इतना कह कर उसने अपना मस्तक झुका लिया।

मैने कहा—"नही, नही, संकोच मत करो। बात कहो।"

तब उसने अत्यन्त सरलता के साथ अपने लहजे मे कहा—"उनका केरावा तो आप दइ दीन ह्वइहौ मालिक?"

"ओह!" कहते हुए मैने पूछा—"क्यों, क्या किसी ने कुछ कहा?"

"नाही मालिक, कही को! औ फिर आपते!"

"अगर किराया न दिया जाय भीखू!"

कुछ सोच-विचार कर भीखू बोला—"हमरी तो आँखी सामने न ह्वै सकि है, आपकै बात हम का जानी छोटे भइया!"

भीखू की इस बात ने जैसे मुझे, समय पर, झटके के साथ जगा दिया। जी मे पुनः आया—यह लेन-देन क्या है? आदान-प्रदान क्या है?...अच्छा, तो जो देना है, उससे अपने को रिक्त कर दो—रिक्त!

उसी क्षण अन्दर गया। अटैची से चेकबुक निकाली और दो सौ का चेक काट कर भीखू को देते हुए मैंने पूछा—"ठीक है न भीखू?"

"आप लोगन कै सेवा करत-करत बुढाय गएन है छोटे भइया! यहु परदेसु ठहरा। जी मा आवा कि केरावा साइति जो लेट दीन गा, तो विइ का-ते-का न स्वाचै लागै! औ आपौ का साइति यादि न रहा

होय ! यहिते, हाँ मालिक, यहै सब ख्याल कइ कै आपते कहि दीन !"
भीखू ने उत्तर दिया।

"इसीलिए मैं तुम्हे साथ ले आया हूँ भीखू।" मेरी बात सुनकर वह प्रसन्न हो उठा और बोला—"तउनु हम जानित है छोटे भइया, औ यही जानित है कि जब कबौ आप बाहेर जइहौ भिखुआ का भुलिहौ ना !"

चेक मैंने भीखू को दे दिया और वह उसे लेकर, प्रसन्न मुद्रा में, कमरे से बाहर हो गया।

: ५ :

दो मिनिट पश्चात् हाथ में चेक लिए भीखू लौट आया और सिर नीचा करके, मुस्कराहट दबाते हुए, बोला—"विइ तो थाहिका लेतिही नही है छोटे भइया—बहुत-वहुत कहा, मुदा न लीन्हेनि ! औ आपका हुवं, अपनेहे हियाँ, बोलाइन है।"

चेक मैने भीखू के हाथ से लेकर जेब मे रख लिया और तत्काल पुस्तक हाथ मे लिये हुए मै श्रीमती विश्वास के यहा पहुँचा। वह बाहर बराण्डे में बैठी कुछ ऐसी सोहती है, मानो नील जल से भरे सरोवर में सुन्दर कमल खिला हुआ है। मुस्कराहट के साथ बोली—"आइए, इधर निकल आइए—बैठिए आराम से!" कह कर उन्होने कुर्सी बढा दी।

हाथ की पुस्तक को मैने टेबिल पर रख दिया और चुपचाप, उन्ही के निकट बैठ गया। अब उनकी उस मुखाकृति को जो देखता हूँ, तो सोचता हूँ—अरे! यह क्या? ये काली घटाएँ कैसी? भावनाओ का यह उद्वेग कैसा?

किन्तु शायद यह सब दृश्य तभी उपस्थित होते है, जब वर्षा प्रारम्भ होनेवाली होती है। अत्यन्त विनीत, कोमल वाणी में श्रीमती विश्वास ने कहा—"आप मुझे इतना क्यो परेशान करते है? मै तो स्वयं अपने आप में दुखी हूं।"

मै आश्चर्य मे पड गया। मैंने तुरन्त उत्तर दिया—"मैने कोई अपराध नही किया देवी जी, यदि ऐसा कुछ अनजान मे बन पडा हो, तो मै क्षमा चाहता हूँ उसके लिए।"

"ओफ! ·आप? आप बिलकुल नही समझे! आप मुझे रुलाना चाहते है।"

"स्पष्ट कहिए।" मैने कहा—"आपकी श्लेषात्मक बाते समझना

मेरे लिए कठिन है।"

ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह कुछ सोच-विचार में पड गई है, कुछ खोज रही है, कुछ ढूँढ रही है, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई अन्धा अपना मार्ग टटोल रहा हो, खोज रहा हो—खोज में इधर-उधर भटक रहा हो।

अब वह कुछ स्वस्थ हुईं और अपने चेहरे पर कृत्रिम मुस्कराहट लाती हुई बोलीं—"अरे, अभी चेक की ऐसी क्या जल्दी थी, सतीश बाबू! क्या मै आपको नही जानती? क्या मै आपके पारिवारिक गौरव से अनभिज्ञ हूँ? क्या मै आपकी रुचि, सस्कृति से थोडा भी परिचित नही हो पाई? यह दो सौ रुपए की दीवार हमारे बीच क्यो खडी की जा रही है? इसकी क्या आवश्यकता है? यही न कि आप मेरे यहाँ ठहरने का किराया देना चाहते है।" और अपनी तर्जनी को हृदय पर रख कर कुछ सकेतात्मक भाषा में कहने लगी—"लेकिन यहाँ ठहरने का किराया आप दे भी सकते हैं?" और इतना कहकर वह हँस पडी।

यकायक मेरे मुँह से निकल गया—"क्या मतलब? मै समझा नही! दो सौ रुपये यदि कम हो, तो आप स्पष्ट कहिए, आप को क्या चाहिए! जितने दिन मै ठहरा हूँ, उसका मुँह माँगा किराया मै आपको दे सकता हूँ—आप हजार कहे, तो भी मै दूँगा। आगे की बात दूसरी है। वह मेरी रुचि पर निर्भर है। लेकिन उस भविष्य की रुचि का सम्बन्ध भी अतीत के साथ अटूट है। अर्थात् जैसा अतीत मुझे भासित होगा, उसी के अनुरूप मै भविष्य का निर्णय करूँगा। इस मामले मे मै किसी रहस्य को पालना पसन्द नही करता। मै यथार्थ का पुजारी हूँ। गोलमाल मुझे पसन्द नही है। आप कृपा करके जो भी चाहे, स्पष्ट कहे।"

ये सब बातें मै जानबूझ कर, कर रहा हूँ। मानता हूँ श्रीमती विश्वास जिस कोमल भावना से प्रेरित होकर मुझसे किराया नही

लेना चाहती है, उससे मै अवगत हूँ। और इसीलिए मे उससे दूर ही रहना चाहता हूँ। संसार को जैसा कुछ मैने देखा है, पाया है, उसके अनुरूप ही मै बनना भी चाहता हूँ। मैने थोड़ी-सी जिन्दगी मे यह अनुभव किया है, कि कोई भी कोमल भावना अपने पीछे एक रहस्य अवश्य रखती है और प्रत्येक रहस्य अपने पीछे कोई-न-कोई छिपाव, दुराव, भेदाभेद, ग्रन्थि, सकोच और कलुष अवश्य रखता है। मै श्रीमती विश्वास की कोमल भावनाओ का सम्मान करता हूँ, लेकिन उनके पीछे कोई कलुष नही पालना चाहता। आज यह दो सौ रुपए जो श्रीमती विश्वास मुझे छोड रही है, ऐसा भी दिन आ सकता है, जब इसके बदले मे मुझे कोई ऐसी चीज छोडनी पडे जिसका मूल्य इन दो सौ रुपयो से कई गुना अधिक हो। तो ऐसे आपत्तिकाल के लिए मै अभी से अपने आपको क्यो बेच दूँ?

लेकिन मेरी बातों की शुष्कता श्रीमती विश्वास के हृदय मे चुभ गयी। बोली—"आप बहुत व्यावहारिक आदमी है, यह मै पहले न जानती थी। आप इतने कठोर व्यक्ति है, इसका अनुमान भी न कर सकती थी। मै क्या कह रही हूँ, मेरे मन मे क्या है, मै क्या सोचती हूँ, मेरी समझ में नही आता कि आपका ध्यान इस पर क्यो नही जाता? मैने तो आपसे कहा था कि हमारे बीच किराये की कोई शर्त नही है, लेकिन आपने मेरी भावना का मान नही किया। ठीक है, दुनिया की देख मे किराया बडी चीज है। वह अपनी जगह अपना मूल्य भी रखता है। लाइए, दीजिए चेक, मै ले लेती हूँ। किराया देना आपका काम है, इसलिए आपने चेक काट दिया है। किराया लेना मेरा काम है, इसलिए मै आपका चेक ले लेती हूँ। यह बात दूसरी है कि मै इस चेक को अपने हिसाब मे पडा रहने दूँ। इसे भुनाऊँ या ज्यो-का-त्यो डाल रखूँ। यह मेरी अपनी जिम्मेदारी है।"

चेक मैने उन्हे दे दिया। उन्होने ले लिया। उस समय हाथ में कोई

पर्स नही था। बाडिस के नीचे जहाँ वे फाउन्टेनपेन लगाये रहती थी, वही उन्होने उस चेक को भी रख लिया। मै कुछ समझा, कुछ नही भी। मेरे मन मे आया—इस चेक को जमा करने की अवधि छै महीने है। इसके पश्चात् यदि मै और भी यहाँ रहूँगा और किराये का भुगतान इसी प्रकार चेक से करूँगा तो ये चेके भी अपनी छै-छै महीने की अवधि मे समाप्त हो जायेगी। फिर उनका कोई मूल्य नही रहेगा। लेकिन जो भावना इन चेको को कैश नही कराने देती, उसका मूल्य मै कैसे चुका सकूँगा। यही सब सोच कर मैने कह दिया—"आपकी सहृदयता और उदारता पर मुझे पूरी आस्था है और उसके लिए मै आपका हृदय से सम्मान करता हूँ, लेकिन एक बात मुझे इस अवसर पर कहनी ही पडेगी कि यदि आप मुझसे किराया न लेगी, तो इसके बदले मे मै कोई भी चीज आपको कभी नही दे सकूँगा और इसके लिए आपको बुरा मानने का भी कोई अधिकार न होगा। किस स्थल से मै यह बात कह रहा हूँ और इसका मुझे कितना दुख हो रहा है, इसको व्यक्त करने के लिए मेरे पास और कोई भाषा नही है। आशा है, आप इसके लिए मुझे क्षमा कर देंगी।" अपने इस कथन के बाद अपनी पुस्तक हाथ मे ले, उत्तर का भी अवसर न देकर मै श्रीमती विश्वास के कमरे से उठ कर चला आया। वह कुर्सी से उठ कर बरामदे के खम्भे तक आई और मै जब उनके कमरे के कोने से घूम कर अपने कमरे के दरवाजे पर आया तब भी उनके शब्द मेरे कानो मे गूँज रहे थे—"सतीशबाबू, जरा सुनिए। मेरी बात तो सुन लीजिए। लौट आइए—लौटिए—लौटिए" और इसी समय मैने अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। लाइट 'ऑन' की और बिछे हुए पलग पर चुपचाप लेट गया। कितनी देर पड़ा रहा, यह तब मालूम हुआ, जब भीखू ने दरवाजा खटखटाया और मैने उठ कर दरवाजा खोला तो भीखू

कहने लगा—"छै बजि गे छोटे भइया। मेमसाहब नमस्ते कहा हइनि। कहेनि है कि आपकै चा ठंडी होय रही है।" मेरे मुँह से निकल गया—"जाओ, कह दो, मैं आज चाय पर नहीं आ सकूँगा।"

: ६ :

मैंने अनुभव किया—भीखू मेरे उत्तर से आश्चर्य में पड गया है। वह चुपचाप, अवसन्न-सा खडा, मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है। तभी मैंने कह दिया—"जाते क्यों नही, आज मै वहाँ चाय नही लूँगा।"

वह अब मेरे मुँह की ओर ताकने लगा और मैंने देखा उसके चेहरे पर अनायास एक प्रकार की आन्तरिक वेदना मूर्तित हो गई है। अत्यन्त धीमे स्वर मे, गिडगिडाहट के साथ, अपने मस्तक को इधर-उधर हिलाते हुए भीखू ने पूछा—"तबीयत तो ठीक है न छोटे भइया? सिर माँ दर्द तो नही है? का दाबि देई? कहौ तो मेमसाहब ते 'इसिप्रो' लै आई?"

अब वह मेरे पास आ गया। मैंने दृढ होकर पुनः कह दिया—"मेरी तबीयत ठीक है। चिन्ता मत करो। जाओ, चाय का पानी तैयार करो। मै चाय यही पर लूँगा, उनके यहाँ नही। समझे?—जाओ, खडे क्यो हो अब? साफ कह दो उनसे, वे नही आ सकेंगे। उनको अभी रुचिनाथ बाबू के यहाँ जाना है।"

भीखू चुपचाप, धीरे-धीरे, कुछ सोचता हुआ-सा बाहर जाने लगा।

इसी क्षण, स्मरण नही, न जाने क्या सोच कर मैंने अपना मुलायम चेस्टर उठा कर झटपट पहन लिया और चप्पलो मे पैर डाल, दरवाजे से बाहर आकर जो दाहने ओर दृष्टि डाली तो क्या देखता हूँ कि श्रीमती विश्वास खडी हैं और मुस्कराती हुई कह रही हैं—"आज वहुत सोये। लेकिन जान पडता है, नीद पूरी नही हुई।" फिर एक ठंडी साँस को दबाती हुई-सी कहने लगी—"बडे भाग्यशाली हैं आप सतीशबाबू, जो ऐसी मीठी नीद आपको आ जाती है। आइए, आइए मै तो आपको लेने के लिए आई थी।"

अब मैं क्या करूँ ? श्रीमती विश्वास खड़ी हैं और मै उनको क्या उत्तर दूँ ?—और थोडी देर बाद जब भीखू मेरे कमरे मे आयेगा और मेरी विवशता पर हँसेगा, तब उसको क्या उत्तर दूँगा ?

श्रीमती विश्वास ने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली और कहा—"इसे आज मैं देखूँगी। आइए, चलिए, देर न कीजिए, चाय इन्तजार कर रही है।"

आगे-आगे श्रीमती विश्वास और पीछे-पीछे मैं। मुझे लगा जैसे किसी कुशल धनुषधारी ने अपने लक्ष्य पर सँभाल कर तीर छोड दिया हो। ज्योंही मैं उनके कमरे में पहुँचा त्योंही मैं क्या देखता हूँ कि चाय के साथ कई मधुर और नमकीन चीजें तश्तरियो मे सजी और पारदर्शक झीने वस्त्र से मण्डलाकार ढकी हुई हैं। आश्चर्य के साथ मेरे मुँह से निकल गया—"अरे, आपने तो यकायक बहुत-सी चीजे बनवा डालीं, लेकिन आज मेरा पेट बहुत खराब हो रहा है। आपको पता ही है कि शरीर के साथ, उसके धर्मो के साथ मन के धर्म का कैसा अटूट सम्बन्ध है। मैं आज कोई चीज नही ले सकूँगा। मुझे विवश न कीजिए। घूमने के लिए बाहर निकला था, पर आपके आग्रह को टाल न सका और साथ चला आया। आपको यह भी पता है कि मैं कोई तपस्वी ऋषिकुमार नही हूँ। स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थों के साथ मेरी बडी प्रीति है और उससे भी बडी प्रीति अपने स्वागतार्थी से है, किन्तु जहाँ कर्तव्य का क्षेत्र है, संयम की माँग है, वहाँ मेरी व्यक्तिगत प्रीति और प्रतीति का कोई महत्व नही। शुरू कीजिए, मेरे पीछे आप क्यो कष्ट उठा रही हैं। मैंने कह दिया न, मैं कुछ ले न सकूँगा। सच मानिए, बिलकुल इच्छा नहीं है, पर इसका यह अर्थ नही है, मेरी सब इच्छाएँ मर चुकी हैं। इच्छाएँ सब ज्यो-की-त्यों सतर्क और जागरूक हे। केवल पेट के धर्म का ध्यान रखना पड़ रहा है।"

मेरा इतना कहना था कि श्रीमती विश्वास का सुमन-शोभन मुख जैसे पीला पड गया हो। ज्योतिर्मय कान्ति क्षीण हो गई हो। बोली—

"पता नही मेरे भाग्य में क्या लिखा है ! न मुझे ही इस बात का ध्यान आया कि आपकी खोज खबर लूँ और न आप ही ने यह कहला दिया कि मेरी तबीयत ठीक नही है। आपको पता होना चाहिए कि तीन बजे से बैरा इन चीजो की तैयारी में लगा हुआ है। अब जब सब चीजे तैयार हो गई, तब आप फरमा रहे है, मेरी तबीयत ठीक नही है। कुछ समझ मे नही आता।" और इतना कहकर उन्होंने पुकारा—"रामू, सब सामान ले जाओ। साहब की तबीयत ठीक नही है, जिनके लिए मैंने यह सब तैयार कराया था, इसलिए मेरी तबीयत भी किसी चीज़ को खाने की नही रह गई। सब लोग आपस मे बाँट कर खा लो। यह भी अच्छा है कि धीरे-धीरे सब मालूम होता जा रहा है।"

रामू अवाक् हो उठा। कोई उत्तर न देकर वह चुपचाप खडा रहा। एक बार उसने श्रीमती विश्वास की ओर देखा, दूसरी बार मेरी ओर, इतने मे फर्र से एक पहाडी चिडिया आकर दरवाज़े के किवाड के ऊपर जा बैठी और बोली, 'टि टिउ टि टिउ।' अब तक मै संयम के साथ चुपचाप बैठा हुआ था। लेकिन पक्षी की इस बोली को सुनकर इस दृश्य में निहित प्रकृति के व्यग्य पर हँसी आ गई। मुझे ऐसा जान पडा जैसे कोई व्यग्यकार श्रीमती विश्वास की सारी सयोजना और समस्त अनुष्ठान पर अँगूठा दिखा कर कह रहा हो, 'कहिए, क्या राय है!'

मै मानता हूँ इन्ही अवस्थाओ में, ऐसी ही परिस्थितियो मे मै इस निखिल सृष्टि का एक अत्यन्त दुर्बल प्राणी बन जाता हूँ। मै किसी के साथ कोई कठोर व्यवहार करूँ, तो भले ही कर लूँ, मेरे रहते मेरे किसी सम्बन्धित आत्मीय स्वजन के साथ दुर्व्यवहार करे, व्यंग्य करे, अँगूठा दिखाए, चुनौती दे, तो मै अपना रोल, अपनी दृढता, सर्वथा भूल जाऊँगा। एकाएक मुझे ऐसा जान पडा जैसे पहाड़ी पक्षी का वह 'टिटिउ' 'टिटिउ' कथन श्रीमती विश्वास के लिए नही, सीधे मेरे लिए

है और मैं उसके इस चैलेञ्ज को सहर्ष स्वीकार करता हूँ।

इस मनोमन्थन का परिणाम यह हुआ कि मेरे मुँह से निकल गया—"जाओ पछी, तुम्हारा काम पूरा हो गया। इच्छा न होते हुए भी मैं चाय पी लूँगा। और रामू, देखो, दूसरी चाय बना लाओ। यह ठंडी हो गई जान पडती है।" श्रीमती विश्वास की ओर देख कर मैंने कहा—"मेरी तबीयत अब ठीक हो गई है। देवी जी, मैंने आपको बड़ा कष्ट दिया।"

श्रीमती विश्वास की मुख श्री ज्योतिर्मय हो उठी। मुस्कराते हुए उन्होने कहा—"मिस्टर सतीश, आज मैंने समझा कि आपको समझना उतना सरल नही है, जितना मै पहले समझती थी।" इतने मे उस पहाडी पक्षी ने एक बार फुदक कर अपना रुख यकायक बदल दिया। बोला—'टिटिउ · टिटिउ' और पुनः फुर्र कर उड़ गया।

आज रात बड़ी देर तक रेडियो सुनता रहा। फिर भोजन का कार्य-क्रम चला। शाम की चाय मैंने श्रीमती विश्वास के यहाँ पी ली थी। इसलिए फिर रात का भोजन श्रीमती विश्वास का मेरे ही यहाँ हुआ। बहुत नाहीं-नूहीं करती रही। मैंने कहा—"देखिए, देवी जी, मैंने पहले ही कहा था आपसे कि मै प्रतिदान नही हूँ। उत्तर नहीं हूँ। समाधान नहीं हूँ। आदान हूँ, प्रश्न हूँ और समस्या भी हूँ। आप चाहें तो मेरी इस बात पर हँस सकती है। क्योंकि मेरी जगह पर कोई दूसरा व्यक्ति होता, तो अपने को प्रश्न न कह कर आपको कहता। अपने को समस्या न बना कर आपको बनाता। लेकिन निश्चय जानिए मैं अपने अन्दर आपके प्रति इस प्रकार का कोई कुतूहल, विस्मय और प्रश्न नही देखता। मुझे क्षण क्षण पर यही जान पड़ता है जैसे आप एक सामान्य नारी हैं, एक साधारण प्रकृति हैं और प्रश्न तो आप हैं ही नही। केवल उत्तर है। लेकिन जब आप उत्तर है, तो मुझे प्रश्न होने मे कोई आपत्ति नहीं।"

श्रीमती विश्वास, कुछ ऐसा जान पड़ा, मानो क्रोध से उठ कर खड़ी हो गई हों। पर फिर आश्चर्य से हँसती-हँसती बोली—"ओह ! नो, नो, नेवर, नाट ऐट ऑल। आय एम नाट योर आन्सर—डेफिनेटली नाट !" मैंने कहा—"सार, यू डिडिन्ट फॉलो मी ! ·· अ·· मेरा मतलब यह है कि यह आपको मानना ही पड़ेगा, कि ऑफ्टर ऑल, यू आर ए वोमन ! फ्राम दि बाटम ऑव दि मोर्निङ्ग अर्थ एण्ड टु दि एन्ड ऑव दि ईवनिंग होराइजन।·· अ· 'अ' आप इन्कार कर सकती है इस बात से कि आप नारी नहीं हैं ? और मैं, मुझे दुःख के साथ कहना पड़ेगा, मैं इन्कार कर सकता हूँ, इस बात से कि मैं पुरुष नहीं हूँ ? मैं फिर आपसे पूछता हूँ, अगर आप मुझे अपने यहाँ चाय पर बुलाती हैं, तो क्या मुझको यह अधिकार नहीं देती कि मैं आपको 'डिनर' पर बुलाऊँ ? बोलिए, चुप क्यों हैं ? आपने ही तो कहा था, नहीं कहा था कि, प्रत्यक प्रतिदान एक आदान होता है ? मुझको जब आप निमन्त्रण देती हैं, तब क्या यह 'अण्डरस्टुड' नहीं है कि मेरा निमन्त्रण आपको पहले से स्वीकार है ?"

श्रीमती विश्वास सोफे के कोने में बैठी थी। मेरी बात सुन कर, यकायक पैर फैला कर लेट रहीं। साडी का महीन, झीना पट उन्होंने अपने मुँह पर डाल लिया। फिर करवट बदल ली और दो ही मिनट में सिसक-सिसक कर रोने लगी। मैं ऐसी दशा मे क्या करूँ, क्या न करूँ, कुछ तय नहीं कर सका। रामू एक बार दरवाज़े के बाहर आया और लौट गया। दो मिनट बाद भीखू भी आया, खड़ा हुआ, ठिठुका, और चला गया।

यकायक मैं उठकर खड़ा हो गया और कमरे के एक ओर से दूसरी ओर तक टहलते-टहलते मुझे कहना पड़ा—"आपके आँसुओं को मैं बहुत प्यार करता हूँ। आपको शायद मालूम नहीं है, जब मैं सात बालटियों से स्नान करता हूँ, तब अक्सर सोचता हूँ, मैं श्रीमती विश्वास

के आँसुओं से नहा रहा हूँ। आप विश्वास करेगी ? मै आँसुओ का बडा आदर करता हूँ। जब मै अनारदाने के रस का गिलास दोपहर के बाद चार बजे ग्रहण करता हू, तब मै यह नही भूलता कि ससार के समस्त दुखियो, पीडितो, अनाश्रितो के आँसू एक-एक घूँट के रूप में, मै पी रहा हूँ, पीता जा रहा हूँ। मै स्पष्ट कहना चाहता हूँ, काश, आप यह जान सकती, कि दु ख क्या चीज है। काश, आप यह समझ सकती, कि आपके इन आँसुओ का मूल्य कुछ नही है। केवल भावना के आँसू है, प्रमाद के आँसू है और इस प्रमाद को आपने स्वयं अपने हठ और दुराग्रह से पाल रक्खा है। आप एक सुसभ्य नारी है। आपके पास पैसा है। शिक्षा भी आपने उच्च कोटि की पाई है। सस्कार आपके एक सीमा तक यथेष्ट ऊँचे है। फिर मै आपसे पूछता हूँ, आपको दु:ख किस बात का है ? आप क्यो रोती है ? ससार को पीडित समाज के आँसू पोछ कर आप अमृत के झरने मे स्नान क्यो नही करती ? आपको अपने वर्तमान पर प्रसन्न होना चाहिए, गौरव करना चाहिए। आपको शायद न मालूम होगा, कि मै इस विश्वास का आदमी हूँ कि प्रसन्नता ही जीवन का सबसे बडा सत्य है। उठो विश्वास की देवी, उठो, देखो आज सारा ससार तुम्हे प्रसन्न देखना चाहता है।"

रेडियो खुला हुआ था और एक नाटक के अन्त में गायिका गा रही थी :

> "मैना बोल गई चिरय्या कगद लिए जाय,
> मैना बोल गई।"

क्षण भर बाद श्रीमती विश्वास उठ बैठी। अब उनकी आँखो में आँसू न थे, पुलक हास का कम्पन था। अधरों पर आँसुओ की बूँदें न थी, मधुर हास की क्रीड़ा थी। मैने कहा—"अब मै जाता हूँ। आपको सायंकाल का भोजन मेरे यहाँ करना ही पड़ेगा।"

आज अचानक रात को दो बजे मेरी आँख खुल गई। सामने की

खिडकी खुली रह गई थी। उससे बहुत ठंडी, बर्फीली हवा आ रही थी। बड़ी गनीमत हुई कि मेरा बदन कम्बल से ढका हुआ था, अन्यथा बडा गड़बड़ हो जाता। लाइट 'ऑन' कर ली थी। बडी देर तक नींद नही आई। विचारों के बवण्डर से पुनः बुरी तरह घिर गया। कमरे की छत पर लगी चाँदनी की पेंटिंग देखता-देखता मै सोचने लगा :

जीवन का यह भीषण आवर्तन कैसा ? भयकर ज्वालामुखी का यह रौद्ररूप कैसा ? उदधि-गर्जन का यह पीडाकुल, दुर्दान्त आवेग कैसा ? यह सब क्या है, स्वगत ही प्रश्न कर बैठा मै ! मै ? और मै अपने आपसे, बल्कि अपने अन्दरवाले निरीह प्राणी से प्रश्न कर बैठा—यह सब क्या है सतीश ? चल-चित्र देखने के पूर्व जिस प्रकार पात्रों के नाम चक्कर काटते, नाचते दृष्टि के सामने अक्षर के साथ, साक्षात स्वरूप बन कर खड़े हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार मेरी दृष्टि के सामने भी जैसे नियति ने लिख दिया ··स यो · ग · !

मेरे जी में आया—जीवत-क्षेत्र में प्रेम के दो मार्ग स्पष्ट दिखते हैं—संयोग और वियोग ! प्रिय-मिलन मे हृदय का एक साधारण-सा बूँद जैसे विशाल सागर का रूप धारण कर लेती है, इसकी कल्पना तो कोई कवि ही कर सकता है; किन्तु अप्रियमिलन से हृदय की वह एक बूँद संघर्ष के अंगारे में ठीक उसी प्रकार आत्मसात कर ली जाती है, जैसे बालुका-प्रान्त में पड़े छींटे। इसका व्यक्तिगत अनुभव मै जीवन में कर चुका हूँ। इस स्थल पर मै यह निश्चय नही कर सका, श्रीमती विश्वास के निकट मै प्रियमिलन की किस शृङ्खला की कडी के रूप में हूँ।

ज्ञान और विवेक के पारदर्शी यन्त्र द्वारा रहस्यो के उन अनेक छोटे-छोटे पर्तों को देखने की चेष्टा में मै लग गया।

इधर धीरे-धीरे श्रीमती विश्वास में कुछ परिवर्तन मै स्पष्ट देख रहा था। जैसे हिस्टीरिया के 'फिट्स' आते है,वैसे ही दौरे, वैसे ही 'फिट्स'

श्रीमती विश्वास के वार्तालाप में आने लगे। ऐसा जान पड़ने लगा जैसे कुछ वार्तालाप वे मन-ही-मन कर रही है और फिर अकस्मात बीच से, प्रत्यक्ष रूप मे, बोल उठी है। आज भी कुछ ऐसा ही हुआ। सहसा वह बोल उठीं—"ओह, सतीशबाबू, आप क्या घबरा गये ? नही, नही, ऐसा कुछ नही है। हाँ, हाँ, बैठिए, भगिए नही, डरने की आवश्यकता नही। आप, सच, कुछ नही समझते, कुछ। मै समझा दूँगी, सब ?"

मै जो इस प्रकार बीच में ही उठकर चलनेवाला था, यकायक फिर संभल कर बैठ गया।

उन्होने कहा—"सतीशबाबू, मै अकेली हूँ, नितान्त, बिलकुल ! आप देख ही रहे है। मेरे आगे-पीछे शायद कोई है, मै नही जानती ! नही, नही, मै क्या कह गई ! मै क्या करूँ ? कुछ दिमाग ही ऐसा भावुक और चचल बन गया है।"

"इस क्षण आप कैसा अनुभव करती है ?"—जाने क्यो मै उनसे यह प्रश्न कर बैठा—"मेरी यहाँ इस प्रकार उपस्थिति आपको कैसी लगती है ?"

अरुणिम ओठो पर एक मुस्कराहट की रेखा। प्रसन्नता से खिल कर उन्होने कहा—"अब निश्चय ही अपने आपमे, अपने निकट, मै एक वजन-सा अनुभव करती हूँ। बाल-बच्चे है नही, पति आह !" इस कथन के साथ उनकी उस अल्हड़ अँगड़ाई का अर्थ मै नही समझ सका। मैने कह दिया—"तब तो निश्चय ही मै वजन बनकर आपकी मानसिक शान्ति में बाधा डाल रहा हूँ।"

"भगवान् के लिए ऐसा न सोचिए, ऐसा न कहिए, मै अपने को हल्का पाती हूँ।" और इतना कह कर उन्होने एक दीर्घ निश्वास छोड़ी और कुछ विचारमग्ना-सी प्रतीत हुई।

मैने उनकी विचार-धारा को रोकते हुए कहा—"अच्छा, आज्ञा दीजिए, फिर दर्शन करूँगा।"

"अभी तो मैं आपसे और बातें करना चाहती थी, परन्तु यदि मन पर कुछ दबाव पडता हो, तो फिर सही ! लेकिन हाँ, सतीशबाबू, यदि सन्ध्या को आप दर्शन नही देंगे, तो रात्रि को निद्रा का आना दुर्लभ हो जायेगा।"

"नहीं, नही, ऐसा कैसे हो सकता है ! अवश्य दर्शन करूँगा।"

× × ×

वहा से आकर कमरे की एक कुर्सी पर बैठ गया और सोचने लगा–क्या सच वहाँ बैठ कर, उनकी बातें सुनते हुए, मेरा जी ऊब रहा था ?

किसी ने कानो मे कहा—नही, मनुष्य का यह एक ऐसा विलक्षण रोग है, जो बहुधा बहुतो को ईमानदारी से विमुख कर, उन्हे भुलावे मे डालने की चेष्टा करता है। श्रीमती विश्वास क्यो बुरी लगने लगी ? उनमे कुरूपता क्या थी ? उनकी वार्ता मे अशिष्टता कहाँ थी ? उन्होने मेरी हानि ही क्या की ?—मैं अपने आपसे पूछता हूँ—मैंने यह कह कर, कि अब आज्ञा दीजिए, मुझे कुछ अच्छा नही लग रहा है, फिर दर्शन करूँगा, मैं भारी हो उठा हूँ, मैंने अपने में जीवन और जगत् की कितनी महानता समेट ली ? उनके प्रति यह व्यवहार करके मने गौरव की किस चोटी का स्पर्श कर लिया ? मेरा चोर शायद अपना कार्य करने से चूका नहीं ! उसने वहाँ पर भी अपनी प्रकृति का परिचय देने में ही प्रसन्नता का अनुभव किया।

मैं सोच रहा था—मैंने यह व्यवहार करके •

इसका अर्थ तो यही है कि वह जो इतनी शीघ्रता से मेरे निकट आना चाहती है, मैं उसे पसन्द नहीं करता ? यानी मैं उसमें आस्था नहीं रखता ? या आस्था, रुचि और प्रसन्नता की भावना को इसलिए प्रकट नही करना चाहता कि वे यह अनुभव करने के लिए विवश हो जायँ, कि उनका मेरे निकट इतना मूल्य नही है, जितना कि वह अपनी ओर से आँक रही हैं ? तो मैं ऊपर से, कृत्रिम व्यवहार द्वारा,

जो उनके प्रति अन्यमनस्कता का भाव प्रकट कर रहा था, वह क्या पारस्परिक सम्बन्धो मे घनिष्टता उत्पन्न करने के माध्यम के अतिरिक्त और कुछ नही है ? किन्तु इस पर भी मै उनसे श्रेष्ठ हूँ, यह सोचने की कैसी अनाधिकार चेष्टा करने का मै साहस कर रहा हूँ ? उस क्षण निश्चय ही मैने अनुभव किया—पारस्परिक आकर्षण को तनाव, खिचाव गति देते है, जोडते है, शक्ति देते है और उनमे तीव्रता का भी सञ्चार करते है। मै सोचने लगा—क्या मेरा अन्तर का स्वरूप वही है, वैसा ही है, जैसा कि ससार बाहर से, चुपचाप देख लेता है ? विकारों का यह अनन्त सागर क्या किसी क्षण प्रकट भी हो पाता है ? मेरा मस्तक लज्जा से एक बार, एक क्षण के लिए, झुक गया। फिर श्रीमती विश्वास ललित उषाकाल की लावण्यमयी अरुणिमा, अल्हड यौवन की आलस्यभरी अँगड़ाई और गोधूलि-वेला की मनोमुग्धकारी सन्धि और मै क्या सोच रहा हूँ

कोई बात मै छोडना नही चाहता। छोड भी जाऊँ कभी तो फिर उसका याद आना मेरे लिए जैसे अनिवार्य हो गया है। अभी उस दिन की बात है जब रात को उन्होने मेरे यहा भोजन किया था। भोजन के समय उनका 'रोल' बिलकुल 'सबमिसिव' था। मैने जिस-जिस चीज के लिए आग्रह किया, वह उन सबको बराबर ग्रहण करती रही। एक बार तो उन्होने यह भी कह डाला—"मै आज होश मे नहीं हूँ। ज्यादा खा जाऊँ और बीमार पड जाऊँ, तो आप सँभाल ही लेगे।" मुझे ऐसा जान पडा, मानो यह कोरा शिष्टाचार है। मुझको प्रसन्न करने के लिए वह शायद ऐसा कह रही है। लेकिन वास्तव में बात ऐसी ही थी।

दूसरे दिन वह सबेरे अपने उठने के समय पर भी सोती रही। वैसे साधारणरूपसे, साढे पाँच बजे वे उठ जाती थी। दूसरे दिन जब सबेरे मैने भीखू से पूछा—"मेमसाहब क्या कर रही है ?" तो उसने

उत्तर दिया—"मालूम नहीं छोटे भइया ! रामू ते पूछि कै आइत है कि आखिर कौनि बात है, या अबे तक घुमिही रही है ?" थोडी देर बाद मालूम हुआ—वे अभी तक नही उठी है । और तुरन्त रामू ने कहा—"सरकार जान पडता है तबीयत कुछ अलील है । आपको बुलाया है ।"

रामू का उत्तर सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ । थोडी चिन्ता भी हुई । चिन्ता की बात ही है । मेरे यहाँ भोजन करने के बाद कोई अतिथि यदि सबेरे अस्वस्थ हो जाय, तो अपने यहाँ भोजन कराने की जिम्मेदारी पर आँच आना स्वाभाविक हो जाता है ।

श्रीमती विश्वास के यहाँ पहुँच कर जो कुछ मैंने देखा उसका प्रभाव मेरे मन पर पडना स्वाभाविक ही था । दाईं करवट लिए हुए मच्छरदानी के अन्दर लेटी थी । सिरहाने की ओर लगभग डेढ फीट चौडा और चार फीट लम्बा दर्पण लगा हुआ था । सिर के केश पर कुछ झीनी साड़ी का छोर,ग्रीवा पर पडी हुई सोने की बहुत पतली जंजीर और ब्लाउज का किनारा, किनारे का प्रतिबिम्ब, शरीर की वास्तविक रूपशोभा के साथ मिल कर जो दूना प्रभाव डाल रहा था, उसको देखकर मैं थोडा मुग्ध हो गया । परन्तु मैं अभी खडा ही हो पाया था कि श्रीमती विश्वास ने आँखें खोल कर कहा—"आइए, सतीशबाबू, भगवान् की बहुत बडी कृपा है कि आप अपने कमरे में मिल गये । मैं तो सोच रही थी कि आठ बजे से पहले आप क्या लौटेंगे ? क्या आज घोड़े पर सैर करने के लिए नहीं निकले ? अरे, आप अभी तक खडे ही है ?" यकायक इलेक्ट्रिक कॉलबेल के लट्टू पर हाथ पड गया और रामू तुरन्त सामने आ गया । बोलीं—"साहब को चाय लाओ । और देखो, ड्राईफूटस की केवल एक तश्तरी लाना । मैं सिर्फ चाय लूँगी ।' 'जाओ…"

रामू चला गया । मैं उनके पास कुर्सी डाल कर बैठ गया । उन्होने अपनी बाईं कलाई मेरे आगे बढा दी । बोलीं—"फीवर तो नहीं

है ? जरा देखिए, लेकिन हरारत जरूर है। थर्मामीटर तो आप लाये न होंगे, खैर ! टेबिलपर वह पडा है, लेकिन जरूरत क्या है उसकी ? आपको इतना ज्ञान तो होगा ही। यन्त्र आखिरकार यन्त्र ही है। मन के भीतर का यन्त्र तो नहीं हो सकता न ! देखिए, मेरी नाडी पर अपनी उँगलियाँ रखिए। संकोच मत कीजिए।"

इतना कहते-कहते उनका कण्ठ आर्द्र हो उठा और दो मोती जैसे आँसू भी नयनो की कोरो पर झलक पडे।

इतने मे चिक का परदा उठा और रामू चाय की ट्रे ले आया।

इसके पश्चात् लगभग बीस मिनट तक मै उनके यहाँ रहा, लेकिन उन्होने कोई बात कही नही। एक मौन, चिरव्यापक मौन ही उस कमरे में स्थिर बना रहा। आज ऐसा जान पडता है जैसे श्रीमती विश्वास बीमार नही हैं। बीमार मै हूँ। श्रीमती विश्वास तो डाक्टर है। उन्होने मेरे इन्जेक्शन लगा दिया है—बिलकुज नए प्रकार का इन्जेक्शन—आँसुओं का !

: ८ :

एक सप्ताह व्यतीत हो गया, किन्तु इन्जेक्शन का असर जा नहीं सका। सब कार्यक्रम पूर्ववत् चल रहा है। दूसरे दिन श्रीमती विश्वास को बारह बजे ज्वर आ गया था। पहले टेम्परेचर सौ प्वाइन्ट चार रहा; रात को आठ बजे एकसौ एक प्वाइण्ट आठ रहा और दूसरे दिन, प्रात काल साढेछै बजे निन्यानवे! कई दिन तक लगभग यही क्रम चलता रहा। डॉक्टर बी० एन० दास इस मौसम भर के लिए यहीं आ गये हैं और 'सेवाय' होटल में ठहरे हैं। वे नित्य आते, देखते और औषधोपचार की व्यवस्था कर जाते। उन्होंने बताया—"इन्फ्लुएञ्जा हो गया है। फिकर की कोई बात नही है।" मुझे भी जान पड़ा उस दिन डिनर का 'फिनिशिंगटच, दहीबडे और शायद लौकी के रायते से हुआ था। और मेरे बहुत आग्रह करने पर भी अन्त मे गरम-गरम चाय लेने के बजाय उन्होने ठडा पानी ही ग्लास भर कर पी लिया था। हम लोग बँगले के लान पर थोड़ी देर घूमते भी रहे थे। मेरे बदन पर चेस्टर था, किन्तु उनके बदन पर एक पश्मीने की चादर! शायद भीतर वे कोई गरम वस्त्र नही पहने थीं। मैंने कहा भी था—"देखिए इस तरह आप सरदी खा जायँगी।" उत्तर में मुस्करा कर वह बोली थी—"मुझे कुछ नहीं होने का। जुकाम तक तो मुझको कभी होता नहीं।"

उनकी सभी बातें मेरे हृदय-पट पर पुराने चाल की छपी हुई पोथियो की तरह, कागज के अलग-अलग पन्नो में, मोटे टाइप मे, छपी हुई आज तक अंकित हैं। ऐसा जान पडता है, हम एक संयोग लेकर यहाँ आये है और वियोग लेकर यहाँ से जायँगे। फिर सोचता हूँ—क्या व्यापक रूप से समस्त मानव-परिवार का यही परिणाम नही है?

सब अस्त-व्यस्त हो गया है। रात दिन सोचना, सोचना! अहर्निशि श्रीमती विश्वास, श्रीमती विश्वास!

···'सरोवर के जल को ढक रखनेवाली काई की तह को जिस प्रकार तीव्र वायु का वेग एक ओर समेट कर रख देता है और स्वच्छ जल चमक उठता है, आकाश पर छाये बादलों की चादर को जिस प्रकार पछुआ हवा का एक झोका जाने कहाँ उड़ा ले जाता है और नील गगन खिलखिला कर हँस पड़ता है, उसी प्रकार और ठीक वैसे ही ज्ञान की अदृश्य वायु ने मेरे पंकिल मस्तिष्क के विकार को धोकर स्वच्छ बना दिया। '

यद्यपि उस क्षण तक विचार करते-करते इतना थक गया था, कि बस यदि निकट-मन में, मस्तिष्क मे, और शरीर के प्रत्येक अंग में—कोई समस्या न होती, तो निश्चय ही निद्रा की शरण ले लेता। परन्तु नहीं, निद्रा से भी अधिक गर्विता होती है, मानवात्मा की वह अमर भूख वह अमर क्षुधा, वह अनिर्वचनीय विश्लेषण वैचित्र्यदृष्टि, जो निरन्तर लहू की धमनियों में चक्कर लगाती मन पर अपना प्रभाव, आधिपत्य-स्थापित कर लेती है और निद्रा को धक्के देकर शरीर से बाहर निकाल देती है। यह चिन्ता ·? जो शरीर के अणु-अणु को ध्वस्त करती है, आनन्द को आत्मसात करती है और जीवन के उल्लास को क्षार बना कर···

नींद वहाँ न थी—बेचैनी और अस्थिरता, मानसिक उथल-पुथल और विकल जागरण! उठकर मैंने खिड़की से बाहर की ओर दृष्टि दौड़ाई—विस्तीर्ण नीरव पर्वत-प्रान्त अपने में खोया हुआ, किसी समाधिस्थ योगी की तरह; नीरवता से खेलती उपत्यकाएँ, आदृष्टि-पर्यन्त फैली गगाजल-सी पवित्र धवल चन्द्रिका, निस्सीम आकाश और रहस्य के अवगुण्ठन से झाँकता मेरा कौतूहलमय वातावरण!

पर्वत-उपत्यकाओं ने जैसे मूक भाषा में प्रश्न किया—"सतीश! तू यहाँ क्यों आया?" श्वेत, धवल राका ने जैसे ठहाका मार कर पूछा—"तू यहाँ से क्या ले जायेगा, सतीश?" आकाश ने मानो गरज कर

और वाद्ययन्त्रो के जैसे अनेक सम्मिलित स्वरों के साथ मेरे पद की ध्वनि पहले धीरे, फिर कुछ तीव्रता लिए और फिर और अधिक तीव्रता के साथ मेरे चारों ओर—कानों के निकट आ—गूँज कर वातावरण में बिखर गयी फैल गयी ! जो मेरे अन्दर आनन्द का गुञ्जन हुआ, वही जैसे मन की आँखो ने चारो ओर सम्पूर्ण विश्व में थिरकते हुए पाया। लगा, जैसे व्यक्ति के हृदय का आनन्द ही उसे विश्व में आनन्द देने अथवा देखने की अनुभूति पैदा करता है। तो सच, आनन्द बाहर से नही आता, उसकी सृष्टि अन्दर से होती है ?

किन्तु कितनी करुणा है ? कितना दारुण्य है और है युग-युग की सत्रस्त वेदना की कैसी कठोर अभिशप्त छाया ?

टेक की पक्ति को पुन. दोहराया गया—"श्यामसुन्दर अजहूँ नहिं आये "

फिर गीत आगे बढा और मैं उसकी भावना को, उसकी गति को पकडने की चेष्टा कर रहा हूँ

'दीप की ज्योति उदास लगति है,
तारागण सब गगन बिलाये ।
अरुण शिखा बोलत है कब सो,
फिरत न पहरू पथिक मग धाये ।
कमलन के मुख हिलन चहत हैं,
फूल कुमुदिनी के मुरझाये ।"

और सब गीत पूरा हो गया। मैं कुछ चिन्ताकुलयेसा, भूलुण्ठितसा, काष्ठवत मूक, मौन सोचता रहा · "श्यामसुन्दर अजहूँ नहि आये·· "

कौन श्यामसुन्दर ? कब आने का वचन दे गये थे ? अभी तक क्यों नहीं आये ? क्या वह भी मनुष्य है या कुछ और ? और यदि कुछ और है तो क्या उनका भी व्यवहार साधारण मनुष्य जैसा ही···?

बार-बार स्वर ध्वनित होते और गूँजते थे—"श्यामसुन्दर अजहूँ

नहिं आए…?"

उन्हे आने की ऐसी क्या आवश्यकता ? जिसे आवश्यकता हो, वह प्रतीक्षा के सुखमय क्षणो की गणना करता रहे और अपनी प्रतीक्षा की साधना और तपश्चर्या को सफल बनाने का मोह पालता चले ! उन्हें नही आना था, नही आए, नही आना है, नही आयँगे !… क्योकि उनको पडी क्या है ? क्योकि उन्हे क्या आवश्यकता ? · क्योकि वे तो…श्यामसुन्दर है न ?

वह और कोई नही थी, थी वही श्रीमती विश्वास, जो संगीत के महासागर में स्नान कर अपने को हल्का कर रही थी, अपनी जीवन की वेदना की उस अन्तिम बूँद को भी सागर को सोप कर छुट्टी पा लेने की चेष्टा कर रही थी ।

× × ×

जीवन के विस्तृत क्षेत्र मे फैली चन्द्रिका पर, करुणा की, धूमिल छाया की, चादर पडने लगी । शेफाली, जैसे खिलते-खिलते ही तुषार का कोप-भाजन बन गयी । कुशल बगुले ने जैसे कल्लोल का आनन्द लेती मछली को अपने मुँह के अन्दर कर लिया हो ।

मै बडे सोच म पड गया था—क्या वे स्तव सगीत की डोर को—अपनी ध्वनि द्वारा, आत्मा में मिलन का दृढ संकल्प भर कर—अपने लक्ष्य तक इस प्रकार फेंकना चाहती है कि जब आराध्य, उपास्य इनकी 'सुधि-बुधि' बन जाय, इन्हे अपने मे पाले, तब उसी संगीत की डोर का सहारा लेकर या तो आराध्य देव इनके पास तक आ जायँ या वे स्वयं ही वहाॅ पहुँच कर उसकी चरण-रज स्पर्श कर लें ?

किन्तु कैसा भ्रम है ? कैसी मृग-मरीचिका है और मिलन का कैसा उत्कट, भावनाशील मोह ?—और वह केवल उन्ही का मोह क्यों ?… क्या मै स्वयं उसी मोह का शिकार नही हूँ ?· ·और फिर आज का प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक तत्वदर्शी, प्रत्येक त्यागी, यहाँ तक कि समूचा विश्व

ही, क्या मोह-माया-जाल के ताने-बाने जोड़ने में व्यस्त नही है ?

मोह ? ··वंशीरव की मीठी, सुरीली तान भोले मृगशावकों को जाने कहाँ से खीच लाती है ! मोह ?···दीपक की मधुर-मधुर जलने वाली दीपशिखा के सौन्दर्य पर अनगिनत पतगों के शव लोट जाते हैं । मोह ?·· समर-भूमि को जानेवाले सैनिकों के लिए रणभेरी की गर्वोक्ति मरणत्योहार बन जाती है ! जीवन की गह लिप्त, अनुरक्त रखने की भावना—जो अकारण ही ममता का उद्रेक करती है, सञ्चार करती है—क्या मानव के लिए मोह के रूप मे, गतिहीन छाया के रूप मे, अभिशाप नहीं है ? जो भावना विध्वस-मूलक है, सृष्टि-सहारक है, अशिव है, मोह के रूप में उसका स्वागत कैसा ? जीवन की अनेक लिप्सामयी कुटिलताएँ, कुरूपताएँ क्या मोह का गुब्बारा बन कर मानव को धरा-धाम से उठा कर, अनन्त आकाश मे ले जाकर वहाँ से नीचे की ओर नही फेक देती ? किन्तु कितना मधुर एव क्रूर आत्मसमर्पण है उस मृगशावक का, उस पतगे का और उस सैनिक का भी किन्तु· मोह· अपने स्थूल रूप मे जीवन का क्षणिक, क्षुद्र कामोज भी है। व्यस्त स्वार्थो· और अस्थायी सम्बन्धों का घृणित व्यापार भी है ?

ऐ ? तो श्रीमती बिश्वास · ? ··और मैं ? मेरे और उनके बीच की समानान्तर रेखा बना कर जोड़नेवाली डोर ··? · और मोह···?

लेकिन मैंने यह धारणा ही कैसे बना ली, कि ··

जैसे घडी निर्विकार, निरन्तर, टिक-टिक ध्वनि के साथ अपना निस्सीम मार्ग तय करती चलती है, उसी प्रकार मेरे मस्तिष्क मे विचार टिक-टिक कर रहे हैं। जी में आ रहा है–जीवन की यह गति कभी बन्द न होगी । इसके प्रवाह मे जैसे कही, कोई अवरोध नही है। इसी प्रकार सृष्टि और विनाश का क्रम चलता रहेगा ।

इसी क्षण एक शीशे के बीच से वह झाँकती दिखलाई पडी और जब

आँखे चार हुई , तो ऐसा लगा, वह मुझे बुला रही है, आमन्त्रित कर रही है । किन्तु यह शायद मेरे अन्दर की अपनी बात थी, अपनी धारणा थी—और अनायास मैं विश्वास भी कर बैठा ।

लेकिन मै जैसा था, वैसा ही बना रहा ।

तब जैसे उन्होंने समझा, कि मै उनके आशय को नही समझ सका और उनका जी कुछ फीका हो चला ।

उन्होंने कहा—"मै समझती हूँ कि आप यहाँ आना पसन्द नही करते ?" उनके मुख पर करुणा-मिश्रित मुस्कराहट खेल गई और मैंने देखा—उन्होंने दरवाजे को खोल दिया है और उसके मध्य-भाग मे खडी मुझसे बाते कर रही है ।

मै भद्रता-पूर्वक उठकर खडा हो गया और नमस्कार करता हुआ बोला—"मै, बस, अब आपकी ओर आने ही वाला था ।" और मै उनके साथ उनके ड्राइग-रूम मे पहुँच गया ।

वह जैसे घोर परिश्रम करते-करते थक गई थी । हाँफती सी बोली—"बैठ जाइए । इसी सोफे पर बैठ जाइए ।" और उन्होंने अपने बगल मे बिठला लिया ।

उनका वक्ष-प्रान्त खुल गया था, जैसे वे अपने आपके प्रति बेसुध-सी थी । फिर मेरी ओर दृष्टि दौड़ाती हुई बोली—"आप इस हार को देख रहे है ! हाँ, यह अवश्य मेरे पास अनोखी वस्तु है ।" और मुझे पता नहीं, कब —और कैसे और क्यो—उनका नरम हाथ मेरे हाथ को सँभाल कर हार का स्पर्श कराने लगा । बोली- -"पति का, नही, पति नही " फिर जैसे कुछ स्मरण कर आगे बढी, बोली—"हाँ, हाँ, उन्ही का लाया हुआ है ।" एक क्षण जाने क्या सोचकर, जैसे कुछ आवश्यक कथन तो रह ही गया, बोली—"देखिए, यह हीरे आपको कैसे लगते है ? मुझे तो बहुत पसन्द है । जिस समय वह इसे बम्बई से खरीदकर लाये थे, कहते थे, जौहरी ने इस हार को एक रानीसाहिबा के लिए

बनवाया था, पर किसी कारण-वश राजासाहब इसे ले नहीं पाये। इसको पहनने को मेरा बहुत जी करता है, लेकिन सोचती हूँ, पहनूँ तो दिखाऊँ किसको ? बोलिए, आप चुप क्यो है सतीशबाबू ? कुछ भी तो बोलिए।"

मेरे मुँह से निकल गया—"बहुत साधारण बात है। दुनिया मे ऐसे आदमियो की कमी नही है, जिनके पास अथाह सम्पत्ति है, जिनके मकानो का दैनिक किराया तीन-तीन हजार है, जिनके यहाँ हानि-लाभ का दैनिक हिसाब लाखो पर होता है, जो तीस-तीस चालीस-चालीस हजार की कार पर बैठकर शहर से दस मील, बीस मील आगे जाकर खुले मैदान में टट्टी फिरते है।" इस स्थल पर श्रीमती विश्वास यकायक हँस पड़ी। बोली—"आप तो मेरा मजाक बना रहे है।" मैंने कह दिया—"मजाक नही। मै बिलकुल सही कह रहा हूँ। दुनिया मे ऐसे लोगों की कमी नही है जो दस रुपए के फल लाने के लिए बीस रुपए का पेट्रोल खर्च करते है, मगर सुनता हूँ रात को एक बजे से पहले उन्हें नीद नही आती। डेढ पाव दूध भी वे हजम नही कर सकते। करेला, कटहल, बैगन, गोभी, आलू, अर्वी का साग उन्हे हजम नही होता। मलाई खाने को तरसते है। छः-छः महीने, दस-दस महीने से वे सग्रहणी के शिकार है। मट्ठे पर जीवन तुल रहा है। रसगुल्ले का एक टुकड़ा चखने को लार टपकाते है। चाय का एक घूँट नही पी सकते, बर्फीले लेमनस्क्वैश के फेनिल भाग-पान करने से डरते है, काँपते है। एक मील पैदल चलना हो तो, नानी मर जाती है! कोई बाल-बच्चा नही है। पिता-माता इस सोच में आहे भरते हुए परम-धाम सिधार गये कि मेरे बबुआ के एक कानी लड़की ही हो जाती।" इस अवसर पर श्रीमती विश्वास की मुखश्री नितान्त म्लान हो उठी। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। लेकिन मै कहता ही चला गया—"मैंने देखा है, एक करोड़पति सज्जन है; उनको जब अपनी बीबी को

चिट्ठी लिखानी होती है, तो अपने सेक्रेटरी को बुलाते है। उससे कहते है, बहुत रँगीली चिट्ठी लिख लाइए, जिसको पढकर श्रीमती जी मेल से न आकर एरोप्लेन से टपक पडे। उसमे अपनी आत्मा का रस एक-एक शब्द मे घोल दीजिएगा और उन वैशाखनन्दन को इतनी भी तमीज़ नही कि उनकी पत्नी के साथ उनकी अपनी आत्मा और देह का सम्बन्ध है, नकि सेक्रेटरी का। उसमें अपनी आत्मा का रस वह कैसे घोलेगा? लेकिन दुनिया एक कबूतरखाना है और उसमे सब के लिए जगह है। आप मुझे माफ़ करे, अगर मै यह कह दूँ कि इन लोगो की जो पक्ति मेरे सामने है, उन्ही मे से एक आप भी हैं।" यहाँ श्रीमती विश्वास बोल उठीं—"आप मेरे साथ अन्याय कर रहे है।" पर मैंने अपना कथन जारी रक्खा। मैंने कहा—"आपके पास पैसा है। पहाड पर रहने के लिए बँगला है। नौकरो का वेतन चुकाने के लिए और जिस पर तबीयत आ गई, उसको प्रीतिभोज देने के लिए बैंक मे धन-राशि है, लेकिन प्रश्न तो यह है कि दुनिया के दीन, दुखियों, अनाश्रितो, पीडितो, जीविकाहीन दर-दर मारे-मारे फिरने-वाले अधनगे नवयुवको और प्रौढ लोगो के लिए आपके पास क्या है? इस दीन-हीन, अवलम्बहीन, आश्रयहीन जनता को उचित सहायता-सहारा देने के नाते आपकी यह सारी धन-सम्पत्ति और वैभव-ऐश्वर्य आखिरकार दो ही कौडी का है न? बतलाइए, ऐसी दशा मे आप मुझसे क्या कहना चाहती है?"

श्रीमती विश्वास मेरी इन बातो का कोई उत्तर न दे सकी। मैंने लक्ष किया जैसे उनके मुख पर कालिख पुत गई। मेरी पुस्तक अब भी उनकी टेबिल पर रक्खी थी। और अधिक न ठहर कर मैंने अपनी पुस्तक उठा ली और उनसे पूछा—"मेरा ख्याल है, अब तक तो आप इसे पढ चुकी होगी?"

उन्होंने उदासीनतापूर्वक कहा—"पढ़ तो नहीं पाई लेकिन

आप चाहे तो ले जा सकते है।" मै पुस्तक के पन्ने उलटने लगा। चेक अब भी उसमे ज्यो-का त्यो रक्खा हुआ था जिसे निकाल कर उन्हे देता हुआ बोला—"इसे रख लीजिए न ! इधर-उधर डाल रखने से क्या फायदा ?" उन्होने कह दिया—"आप ही रख लीजिए । आवश्यकता पडेगी, तो माँग लूँगी।"

मैने देखा—वह प्रतिक्रियाओ से खेल रही है। इसलिए और कुछ न कहकर मै चुपचाप उनके यहा से चला आया।

अभी चार नहीं बजे थे कि भीखू ने आकर कहा—"आप कुछ सुन्यों मालिक ?"

आश्चर्य के साथ मैने पूछा—"क्या ?"

भीखू बोला—"मेमसाहेब सबके बरे जाडे कै पोसाक खरीद लाई हैं औ दर्जी का हुकुम दीन्हेनि है कि जल्दी-से-जल्दी सब नौकरन के कपडा तैयार कइ देव। रामू कहत रहे कि दुइसै ऊनी कम्मर, कानपुर के कम्मर मील ते बाहै का मँगवाइन है। आवा गा है।"

मेरे मुँह से निकल गया—"होगा, मुझसे क्या मतलब ! तुम्हारे पास तो गरम कपडे है ही। घर पर तुम्हारे बच्चो के पास न हो, तो साफ-साफ बतलाओ। मै रुपया अभी दे दूँ। और कुछ कहना चाहते हो ?"

भीखू ने पैर पकड लिए। बोला—"छोटे भइया कै बात ! अबै पारसाल हम पनचन का ऊनी कपडा बनवाय दीन तेऊ ! का एत्ती जल्दी भूलि गयो ? मेमसाहेब लाखु करैं, अबै आपका छुइ नहीं सकतीं—कउनिउ बात मा। कइयौ जन्म लेक परिहैं।"

मुझे हँसी आ गई। मैने कह दिया—"अच्छा, जाओ। इसी बात पर मेमसाहब को मेरा सलाम बोलो और कहो आपको याद किया है।"

हँसी-खुशी के साथ भीखू कमरे से बाहर चला गया।

: १० :

प्राय मैने अनुभव किया है कि जो हम सोचते है, कल्पना करते है, विचार-विनिमय करके कुछ निश्चय करते है, वह एक ओर पडा रह जाता है और जिसकी हम कभी कल्पना नही करते, अनायास वही हो जाता है। जानता हूँ, यह अनिश्चयवादी, अदृष्टवादी और भाग्यवादी दृष्टिकोण है। किन्तु आज तक मै समझ नहीं सका कि मनुष्य के कर्म-मार्ग मे प्रकृति का यह स्वाभाविक विरोध अर्थ क्या रखता है।

श्रीमती विश्वास के पास मे न जाता, यदि उन पर वैसी प्रतिक्रिया न होती, जैसी भीखू से अभी विदित हुई थी। यह केवल हमारी सामाजिकता है। हमारी वह सामाजिकता है, जिसका सम्बन्ध हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण के साथ है।

अभी-अभी फर्श पर बिछी दरी के ऊपर और मेरे पलँग के नीचे कुछ चीटियाँ रेग रही थी। जान पडता है, रसगुल्ले के रस का एकाध बूँद अथवा चीनी के कुछ दाने इधर कही पडे रह गये थे, इसीलिए ये चीटिया यहा चक्कर काट रही है। कई दिन से मेरे मन में आता है कि चीनी के दानो के साथ चीटी का जो सम्बन्ध है, क्या यहाँ आने के पश्चात् श्रीमती विश्वास के साथ मेरा सम्बन्ध वही हो गया है?

प्रश्न यह है कि मै रात-दिन उन्ही के साथ मन का खेल करने मे प्रवृत्त नही रहता? क्रीडा, कौतुक के अतिरिक्त मेरा कोई कार्य-क्रम नही है? मैने यहा इतना समय क्यों बिता दिया? और अब जो यहाँ से जाने की बात सोचता हूँ, तो एक बेचैनी-स मुझे होन लगती है।

ससार मे ऐसे लोग है, जो अपने साथ न्याय करने की झोक मे आकर कभी-कभी अन्याय भी कर बैठते है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ जो सामाजिक सम्बन्ध है, क्या उसका मूलआधार केवल स्वार्थ

है ? श्रीमती विश्वास के साथ मेरी जो आत्मीयता है, उसके अन्दर मेरे मन में कोई राग नही है ? कामना नही है ? तो यह निकटता क्यों है ? लगाव क्यों है ? क्या इस नाते के अन्दर निरन्तर सजग और सतर्क रहनेवाली मेरे और उनके मन की एकान्तिक एकता है ? साहस के साथ यदि मै उनकी चाँदनी-सी रूप-राशि और सस्कारशीलता के आकर्षण को स्वीकार कर लूँ तो यह मेरा पतन होगा ? नहीं, इस सम्बन्ध को मैं अपना पतन नहीं मानता। मनुष्य के पारस्परिक नातो का मोह मै नहीं मानता कि एकमात्र पतन का मार्ग है। मेरी मान्यता है, कि यह केवल हमारी सामाजिकता का एक पहलू है।

थोडी देर में भीखू ने आकर कहा—"उनके हियाँ याकै बाबूसाहेब आये हैं। अबै-अबै सामान उतरा है। पता नही कि कुआँही। जानि परत है कि आँही कउनौ बडेहे आदमी। कहति है, अबै पूरा सामान नही आय पावा है। बहुत तो अब्बै आवैक बाकी है। मेमसाहेब कहती रहै कि भाईसाहब आँही। यही के मारे आवै कै फुरसति नही है। अबही विइ गुसलखाना मा बन्द भे है। थोडी देर माँ निकरि है। मेम साहेब कहेनि है कि वत्ती जून आपौ आ जायँ, तो नीक होय।"

मै आश्चर्य मे पड गया—भाईसाहब ?—ये भाईसाहब कौन है ? श्रीमती विश्वास के कोई भाई वाई है नही। अपने पिता की वह एकमात्र सन्तान है। पिता उनके नाम जो 'विल' कर गये है, श्रीमती विश्वास ने एक दिन स्वय मुझे दिखलाई थी। आज तक केवल खर्च भर के लिए उन्हे रुपया मिलता है—अठारह हजार वार्षिक। पाँच लाख की सम्पत्ति जो उनको मिलती, वह केवल इसलिए नहीं मिल रही है कि विवाह के बाद ही उनके स्वामी का स्वर्गवास होगया, और दूसरी शर्त के अनुसार उनके कोई सन्तान भी नही हुई।

यह तो हुई बात पिता के उत्तराधिकार की। स्वामी की सम्पत्ति भी पूरी-पूरी उन्हे नहीं मिली। उनके पति के छोटे भाई श्रीमान विमल

विश्वास ने अपने भाई की मृत्यु के पश्चात् उन्हे अपने साथ रहने को विवश किया और अपना आशय स्पष्ट कर दिया था—मिल मे आपके स्वामी का जो 'शेयर' है, उसका लाभ आपको तभी मिल सकेगा, जब आप मेरे साथ रहेगी । स्वामी से रहित एकदम स्वच्छन्द नारी का समाज मे कोई मूल्य नही है । आप एक सम्भ्रान्त परिवार की महिला है । उस परिवार की मर्यादा का पालन आपको करना ही पडेगा । आप पढी-लिखी है और अपना हित और अहित समझती है । आप चाहे तो पुनर्विवाह कर सकती है । पर उस दशा मे आपको मेरे भाई की सम्पत्ति की एक पाई भी नही मिलेगी । हॉ, पिता की सम्पत्ति आपको अवश्य मिल सकती है ।

मै सोच रहा था, यह भाई साहब कही श्रीमान विमल विश्वास ही तो नही आ गये है ! इतने मे भीखू ने पुन: आकर कहा—"छोटे भइया मेमसाहब के भाईसाहेब तो अजब आदमी है । उनका अपनी हिफाजत का बडा धुकुर-पुकुर रहत है ।"

मैने पूछा—"क्यो, ऐसी क्या बात हुई ?"

उसने कहा—"अरे छोटे भइया, चिरैया अस तो उनका जिउ है । दूबरि, पातरि, बन्टे ! औ मजा यहु कि दुनली बन्दूक धरे दुइ-दुइ सिपाही उनके आग-पीछे चलति है !"

मैने कहा—"तो क्या हुआ, बड़े आदमी है । तुमको इस तरह उनका मजाक नही बनाना चाहिए !"

भीखू मुस्कराने लगा । उसने अपना चेहरा नीचा कर लिया । बोला—'छोटे भइया, बातै कुछ ऐसि है कि मुँहते निकरिही जाति है । गुसलखाने मा गये घन्टा भरि होइगा, अबै तक नहइही रहे है । औ छोटे भइया तुमका एकुबात नही मालुम ? वहै, उनका रामू कहत रहै कि विइ टट्टीमा बैठिकै अखबार बॉचति है । उनका अखबार बॉचैका औरु कहूँ ठउरै नही मिल्तत । बप्पा कहति रहै कि पढबु औ पूजा करबु

दूनौ बराबरि है। ई पच अपनि पूजा टट्टी औ गुसलखाने मा करति है। द्याखौ दुनियाँ क तमासा !"

मैने कहा—"भीखू आज तुमको क्या हो गया है ? शौच गये होगे। कुल्ला-दातून किया होगा। फिर हजामत बनाई होगी और अब स्नान कर रहे होगे ! इसमे आश्चर्य की क्या बात है ?"

भीखू जैसे बोलने का आदी हे वैसे ही बोला—"तउनु सही हे छोटे भइया, हम कुछ कहित थ्वारै है उनका। यहु तो रामू कहत रहै कि नहाय का अबै लम्बरु नही आवा। पहिले घण्टा भरि मालिस होइ लेई तब कहूँ नहाय का लम्बरु आई। ई हिसाब ते तीन घण्टा ते पहिले उनका निकरबु न ह्वै पाई।"

मुझे हँसी तो बहुत आई, लेकिन मैने कह दिया—"तुम्हे ऐसी फिजूल की बातो में नही पडना चाहिए भीखू । जाओ, अपना काम देखो।"

बहुत दिनो के बाद एक अमीर-उमरा की बात सुनने का अवसर मिला है। मन मे जैसे एक सोई हुई भूख जाग्रत हो उठी।

कई दिन से श्रीमती विश्वास के साथ विचारो का युद्ध चल रहा था। चलो, उससे मुक्ति तो मिली। अब यह एक नया पहलवान आया है। अब इससे निपटना हे। भीखू को बुलाकर, लाउडस्पीकरवाली 'आशा-कम्पनी' के मैनेजर को एक चिट्ठी लिख दी कि सायकाल मुझसे या तो स्वय मिल जायँ या अपने किसी प्रतिनिधि को भेज दें। तुरन्त ख्याल आ गया कि सम्बन्धित अधिकारियो से अनुमति ले लेनी चाहिए क्योंकि रात को दो बजे तक ग्रामोफोन रिकार्ड्स बजते रहेंगे। भाई साहब का पत्र आ चुका था और प्रकाश के साथ वह आज सायकाल आनेवाले थे और सयोग की बात यह हे कि आज प्रकाश का जन्म-दिन भी है।

फोन करने और आशा कम्पनी वालो को चिट्ठी लिखने में काफी

समय बीत गया ! भीखू को तो उधर से ही बस-स्टैण्ड पर जाने का आदेश कर दिया, जिससे भाई साहब को आने मे कोई कष्ट न हो और मैं बाजार चला गया। प्रकाश के लिए कुछ फ्रूट्स लाने थे, कुछ स्वीट्स, बिस्किट, टॉफी, लेमनड्राप्स, केक और पेस्ट्री इत्यादि। भाईसाहब चाय नही लेते वे काफी पीते है।

मै बाजार से अभी लौटा ही था कि रामू ने आकर कहा—"बडी देर से साहेब आपकी बाट जोह रहे है। मेमसाहब भी कई बार आपको याद कर चुकी।"

मेरे मुँह से निकल गया—"मुझे तो इस समय छुट्टी है नही। भाईसाहब आ रहे है और उनके साथ मे प्रकाश भी है, मेरा भतीजा।"

रामू बोला "तो सरकार ऐसा कीजिए कि पाँच मिनट के लिए चले चलिए। उनका भी कहना हो जायगा और आपका भी हर्ज न होगा।"

सामान यथास्थान रखवा कर मै श्रीमती विश्वास के यहाँ चला गया।

श्रीमान विमल विश्वास के सम्बन्ध मे मैने जो बात सुनी थी, वह सही निकली। मिस्टर विश्वास का व्यक्तित्व वास्तव मे बडा विलक्षण है। —शरीर की गठन जैसी कुछ है, वह भीखू से मालूम ही हो चुकी है। उस पर खूबी यह है कि आप चूडीदार पायजामा और शेरवानी पहने हुए है। कुल मिलाकर जितना आपका वजन होगा, उससे कुछ ही कम आपके कैपसोल्स का, पुखराज के नगवाली दो अँगूठियाँ आपके दाहने हाथ की उँगलियो की शोभा बढ़ा रही है। आयु अभी तीस के लगभग है। लेकिन अगर वस्त्र उतारने की नौबत आ जाय, तो ख्याल कुछ ऐसा है कि जूडी-ताप-बुखार वाले रोगी का चित्र अच्छा बनेगा। एक-एक पसली आप गिन सकते है। नाक पर हलके आसमानी

रंग का रिंगलेस चश्मा चढ़ा हुआ है और आँखों पर स्थिर रखने के लिए नाक पर एक चिमटीनुमा ब्रिज सुशोभित है। घर पर सिगरेट पीते होंगे, लेकिन पहाड़ पर आये हैं, इसलिए सिगरेट का स्थान सिगार ने ग्रहण कर लिया है। मुझे बड़ी हँसी आई जब मैंने देखा कि वे सिगार को दाँतो या होठों के बीच में स्थिर न रखकर सिगरेट की तरह 'स्मोक' करने की चेष्टा में रत हैं।

सर्दी ऐसी कुछ ज्यादा न थी, दोपहर को काफी धूप हुई थी और अभी कुछ समय पूर्व जब मैं 'मार्केटिंग' के लिए गया था तो लौटते समय थोड़ी दूर पैदल चलने पर मेरे बदन में पसीना आ गया था, परन्तु मिस्टर विश्वास को वातावरण की वास्तविकता का बिलकुल ध्यान न था। चाय पीते समय वह शेरवानी पहने हुए थे। सिगार ऐशट्रे में रक्खा हुआ था। श्रीमती विश्वास ने आज 'पोटैटोचाप स्पेशल' बनवाया था, डेरीफार्म से आये हुए मक्खन में तला हुए। उसमें हरी मटर भी पड़ी हुई थी। मुझे जल्दी थी, फिर भी अन्य चीज़ो के साथ-साथ मुझे यह चीज़ पसन्द आई।

श्रीमती विश्वास ने मेरे परिचय में एक वाक्य ऐसा कहा जिसकी जिम्मेदारी से मैं कुछ आतंकित हो गया। उन्होंने कहा—"सतीशबाबू कर्म के जीवन में कैसे हैं, यह तो मैं अभी नहीं कह सकती, लेकिन विचारो के जीवन में इतने कर्तव्यनिष्ठ, क्रान्तिकारी और त्यागी हैं कि हमारे आज के राजकीय अधिकारी सूत्रधारो में उनकी श्रेणी के इने-गिने व्यक्ति ही मिलेंगे। · आप देख ही रहे हैं, वे अपने साधारण जीवन में सिर से पैर तक खादी पहनते हैं। चोकर सहित आटे की रोटी खाते हैं। दाल कम, हरे साग ज्यादा खाते हैं। दावतों में पूड़ी से सख्त परहेज रखते हैं। आज उनकी बड़ी कृपा है, जो उन्होंने हमारे यहाँ का पोटैटो-चाप रुचिपूर्वक स्वीकार किया।"

"सतीशबाबू कर्म के जीवन में कैसे हैं, यह तो मैं अभी नहीं कह

सकती हूँ—" मेरे कर्म के जीवन में श्रीमती विश्वास की कोई आस्था नही है। न हो, मेरे कर्म का जीवन उन्होने अभी देखा ही कहाँ है ? और सच बात यह है, कि मै पहले महत्व विचारों के जीवन को देता हूँ। उसके पश्चात् कर्म के जीवन को। जिसके पास विचारो का जीवन नही है, उसके पास कर्म का जीवन कभी हो ही नही सकता! पहले विचार है, फिर कर्म !

लेकिन मिस्टर विश्वास ने कुछ नाक-भौ सिकोड कर कहा—"हूँ ऊँ, तो आप लीडराने वतन ऐ अ अ मेरा मतलब यह ऐ के एम० पी० ऐं ! टीक ऐ, न्यू-डेलही मे, कनाटप्लेस में चक्कर काटते हुए, मैंने ऐसे बहुत-से, सोकाल्ड नेताओ को देखा ऐ, जो पब्लिक प्लेटफार्म पर आकर अहिंसा और असहयोग पर भाषण दे लेते ऐं, लेकिन प्राइवेट लाइफ में मुर्गा, कबूतर और उसका क्या नाम ऐ आइ मीन येस, बटेर बटेर, डू यू टेक बटेर ? आई उड लाइक टु टेक लिबर्टी बिहाइन्ड दिस क्वेश्चन ! आई थिंक यू उड नाट माइन्ड इट अ अ आपने कभी सवन चिड़िया का अपरेशन चक्खा ऐ। खैर, जाने दीजिए !"

श्रीमती विश्वास की ओर—"देखिए आभी, वो बकरा-वकरा तो चलेगा नेंई, आई विल टेक फिश ओन्ली !" फिर मेरी ओर देखते हुए पूछा—"डू यू लाइक फिश ?" और सिगार को ऐशट्रे में से उठाकर उसे लाइटर से जलाने लगे।

अब मुझे बोलना पडा—"देखिए मिस्टर विमल विश्वास, हमारी आप की यह पहली भेंट है। मै आपके विचारो का आदर करता हूँ। लेकिन इसका यह अभिप्राय नही है कि आप मेरी भावनाओ की उपेक्षा करे। आपको मालूम होना चाहिए कि स्वाद का स्थान, जिह्वा नही, हमारा मन है। आप बात-बात मे बटेर, मुर्ग और मछली ग्रहण करने के सम्बन्ध में मुझसे जो प्रश्न करते है उनसे मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे दिन-रात पशुप-क्षियों को उदरस्थ करने की योजनाओ के अति-

रिक्त आपके पास और कुछ नहीं है। मैं कभी सोच भी नहीं सकता था, कि आज मुझे ऐसे व्यक्ति के साथ बैठकर चाय पीनी है, जिसके संस्कारों के साथ मैं आज ही अपरिचित नहीं हूँ, बल्कि चाहूँगा कि सदा अपरिचित रहूँ। पहली भेंट में किसी सम्भ्रान्त महिला के सामने यदि आपसे कोई प्रश्न करे, कि 'आपने कभी वेश्या को चख कर देखा है, तो आप क्या उत्तर देंगे ?"

मिस्टर विश्वास का चेहरा उतर गया और श्रीमती विश्वास का मुख एकदम से लाल पड़ गया। उन्होंने तत्काल उठकर, काँपते हुए स्वर में कहा—"मुझे बहुत अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि भाई साहब आपने बहुत 'अनमैनरली बिहेव' किया।" और उसके पश्चात् उन्होंने मेरी ओर देखते हुए कहा—"और मिस्टर सतीश मुझे दुख है कि आपमें ज़रा भी 'टालरेन्स' नहीं है।"

अब मुझे उठना पड़ा, और मुझे तो उठना था ही। यकायक इतने में एक ट्रे में कुछ तश्तरियों के साथ चाय का पात्र रखकर लाते हुए रामू ने जो प्रवेश किया, तो मिस्टर विश्वास एकदम से उछल पड़े और भयभीत, कम्पित स्वर में बोल उठे—"ओ माई गाड, चिपकिली, चिपकिली…!"

मिस्टर विश्वास का स्वर कुछ ऐसा भयातुर था कि रामू के हाथ से ट्रे टेबिल पर यकायक छूट पड़ी और उसका परिणाम यह हुआ कि 'टी-पाट' से सारी चाय गिर कर तश्तरियों में जा पड़ी। मिस्टर विश्वास बोल उठे—"नानसेन्स, स्टुपिड, डैम…टुमको सूझ नेंईं पड़ता।"

श्रीमती विश्वास ने पूछा—"लेकिन छिपकली थी कहाँ ?"

मिस्टर विश्वास ने उत्तर दिया—"बैरा के कंधे पर ! और वो ट्रे पर गिरने ही वाली थी।"

श्रीमती विश्वास—"मगर आप तो इस तरह चिल्ला उठे जैसे शेर ने आपको पंजा मार दिया हो।"

और मैंने देखा छिपकली मुड़कर दौड़ती हुई दीवार के कोने में जा पहुँची है। मिस्टर विश्वास बोले—"योर बिहैवियर इज वेरी वेरी डाउटफुल टु मी! आई कैन-नाट टालरेट इट! आई नो आल एबाउट योर प्राइवेट एफेयर्स! आय विल सी।" और उन्होंने मेरी ओर देख कर कहा—"वेरी सारी फार दि अनयूजुअल इन्सीडेन्ट! वी विल मीट अगेन। थैंक्यू फार दिस मीटिंग! गुड नाइट!" और यह कह कर उन्होंने अपना हाथ बढ़ा दिया। कमरे से बाहर आया ही था कि सदर फाटक पर मेरी दृष्टि जो गई तो क्या देखता हूं कि भाई साहब के साथ प्रकाश तो है ही, भाभी भी है! प्रसन्नता से फूल कर उछलता हुआ मैं उधर की ओर दौड़ पड़ा।

अभी बंगले में रंगीन 'बल्बों' की डालें और फैली पंक्तियाँ जल ही पाई थीं और लाउडस्पीकर के द्वारा प्रसारित होनेवाला गायन प्रारम्भ ही हुए थे कि रामू ने आकर कहा—"साहब ने सलाम बोला है और कहा है कि रिकार्डों के बजाने का प्रोग्राम कब तक चलेगा?"

मैंने कह दिया—"दो बजे तक! क्यों? यह सवाल कैसे उठा?"

रामू बोला—"सरकार, यह मैं कैसे जान सकता हूँ। मेमसाहब से बातचीत जरूर हो रही थी, लेकिन अँगरेजी में। मैं क्या जानूँ? उन्होंने जो मुझसे पुछवाया, उसी के लिए मैं हाजिर हुआ हूँ।"

इतने में भाभी वहाँ आ पहुंची और बोली—"क्या बात है?"

मेरे मुँह से निकल गया—"कुछ नहीं, यों ही लैण्डलार्डस की आपसी चख-चख जान पड़ती है।"

इतने में मैं क्या देखता हूँ कि श्रीमती विश्वास चिक के बाहर खड़ी हैं। चश्मा उनके हाथ में है और केशपाश कमर के नीचे तक फैला हुआ है। सौरभ उससे मन्द-मन्द प्रसारित हो रहा है। बाहर खड़े देख कर क्षण भर मैं बोला नहीं! लेकिन भाभी ने देख लिया। चिक का परदा उठा कर बोली—"आइए, खड़ी कैसे हैं?"

मेरी दृष्टि भाभी की ओर थी, लेकिन मेरा हृदय कॉंप रहा था। श्रीमती विश्वास अन्दर आ गई और कुछ सकोच के साथ भाभी से बोली—"इस समय मै एक आवश्यक काम से आई हूँ। प्रकाश कहाँ है? मैने उसे अभी तक देखा नही!—खेलाया नही! मै चाहती थी, उसे आप मेरे साथ खाना खाने के लिए भेज देते! अरे, दीदी आप खडी है, बैठिए। हॉ, अभी-अभी कुमार साहब ने पूछा था ये 'न्यूसेन्स' कब तक चलेगा? मेरे मुँह से निकल गया था, जीवन भर! मेरा कहना यह है कि बडे भाग्य से हम को यह दिन नसीब हुआ है, मै तो चाहती हूँ कि रात भर रिकार्ड्स बजते रहे। इस बीच मे अगर कुमार साहब कुछ कहे भी तो आप 'माइन्ड' न कीजिएगा। अब दीदी, आप बहुत थकी होगी। मैने असमय आपको कष्ट दिया। खाना तो आपने लिया न होगा अभी। अगर सम्भव हो तो हम लोग एक साथ बैठ कर भोजन करे और प्रकाश ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"वह थका हुआ था, उसे नीद आ गई है। भाभी तो अभी-अभी आई है। भोजन हम लोग साथ बैठ कर फिर कभी करेगे। आज क्षमा करे।"

भाभी बोली—"हॉ, मै भी ऐसा ही सोचती हूं। मुझे पहले से मालूम नही था कि सतीश आप जैसी सम्भ्रान्त महिला के अतिथि है। नही तो मै और भी पहले आ जाती।"

श्रीमती विश्वास बोलीं—"ऐसी आत्मीय भावना के लिए धन्यवाद एक छोटी-सी चीज जान पड़ती है। अच्छा!" कह कर मुस्कराई और नमित मुख द्वार के बाहर चली गईं। उनकी साडी की सिकुड़न जब आपस में घिसटती, तो उससे एक विचित्र स्वर निकलता। उनकी छूटी हुई, बिखरी हुई आलुलायित कुन्तल-राशि का सौरभ, उनकी बनक, उनकी मन्द-मन्द गति से एक विशेष व्यक्तित्व का प्रभाव इन दो ही क्षणो मे जैसे उस कमरे भर में छा गया।

भाभी के मुँह से निकल गया—"मेरा ख्याल है, अब तक तो तुमने नाटक लिखना शुरू कर दिया होगा ?"

मै बहुत सकुचित हो उठा। मेरा हृदय धडक रहा था। अनायास मेरे मुँह से निकल गया—"कल्पना सदा सही नही होती। कभी-कभी तो वह सत्य से बहुत दूर जा पडती है। यदि तुम ऐसा सोचोगी भाभी, तो अनजान ही में मेरे साथ जो अन्याय हो जायगा, उसका समाधान करने में तुम्हे बडी कठिनाई होगी। वैसे कोई बात नहीं है।"

भाभी मुस्कराई, बोली—"बात बनाना कुछ ज्यादा सीख गये हो सतीश ! अच्छा चलो, अब खाना खायँ। उनकी सन्ध्या भी समाप्त हो गई होगी।"

मुझे बडा आश्चर्य हुआ। मेरे मुँह से निकल गया—"अच्छा, तो भाईसाहब सन्ध्या भी करने लगे ! कब से भाभी ?"

भाभी बोली—"एक यही बात नही, अभी उन पर होने वाले नए परिवर्तनो की ऐसी अनेक बातें है, जिन्हे सुनकर बडा ताज्जुब होगा।"

हम लोग जब दूसरे कमरे मे पहुँचे, तो पास के ही कमरे से जरा जोर के साथ ये शब्द सुनाई पडे—"शट अप !"

यह स्वर विमल विश्वास का था।

: ११ :

भाईसाहब के चरणो की रज मस्तक से लगाकर उनके पलँग के निकट अभी खड़ा ही हुआ था कि वे बोले—"देर से सोने के कारण आज मै बहुत सवेरे उठ नही सका। उदय के समय सूर्य भगवान् को मेरा अर्घ्य नही मिला। क्या कहते होगे वे ? न भी कुछ कहे, तो मेरा मन तो नहीं मानता। तुम तो चार मील घूमकर लौटे होगे ! जरा देखना है, घूमने के लिए कौनसा घोड़ा तुमने पसन्द किया है।"

भइया की बातें अभी चल ही रही थीं, कि इसी समय खिन्नमना, सहमी-सहमी-सी भाभी वहाँ आ पहुँची और बोली—"तुमने कुछ सुना ?"

मैंने देखा—उनका दम फूल रहा है। सीना उभरता और गिरता है। वे अत्यन्त परेशान-सी दिखती है। मै एकदम से घबरा गया। लेकिन भाई साहब की मुद्रा में कोई परिवर्तन नही हुआ। वे ज्यों-के-त्यो स्थिर बने रहे। भर्राए हुए स्वर मे मेरे मुँह से निकल गया—"आखिर हुआ क्या भाभी ? साफ-साफ कहो न !"

भाभी और खड़ी न रह सकी। पलँग के पास दो कुर्सियाँ पडी थीं। कुछ सकुचित सी होकर साडी को मस्तक की ओर खिसका कर उन्हींमें से एक पर बैठ गईं और बोलीं—"भीखू कह रहा था, मेम साहब हास्पिटल मे हैं। हालत बहुत खराब है, बचने की कोई उम्मीद नहीं है। खून की पेशाब हुई है।"

सहसा मै चौक उठा—खून की पेशाब ?

भाईसाहब उठे। जैसे गम्भीर थे, वैसे ही बने रहे। बोले नहीं कुछ। बाथरूम की ओर चले गए। उनकी प्रतिक्रिया की तीव्रता का मै अनुमान नहीं लगा सका। मैंने कहा—"भाभी स्थिति बड़ी गम्भीर है। ईश्वर ही मालिक है। मुझे तो ऐसा लगता है, कि कहीं दाल में कुछ

डूबता हुआ आदमी तिनके का सहारा लेता ही है। जान बचाने के लिए वह न्याय-अन्याय की परवाह नहीं करता। अगर उसने रुपए के बल पर सिखा पढ़ा कर किसी से कुछ-का-कुछ कहलवा दिया, तो ?—नहीं, नही, तुम नहीं जाओगे।"

भाभी के कथन मे अब कुछ तीव्रता आ गई थी। इतने में बाथरूम की घण्टी बजी और भीखू ने वहाँ से लौटते हुए सरलता के साथ कहा—"छोटे मालिक, तिनुकु सुनौ! बडे सरकारौ आय रहे हे!"

अधिक समय नही व्यतीत हुआ। भाईसाहब सामने आ गए। टावल अब भी उनके हाथ मे था। हाँ, वे कुछ सोचते हुए से अवश्य प्रतीत होते थे।

भाभी उनकी ओर उन्मुख होती हुई बोली—"देखो, सतीश नहीं मान रहा है। रोको न उसको!"

भाईसाहब के सामने मे कुछ नही बोला। मूक, मौन ही बना रहा। तब भइया स्वय बोले—'मै जानता था, तुम अवश्य जाओगे। तुम्हारी जगह मे होता, तो मुझे भी जाना ही पडता। तुम जा सकते हो।"

भाईसाहब के इस कथन की भाभी पर क्या प्रतिक्रिया हुई, सो कहना मेरे लिए कठिन है, उसे मै सही-सही ग्रहण भी नही कर सका। हाँ, यह बात मेरे मन में अवश्य आई थी, कि भाभी को इस निर्णय से अधिक प्रसन्नता नही हुई होगी।

भइया ने जब यह बात कही कि तुम्हारी जगह पर मै होता, तब मै सशकित अवश्य हो गया था। एक क्षण के लिए मै सोचने लगा—क्या यह श्रीमती विश्वास के प्रति मेरे सम्बन्ध को जान गए है? क्या जान गए है? कितना जान सके है? उतना ही क्या सम्पूर्ण जानना है? किसने उनसे एक रात के अन्दर ही ये सब बातें जड दीं?—भाभी ने?—क्योंकि कल ही तो वे कह रही थी कि सतीश अब तक तो

तुमने नाटक लिखना शुरू ही कर दिया होगा !

इस घटना को हुए आज कई वर्ष बीत गए है, लेकिन भइया की उस गुरु गम्भीर मुद्रा को अभी तक भूल नही पाया हूँ। ऐसा जान पडता था, वे सब कुछ जानते हैं। मेरा उनसे कुछ भी छिपा नहीं है। कभी सोचा नहीं था, जिनकी भगिमा तक से भय खाता हूँ, वे मेरे सिद्धान्तो के इतने निकट हैं। कभी अनुभव नही किया था, जिनसे मैं कॉपता हूँ, उन्हीं की गोद में मेरा सिर रक्खा हुआ है। मैं तेजी से बाहर आया और भीखू को फौरन एक टैक्सी लाने का आदेश कर मैं बाथरूम के अन्दर जा पहुँचा।

वर्षों के समान व्यतीत होने वाले क्षण, अँधेरा हो कि उजाला, दिन हो कि रात, वर्षा हो कि निदाघ, होली हो कि दीवाली, होते बडे उत्तरदायित्वपूर्ण हैं। वे हमारे साहस की परीक्षा लेते हैं। वे हमारे कर्म के नमूने हैं—कर्तव्य की कसौटी। बैठते ही गाडी स्टार्ट होने पर थी कि यकायक भाईसाहब पुन बरामदे में आ गए और एक उँगली उठा कर बोले—"ठहरो, मैं भी आया।"

उनके आने में दो-तीन मिनट लगे। वे अकेले नही थे। उनके साथ भाभी भी थीं। भइया ज्योंही गाडी पर बैठे, त्योंही वे बोल उठीं—"चलती तो मैं भी लेकिन मुन्ना अभी उठा नही है। कैसे चलूँ ? आज तुम्हारी पूजा में भी देर हो जायगी। जल्दी ही लौट आना, वरना मेरी तबीयत घबरा उठेगी।"

इस पर भाईसाहब तो कुछ नहीं बोले। मेरे मन में आया—कह दूँ—'घबडाने की कोई बात नही है भाभी। और हो भी तो वह कर्तव्य की पुकार के सामने हल्की है।' भाभी की बात पर ध्यान न देते हुए भइया ने ड्राइवर को, सर हिला कर, सकेतात्मक ढग से आदेश कर दिया—"चलो।"

जो कुछ मैंने सोचा नही था, यहाँ तक कि जिसकी मैं कल्पना नहीं

कर सकता था, वही सब मैं आँखो देख रहा था। श्रीमती विश्वास अचेत पड़ी थी। पलकें बन्द थी—मुखम्राम्लान। दाहना हाथ बॉई पाटी पर पड़ा हुआ था। कमरे मे फिनाइल की बू आ रही थी। कुमार साहब बगल के कमरे मे बैठे हुए थे, जिसका दरवाज़ा कुछ खुला हुआ था। हम लोगों के अन्दर पहुँचते ही नर्स ने कुछ इस प्रकार बातचीत की जैसे हम लोग कोई अजनबी हैं और अनधिकारपूर्वक भीतर घुस आए है। उसके मुँह से केवल इतना निकल पाया—"आप लोग यहाँ ···।" परन्तु उसे दूसरे ही क्षण अनुभव हुआ, अब आगे कहने की आवश्यकता नही है। जो शब्द निकल गए हैं, अच्छा होता कि वे न निकलते। क्योंकि गाउन के अन्दर हाथ ले जाकर जो कागज़ वे भीतर की ओर खोस रही थी, उसका शिरोभाग पॉच रुपये के नोट का था। अब मैंने देखा कि जिन शब्दो के साथ जुड़ जाना चाहिए था—यह वाक्य कि यहाँ कैसे आ गए, वह आप-से-आप इस रूप मे बदल गया कि 'खामोश रहेगे तो मरीज़ के हक मे अच्छा होगा।'

भाई साहब—"आय नो आल दैट।"

नर्स की दृष्टि एक बार पुन एक क्षण के लिए भाईसाहब पर जा टिकी और वह कुछ सहम-सी गयी।

इतने मे कुमारसाहब का एक रायफलधारी गार्ड वहाँ आ पहुँचा। बोला—"सरकार ने आपको सलाम भेजा है।"

भाईसाहब ने उत्तर दिया—"कह दो उनसे वही बात कर लें। यहाँ मुझे और भी जरूरी काम है।" और वे एक ओर चल दिए। आते समय, रास्ते में ही, मैंने देख लिया था—एक रूम के दरवाज़े पर लटकता हुआ नेमप्लेट, जी० एस० मेहता, · वियना। और नीचे की ओर लिखा था—हेड सर्जन। भाईसाहब उनके यहाँ पहुँचे ही थे कि वे स्वयं बाहर निकल आए और मैं यह देख कर हैरान रह गया। जब उन्होने बहुत प्रेम के साथ, भइया के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—

"ओहो ! जगदीश ! यहाँ कैसे ? आओ, अन्दर आ जाओ !"

हम लोग बातें करते हुए डॉक्टर मेहता के रूम में पहुँच गए। वे बोले—"चाय, काफी ?"

भइया ने उत्तर दिया—"वह सब फिर कभी देखा जायगा। मैं तो इसकी कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि तुम यहाँ होगे ! भाई वाह ! खैर, बाकी बातें बाद में होंगी। पहले यह बताओ कि श्रीमती विश्वास कैसी हैं ?" एक क्षण रुक कर—"यह मामला क्या है ?"

डॉक्टर मेहता ने उनका हाथ अपने हाथ मे ले लिया और कन्धे को अपनी ओर घुमा कर, थोड़ा अलग ले जाकर धीरे से उनके कान में कुछ कह दिया। दो मिनट रुक दोनो वहीं कुछ बातें करते रहे। अन्त मे डॉक्टर मेहता उन्हे अपने ड्राइंगरूम में ले गए। भइया का संकेत पाकर मै भी साथ हो गया था।

हम अभी कुर्सियो पर बैठे ही थे कि डॉक्टर साहब बोले—"मैं आपकी बात से सहमत ज़रूर हूँ, मगर इस सिलसिले में मैं आपकी कोई मदद नही कर सकूँगा। मैं पहले अपना फर्ज देखूँगा। जब तक वे एकदम ठीक नही हो जाती, तब तक उनका भी सहयोग आपको नहीं मिल सकेगा।"

भइया बोले—"देखिए मिस्टर मेहता, मै आप पर कोई नाजायज़ दबाव नही डालना चाहता। अगर सच बात छिपाने की आप कोशिश करेंगे, तो मुझे यह भूल जाना पड़ेगा कि आप मेरे मित्र हैं।" और इतना कहते हुए वे अपनी रिस्टवाच देखने लगे।

डॉक्टर मेहता अब गम्भीर हो उठे। अपनी सिगरेट जलाते हुए बोले—"अगर मैं भूल नहीं करता मिस्टर जगदीश, तो आप इस हॉस्पिटल का इन्सपेक्शन करने नही आए, बल्कि स्वास्थ्यलाभ और सैर-सपाटे के लिए आए है। इसलिए मैं नही चाहता, कि आप जान-बूझ कर अशान्ति मोल लें। यो आपको पूरी आज़ादी है, जो

चाहे करें।"

भाईसाहब ने उसी गम्भीरता के साथ कहा—"आप मुझे क्षमा करेंगे अगर मैं यह कह दूँ कि जहाँ तक न्याय का सवाल है, मैं यह नहीं देखूँगा कि आप हमारे पुराने मित्र हैं। अशान्ति अगर मेरे सिर पर आग का गोला बन कर आती है, तो मैं देखूँगा उसमें कितनी ज्वाला है, उसका तापमान कितनी डिग्री का है। जो कुछ अब तक होता चला आया है, मैं यह मान कर न चलूँगा, कि वही उचित भी है। आपको साफ-साफ यह बतलाना होगा, श्रीमती विश्वास को शर्बत के बहाने 'प्वायज़न' दिया गया है।"

डॉक्टर मेहता अब कुछ सहम गए। अपने चश्मे के ढीले फ्रेम को नाक के ब्रिज पर पुन स्थिर करते हुए उन्होंने कहा—"मुझे जो कुछ कहना था, वह मैं कह चुका। अभी मेरा राउण्ड पूरा नही हुआ है। इसलिए इस वक्त तो आप मुझे माफ करे। इस सिलसिले में मैं आपसे फिर मिलूँगा।" इतना कह कर वह ज्योंही दरवाज़े से बाहर निकले, त्योंही हॉस्पिटल के कम्पाउण्ड के अन्दर आती हुई एक कार का हार्न सुनाई पडा। हम लोग जब बाहर आए, तब मैंने देखा—एक पुलिस-वान! रुकने पर उससे उतरे डी० एस० पी० महोदय और पाँच कान्सटेबिल!

मैं सोचने लगा कि यह पुलिसवान यकायक यहाँ कैसे आ गया? क्या भीखू से कपडे पहनते हुए उन्होंने पुलिस-स्टेशन को फोन भी कर दिया था?—यह सोच-सोच कर मेरा रोम-रोम उनकी सतर्कता के प्रति श्रद्धाभाव से सिहर उठा। मैंने भाईसाहब की ओर जो ध्यान से देखा, तो मुझे उनका यह वाक्य पुनः स्मरण हो आया—तुम्हारी जगह होता, तो मैं भी यही करता।

❋

: १२ :

जिन बातो के सम्बन्ध में हम केवल अनुमान लगाया करते है, उनका निश्चयात्मक स्वर हमें कभी नहीं मिलता। हम जानते है कि पत्नी कोई बात छिपा रही है अथवा झूठ बोल रही है; बात बना कर कह रही है या लपेटबाज़ी मे इस प्रकार बतला रही है कि वस्तुस्थिति के मूलाधारो का हमे पता ही नही चल पाता—केवल इसलिए कि हमारे बहुतेरे अनुमान कभी-कभी मिथ्या भी हो जाते है।

श्रीमती विश्वास को विष दिया गया, यह बात निश्चित थी। लेकिन किस प्रकार दिया गया और किसने दिया, निश्चितरूप से न इसे भइया जानते थे, न मैं! एक बात और थी। जब श्रीमती विश्वास को विष दे दिया गया, तो वे हॉस्पिटल कैसे पहुँची? जो व्यक्ति किसी के प्राण लेना चाहता है और इसीलिए उसको विष देता है, वही उसको—प्राणरक्षा के लिए—हॉस्पिटल क्यो ले जाने लगा? कही ऐसा तो नहीं है कि कुमारसाहब सन्देह के डर से उन्हे हॉस्पिटल ले गए हो! तात्पर्य यह कि कुमार साहब श्रीमती विश्वास को हॉस्पिटल ले गए या नही, यह भी अनिश्चित है। तब प्रश्न यह उठता है कि वे आखिर हॉस्पिटल पहुँची कैसे?

डी० एस० पी० मिस्टर मित्रा के आ जाने पर भाईसाहब ही सब से पहले उनसे मिले थे और उन्होने ही उनसे कहा था—"फोन मैंने ही आपको किया था। मुझे ही गिरीश कहते है। मैंने ही आपको यहाँ आने का कष्ट दिया है। मैं चाहता हूँ पहले आप हॉस्पिटल की पूरी छानबीन करले। खून की पेशाब हुई है और वह बहाई गई है, इसका आसानी से पता लग जायगा। हॉस्पिटल के 'ए' वार्ड के मेहतर के, इसी वक्त, कलमबन्द बयान ले लिए जायँ, ताकि डॉक्टर मेहता को उसे कुछ समझाने का मौका न मिल सके।"

यह बात मेरे सामने भइया ने एकान्त मे ले जाकर मौलश्री-वृक्ष के सामने वाले लाइटपोस्ट के पास खडे होकर उनसे कही थी और इस बात को सुनकर डी० एस० पी० साहब थोडा मुस्कराए भी थे। मुझे पास ही खडा देख कर उन्होंने भइया से पूछा था—"आप ?" और उन्होने उत्तर दे दिया था—"मेरा छोटा भाई सतीशचन्द्र, कानपुर '' कॉलेज में लेक्चरर है।"

डॉक्टर मेहता अभी अन्दर नही गए थे। वे पारकर पेंसिल को होठो से लगाए, कुछ सोचते हुए, धीरे-धीरे, टहल रहे थे। डी०एस०पी० के हाथ मे एक नोटबुक थी—छोटी, बहुत आसानी से जेब के अन्दर पडी रहने वाली। बहुत जल्दी में उन्होंने कुछ नोट किया और भइया से लापरवाही के साथ, धीमे स्वर मे बोले—"बहुत-बहुत शुक्रिया। सब से पहले मुझे यह जान लेने की जरूरत है कि श्रीमती विश्वास को आप कैसे जानते हैं ?"

मेरी ओर देखते हुए भइया ने कहा—"मैं तो अभी कल ही आया हूँ इसलिए उनके सम्बन्ध मे ज्यादा जानकारी नही रखता, कुछ कह सकना भी मेरे लिए कठिन है। हाँ, सतीश अलबत्ता दो महीने से उनका अतिथि है। हम लोग इन दिनो दो ढाई महीने के लिए प्राय. हर साल पहाड चले आते हैं। मैं चाहे इस वर्ष यहाँ न भी आता, लेकिन सतीश के कारण मुझे आना ही पड़ा। श्रीमती विश्वास के सम्बन्ध मे मैं इतना ही कह सकता हूँ कि वे एक सुसंस्कृत नारी हैं और बुद्धिजीवियो के साथ उनका सौजन्य इधर पहाड़ी-प्रान्त मे घर-घर चर्चा का विषय बना हुआ है।"

इसके पश्चात् भइया मेरी ओर देखने लगे। इसका अर्थ मैंने यह समझा कि भइया चाहते हैं, इस प्रसंग मे जो भी ज्ञातव्य बातें हो, मैं उन्हे प्रकट कर दूँ। अतएव मैंने कह दिया—"जहाँ तक मेरी जानकारी का सम्बन्ध है, मैं इतना कह सकता हूँ कि श्रीमती विश्वास एक छोटी-

मोटी जायदाद की स्वामिनी है। कुमारसाहब उनके सगे देवर है। दोनो मे बराबर विरोध रहता है। कुमारसाहब चाहते हैं कि वह उनके साथ रहे और उनकी हुकूमत के अन्दर अपनी आजादी बेच कर दिन व्यतीत करे। लेकिन श्रीमती विश्वास को यह सहन नही। आप जानते हैं, दुनिया के सारे झगडे 'जर, जमीन और जन' इन तीन z s के घेरे में आ जाते है। कल रात को ही एक सीमा तक काफी झगड़ा उठ खड़ा हुआ था और उसका जो परिणाम हुआ, वह आपके सामने है।"

मिस्टर मित्रा कुछ सोचते हुए तुरन्त फोन पर चले गए। अब वह क्या करेंगे, उनका अगला कदम क्या होगा, मै यह सोच ही रहा था कि इतने मे वह फोन करके लौट आए और डॉक्टर मेहता से बोले—"मेरा ख्याल है डॉक्टर मेहता आप ही है ?"

"जी फरमाइए !"—डॉक्टर मेहता ने उत्तर दिया।

इसी समय इन्सपेक्टर रहमतअली कुछ अन्य कान्सटेबिलो के साथ वहाँ आ गए। एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट इनसे दो मिनट पहले आ गए थे, जो निकट ही एक कुर्सी पर बैठे, कार्यवाही की देख-रेख करते हुए सिगरेट फूक रहे थे। रहमतअली ने एक सलाम दाग दी और डी० एस० पी० की आज्ञा की प्रतीक्षा मे चुपचाप खडे हो गए।

मिस्टर मित्रा तपाक से बोले—"हाँ, डॉक्टर साहब, क्या मै जान सकता हूँ कि श्रीमती विश्वास जिस वक्त हॉस्पिटल में दाखिल हुई आप क्या कर रहे थे ? हाँ, फरमाइए साहब, मुझे उम्मीद है आप सच ही कहेगे।"

रहमतअली ने इसी समय फाउण्टेनपेन जेब से निकाल लिया।

डॉक्टर मेहता बोले—"मुझे जो कुछ भी कहना है, वह मै डिस्ट्रिक्ट जज के सामने कहूँगा !"

इस पर मिस्टर मित्रा उनकी बुद्धिमानी पर कुछ व्यग से मुस्कराए—"हूँ...तो यह बात है ! अच्छा तो साहब, दो-दो हजार की दो

जमानतें और एक हजार का पर्सनल मुचालका दाखिल कीजिए। अब आप पुलिस-कस्टडी में हैं।"

डॉक्टर साहब कुछ परेशान-से दिखाई दिए। इसी समय कुमार साहब अपने आप अन्दर आ गए। भाईसाहब बोल उठे—"आप ही श्रीमती विश्वास के देवर श्रीमान् विमल विश्वास हैं।"

इस पर कुमार साहब ने मिस्टर मित्रा की ओर उन्मुख होते हुए कहा—"गुड मोर्निंग!" और बगल में दबे हुए हैट को टेबिल पर रख दिया।

मिस्टर मित्रा ने कुमार साहब को पहले ध्यान से देखा और फिर प्रतिनमस्कार का उत्तर देते हुए कहा—"गुड मोर्निंग कुमारसाहब, आइए, तशरीफ रखिए, मैं आपकी याद कर ही रहा था।"

कुमारसाहब कुछ परेशान-से जान पड़े। पेण्ट की जेब से एक चेक-डिजाइन का रूमाल निकाल कर उन्होंने अपने मुँह को पोंछ लिया और बोले—"कहिए, क्या हुकुम है?"

इस पर मिस्टर मित्रा ने प्रश्न किया—"आपकी स्टेट से सरकार को क्या मालगुजारी मिलती रही है?"

कुमार साहब बोले—"एप्राक्सीमेटली ट्वेन्टी थाउजेंड!"

"हूँ, तो आप बड़े आदमी हैं। मेरा ख्याल है आप को यह मजूर नहीं है कि 'हसबेंड' के गुजर जाने के बाद आपकी भाभी साहबा इस दुनिया में रहे और जायदाद से अपने गुजारे का खर्च बराबर लेती रहे। जमींदारी खत्म हो जाने के बाद जरूर आपने कोई नया बिजनेस स्टार्ट किया होगा?—एम आय रॉग?"

अब मुझे बोलना पड़ा—"आपका एग्रीकल्चर फार्म लगभग दो सौ बीघे का है और पिछले साल भर में जो ट्रैक्टर, प्लाउज और दूसरी मशीनें आई है, वे सब करीब-करीब एक लाख की है। दो पक्के कुएँ उस फार्म में बनवाए गए है, जिनमें 'ट्यूबवेल्स' लगे हुए हैं।"

मेरे इतना कहने पर मिस्टर मित्रा थोडा मुस्कराए और कुमारसाहब बोले—"आल दी योर बिजनेस इज़ बेस्ड ऑन अपोज़िट पार्टी, एन्ड दी इन्फ़र्मेशन इज़ करेक्ट—क्वाइट करेक्ट !"

कुमारसाहब की ओर से ध्यान हटाते हुए मिस्टर मित्रा ने यकायक पूछा—"डॉक्टर साहब, कल रात को 'नाइट ड्यूटी' पर कौन-कौन नर्सेज थी ? उन्हे मै देखना चाहता हूँ।"

"मिस रोज़ा, रजिस्टर पेश करो।"

कुछ क्षणो के अन्दर ही चार नर्से उनके सामने थी। मिस्टर मित्रा बोले—"मिसेज़ विश्वास किसके चार्ज मे थी ?"

एक नर्स ने आगे बढ़कर कहा—"जी मेरे, मेरे चार्ज मे !"

अन्य नर्सो की ओर आँख उठा कर उन्होने कहा—"आप लोग जा सकती है।"

जब वे चली गई तो मिस्टर मित्रा ने उससे पूछा—"नेम प्लीज़ ?"

नर्स—"मिस रोजा हडसन।"

मिस्टर मित्रा—"हाँ, मिसेज विश्वास किस वक्त यहाँ आई ?"

मिस रोजा हडसन—"नियर एबाउट थ्री ए० एम०।"

"आई सी।" रहमतअली आज्ञा पाकर कब के बैठ चुके थे और मिस्टर मित्रा के साथ ही वह स्वय भी सब कुछ अलग नोट करते जाते थे।

अब डॉक्टर साहब उठ खडे हुए और बोले—"मुझे ज़रा फोन करना है।"

मिस्टर मित्रा—"गोकुल, साथ जाओ !—जाइए साहब।"

डॉक्टर साहब आगे-आगे, गोकुल पीछे-पीछे।

मिस्टर मित्रा—"एस, मिस रोजा, क्या आप बतला सकती है कि डाक्टर साहब ने जो दवा मिसेज विश्वास को दी, वह क्या थी ?—और उसका मक़सद किस 'नेचर' की तकलीफ दूर करने का था ?"

मिस रोजा चुप थी।

मिस्टर मित्रा—"देखिए, मिस रोजा, आप बिल्कुल ठीक-ठीक बतला दीजिए। वरना हमें आप को भी पुलिस-कस्टडी में लेना पडेगा। डू यू फालो माय प्वाइंट ?"

मिस रोजा—"प्रिस्क्रिप्शन फाइल मे है। आप देख सकते है। मैं अभी लिए आती हूँ।"

इतने में फोन की घटी बजी और एक नर्स ने ज्योंही उसका रिसीवर पकड़ा, त्यो ही मिस्टर मित्रा बोले—"डोन्ट टच इट मैडम, परहैप्स दी काल इज़ माइन।" और इतना कह कर उन्होने रिसीवर उठा कर कान मे लगाते हुए कहा—"ओ···, ठीक है। एस, एस, अच्छा एक काम करो, तुम्हारी यहाँ जरूरत नही है। कैमिल्स बैक रोड जहाँ से शुरू होता है, बस ठीक वही मिसेज़ विश्वास का बँगला है। एस, वहाँ जाकर कुमार साहब के जितने 'सर्वेन्ट्स' हैं, सबको हिरासत में लेकर पुलिस-स्टेशन पर हाज़िर करो। एस · मुझे अभी यहाँ वक्त लगेगा· ओ एस·· ठीक ··· शाबास·· ओ० के० आय विल सी इट···· बट डोन्ट डिले· ·" और इतना कह कर वह मुस्कराए और फिर 'रिसीवर' रख दिया। अब वह यथास्थान पर आ बैठे और कुमार साहब से पूछा—"एस, कुमारसाहब, आय थिक, एक ओर तो आपने उन्हे जहर दिया और दूसरी ओर आप खुद ही उनको हॉस्पिटल भी ले आए, ताकि आप पर इस बात का शक तक न किया जा सके कि जहर देने वाले भी आप ही हैं ! खूब साहब, खूब !" कह कर मिस्टर मित्रा ने अपना सर हिलाया और होठों को बिचका दिया।

कुमारसाहब परेशान होते-से बोले—"प्वायजन-वायजन कुच नेंई दिया गया। ये आपका सिरफ इमैजिनरी बात ऐ ! बाबी को मैं हॉस्पिटल नेंई लाया, वो खुद आया।"

रहमतअली का फाउण्टेनपेन चल रहा था और ए० डी० एम०

जहाँ कुछ विशेषरूप से पूछना चाहते, वहाँ प्रश्न कर शका-निवारण करते चलते थे। मिस्टर मित्रा ने कुमारसाहब से प्रश्न किया—"कुमारसाहब, आप तो ईश्वर को मानते हैं!· ·ठीक, सच कहिएगा, क्या खाना आपने भाभी के साथ खाया था? और खाने के साथ कोई चीज़ अपने हाथ से उठा कर उनकी थाली में डाली थी?"

कुमारसाहब सहसा घबरा उठे। बोले—"नेईं, पहले बाबी ने खाना खाया। उसके बाद हमने।"

इस पर ए० डी० एम० और डी० एस० पी० दोनो एक साथ, एक दूसरे को देखकर, मुस्करा उठे, जिसको विमल विश्वास ने तुरन्त भाँप लिया और झट वह अपना कथन सुधारते हुए बोले—"परहैप्स आय एम रॉंग·" कुछ क्षण ठहर कर—"एस, खाना हमने बाबी के साथ खाया था।"

आँखें कडी करते हुए डी० एस० पी० ने कहा—"यू आर मोस्ट कनिंग फेलो।" और रहमतअली से बोले—"दोनो बातें नोट करलो!"

"खाना आपने किस वक्त खाया था?" मिस्टर मित्रा ने कुमार साहब से फिर प्रश्न किया।

"नाइन थर्टी!" कुमारसाहब ने उत्तर दिया।

अब मिस्टर मित्रा ने अपना आसन बदल कर, कुमार साहब की आँखों में आँखें डाल कर घूरते हुए कहा—"· हूँ, तो आपकी भाभी खाना खाने के बाद फौरन अपने रेडियो पर जा बैठी और उनके पेट में यकायक दर्द हुआ। वह उठीं, घबराईं, एकदम आगे बढ़ीं और गिर पड़ीं। उसी वक्त उनको 'ब्लड' की पेशाब हुई?"

यह सुन कर कुमारसाहब को पसीना आ गया। अपने को सँभालते हुए बोले—"शब गोलमाल, कतई मिथ्या। खाना खाने के बाद वो बाबी पलंग पर सो गिया। फिर वो कब उठा, क्या खाया-पीया, कब इधर आया, कुछ नेईं मालुम।"

"एस, कुमारसाहब !" इस बार मिस्टर मित्रा ने पूछा—" "तो जब आपकी भाभी को थोडा होश आया, तब उन्होने मिस्टर सतीश को फोन किया और 'बाईचान्स' रिसीवर आपके हाथ लगा और तब आप इतमीनान से यहाँ तशरीफ लाए !"

कुमार साहब सोच विचार मे पड गए। उनके चेहरे पर हवाइयाँ उडने लगीं। बोले—"बात तो आपका टीक ऐ। बट हाउ कुड यू स्मेल इट ? आय वण्डर, रियली।"

मिस्टर मित्रा मुस्कराए—"दिस इज़ माई डेली रुटीन···। एस, मिस्टर सतीश, आपके साथ जब श्रीमती विश्वास की इतनी इन्टीमेसी थी, तो तबीयत बहुत घबराने पर भी उन्होने क्यो आपको याद नहीं किया ? मिस्टर गिरीश, डू यू फालो माई प्वाइन्ट ?"

मुझे कहना पडा—"कल मेरे यहाँ भाई साहब के साथ भाभी, मेरी अपनी भाभी और भतीजा प्रकाश भी आया था। हमारे यहाँ कुछ फ्रेण्डस् भी निमन्त्रण में आए थे। काफी देर हो गई थी। जब सब लोग चले गए, तब भी ग्रामोफ़ोन रिकार्ड्स, विद लाउड स्पीकर, बराबर बजते रहे। आप जानते हैं, रात को यहा कभी-कभी सर्दी भी पड़ जाती है और कल तो थोडी वर्षा भी हो गई थी। ग्यारह बजे हम लोगों ने अपने दरवाज़े बन्द कर लिए। लेकिन रिकार्ड्स तो बज ही रहे थे। ऐसे कोलाहल मे सम्भव है श्रीमती विश्वास ने मुझे याद भी किया हो। आप थोडा धैर्य रक्खें, ईश्वर चाहेगा, तो वह बच जायँगी और अपनी सच्ची कथा स्वय बता देंगी।"

मिस्टर मित्रा मुस्कराए और बोले—"कॉलेज मे आपका सबजेक्ट क्या साइकलाजी है ?"

मुझे कहना पडा—"मै आपके अनुभव की दाद देता हूँ।"

मैंने भाईसाहब की ओर देखा, वह प्रसन्न थे। लेकिन बड़ी देर से चुप थे, इसलिए बोले—"मिस्टर मित्रा, शायद आप यह नही जानते

कि पूजा किए बिना मैं जल भी नही लेता और जिस ढंग से आप 'इनवेस्टीगेशन' कर रहे है, शाम हो जायगी। कितना अच्छा हो कि आप हम लोगो को इस जाल से मुक्त कर दें। अजीब हालत है इस दुनिया की, होम करते हाथ जलता है। मैंने एक बात की आपको सूचना क्या दी, आपने मुझे ही अपने बन्धन मे कस लिया।"

मिस्टर मित्रा थोडा मुस्कराए। बोले—"मैं आपको ज्यादा कष्ट नही दूँगा। मेरा ख्याल है, आप आए है, तो कुछ दिन यहाँ रहेगे ही। अगर जरूरत पडी, तो घण्टे आध घण्टे के लिए, आप को फिर थोडा कष्ट उठाना पडेगा। आप जानते है, हम लोग 'लाइफ और डेथ' के साथ हमेशा खेलते है। एक आध दिन आप भी खेल लीजिएगा, तो सन्ध्या-पूजन मे एक तरह से आपको मदद ही मिलेगी!"

भइया बोले—"अच्छी बात है, देखा जायगा।"

तत्काल मिस्टर मित्रा बोले—"तुमने जो कुछ नोट किया है, उसे आप लोगो को पढ लेने दो और सबके सिगनेचर ले लो!"

पहले विमल विश्वास, फिर भइया और तब मैंने, क्रम-क्रम से तहरीर को पढकर, अपने-अपने स्थानो पर, हस्ताक्षर कर दिए। हम लोग ज्योंही उठकर चलने को हुए, त्योही मिस्टर मित्रा ने कुमार साहब से कहा—"एस, विमल साहब, बीस-बीस हजार की दो जमानतें और दस हजार का 'पर्सनल' मुचालका दाखिल कीजिए। अब आप भी 'पुलिस कस्टडी' मे है।"

इसी समय मिस रोजा ने डॉक्टर साहब का 'प्रिस्क्रिप्सन' मिस्टर मित्रा के सामने रखते हुए कहा—"यह है, और ये है डॉक्टर साहब के साइन!"

"थैंक्यू वेरी मच!" मिस्टर मित्रा बोले—"रहमतअली इसकी कापी कर लो और डॉक्टर साहब के साइन करवा लो। ··और देखो, अब फौरन जाकर कुमार साहब के बँगले की तलाशी लो।···" फिर

विमल विश्वास की ओर देखकर "जाइए साहब, तलाशी से लौटकर जमानत दाखिल कीजिए!"

घड़ी की ओर देखकर—"देखिए, बारह बजने वाला है। चार बजे से पहिले जमानत यदि दाखिल न हुई, तो आपको रात भर हवालात की हवा खानी पड़ेगी।"

अब ज्योंही हम लोगों ने ए० डी० एम० और डी० एस० पी० को नमस्कार किया, त्योंही मिस्टर मित्रा मुस्कराए और बोले—"एस, एस, आप लोग जा सकते हैं अब···थैंक्यू वेरी मच···"

: १३ :

और हम लोग जब घर लौटे, तब बारह बज चुके थे। बँगले के अन्दर पहुँचने पर मैंने देखा,—भाभी वराण्डे में खड़ी हम लोगो की प्रतीक्षा कर रही हैं। टैक्सी को विदा करने के पश्चात् मै अन्दर गया, तो भाभी ने कहा—"सतीश, आज तुमने बडा गडबड किया। तुम जानते हो सन्ध्या-पूजन के बिना वे जल भी नही पीते। खाना रक्खा-रक्खा ठण्डा हो गया। अभी उनको स्नान-ध्यान करने मे दो-तीन घण्टे लगेगे। मुन्ना को बहुत पोट-फुसला कर खिलाया है। बार-बार कह रहा था—"बाबू जी नही आए! चाचा कहाँ गए माँ?"

मैने पूछा—"है कहाँ? जरा ध्यान रखना, कही बाहर न खिसक जाय! वैसे तो कोई डर नही है, लेकिन सबसे बडा डर गिर जाने का ही रहता है।"

भाभी बोली—"अभी टेनिसकोर्ट मे साइकिल चला रहा था। बडी मुश्किल से सुला पाया है। दो बार भीखू को भेजा, तुम्हारा काम ही नही खतम हो पाया था। बेचारा चुपचाप लौट आता रहा। कैसी तबीयत है श्रीमती विश्वास की?"

इसी क्षण एक पहाडी पक्षी कमरे में घुस गया और कई मिनट तक पंख फडफड़ाता हुआ, कमरे के चक्कर काट, अन्त मे अपना मार्ग पा ही गया। ध्यान बट गया था। मैने कहा—"जाते-जाते पहले मै उनके पास ही गया था। अब उनकी देख-रेख एक लेडीडॉक्टर करती है—मिस रधावा! वे एम० डी० है और अभी हाल ही में बम्बई से आई है।" एक क्षण रुक कर मैने कहा—"तबीयत ठीक हो रही है। जान पडता है, रक्त बहुत निकल गया है। कमजोरी बहुत आ गई है। पहचानने में कोई कठिनाई नही हुई। उठना चाहती थी किन्तु नर्स ने मना कर दिया। प्राण जाने में कोई कसर तो नहीं रह गई थी, लेकिन

बच गईं। बाद में पहुँचने पर कुमार साहब ने डॉक्टर को मिला लिया, वरना वे गिरफ्त मे आ जाते और फिर उनका बचना कठिन था। इस वक्त तो उनके कमरे की पुलिस तलाशी ले रही है।"

भाभी बोलीं—"तलाशी हो रही है लेकिन मुझे डर है कि श्रीमती विश्वास के यहाँ कोई सन्देह की चीज़ न निकल आए। हालाँकि ऐसा सम्भव नही है, वक्त की बात होती है···खैर! चलो, खाना खालो। रामलाल ताज़ी सेक दो।"

"यह कैसे हो सकता है भाभी···।"

बात अभी पूरी भी न हो पाई थी कि भाभी बोल उठी—"उन्हें तो अभी समय लगेगा, कम-से-कम दो घण्टे; तब तक तुम भूखे बैठे रहोगे? अगर तुम भी किसी की पूजा करने लग गए हो, तो बात दूसरी है।"

किंचित मुस्करा कर मैंने कह दिया—"भाभी पूजा तो संसार में मैं केवल एक व्यक्ति की करता हूँ और वह तुमको मालूम भी है?"

भाभी हँसने लगी। बोली—"वह बात अलग है। पत्थर की जो प्रतिमाएँ होती हैं, उनकी पूजा साकार मनुष्य की पूजा से भिन्न होती है।"

भाभी ने इतना कहा ही था कि मुझे बोलना पड़ा—"यहाँ तुम भूल कर रही हो भाभी, पत्थर के आत्मा नहीं होती और भइया के अन्दर एक महान् आत्मा का निवास है।"

भाभी मेरी ओर देखती रह गईं, फिर कुछ सोचकर बोली—"यहाँ मै तुमसे हार मानती हूँ। लेकिन उन्होंने स्वयं ही मुझसे कहा है कि सतीश को खाना खिला दो।"

मैंने कह दिया—"हाँ उन्होंने ज़रूर कहा होगा, लेकिन अब मैं भी तो कहता हूँ। मै तो साथ ही खाना खाऊँगा।" तब भाभी ने एक तश्तरी में काजू और किशमिश लाकर मुझको दे दिए और उन्हीं को

टूँगता हुआ मै अपनी डायरी लिखने लगा। यद्यपि मेरा चित्त बहुत अस्थिर था और हॉस्पटिल का दृश्य बार-बार, चेतना के पट पर नाचने लगता था। किन्तु मैंने सोचा डायरी में दो शब्द लिख ही दूँ : "हमको देखना य है कि किन-कि न अवसरो पर हमसे गलती हो जाती है। सबसे बडा अवसर यह भूख का है। हमको प्रत्येक प्रकार की भूख के समय यह देखना है कि खाने का उचित समय आ गया है या नहीं। जो वस्तु मुझे खाने को दी जा रही है, उसे मैं पचा भी पाऊँगा या नही।"

इतना लिखकर क म रख दी। एक टुकडा मिश्री, एक काजू और एक किशमिश मुँह मे डाल लिया। फिर ख्याल आ गया कि आज विमल विश्वास को पता चल गया होगा कि सम्पत्ति के मोह मे पडकर किसी आत्मीय की जा न ले लेने की चेष्टा का क्या परिणाम होता है। और डायरी मे एक वाक्य मे ने यह भी जोड दिया :

"सब कुछ करो मगर यह मत सोचो कि जो कुछ भी मै कर रहा हूँ उसको कोई देख नही रहा है। और मेरा यह पाप-कर्म निर्विरोध सफल ही हो जायगा।"

सयोग की बात कि इतने मे अविनाश आ टपका।

मैने हाथ मिलाते ही उसका वह स्वागत किया कि वह भी जानता होगा : सारा समाचार ज्यो-का-त्यो सुना देने के बाद, जब उसने पूछा—"विमल साहब है कहाँ ?"

तो मेरे मुँह से निकल गया—"हिरासत मे! बहुत जोरो से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अब तक जमानत नही हुई है। जाइए बीस हजार की जमानत कीजिए जाकर। मगर तारीख पडने पर अगर हाजिर न हो तो रोइएगा नही और मेरी शिकायत भी न कीजिएगा कि बतलाया नही!"

अविनाश बोला—"आदमी है तो पूरा 'लोफर' पर किया भी क्या

जाय ! दोस्त तो है ही ! लेकिन मैं तो अभी दिल्ली से नहीं, लखनऊ से आ रहा हूँ। शाम के छै बजे घर से निकला हूँ—देहरादून एक्सप्रेस साढे सात बजे वहाँ से चलता है। बहुत थक गया हूँ। तीन घण्टे से पहले नही जा पाऊँगा।" मुझे हँसी आगई। मेरे मुँह से निकल गया,—"जाओ तुमको बख्श दिया। वह अभी बगल के कमरे में हैं और उसके यहाँ तलाशी हो रही हे। मगर खबरदार, अगर जाकर मिले तो बिना फँसे न रहोगे। मामला संगीन है। अभी समझ बूझ लो!... कहता हूँ, खाना-पीना, विश्राम सब धरा रह जायगा।' और सन्देह में यदि पुलिस ने तुमको भी लपेट लिया, तो एक जहमत अलग उठ खड़ी होगी।"

भीखू सामने आ गया था। मैंने उससे कहा—"जाओ, इनको पहले गरम पानी दो—हाथ-मुँह धोएँ, फिर चाय पिलाओ, बहुत जल्दी।... अच्छा अविनाश बाबू आप यहाँ बैठिएँ, मैं जरा अन्दर भी देख लूँ क्या देरदार है?" और इतना कहकर मैं जो अन्दर गया, तो क्या देखता हूँ कि भाईसाहब चौके से चिल्ला रहे हैं—"अरे, स·· तो···श चलो भाई! मैंने पहिले से कह दिया था कि तुम खाना खा लेना!"

भाभी बोली—"मैंने भी तो कहा था कि खालो।"

भाईसाहब बोले—"कुछ नही कहा था तुमने! देवर को बिलकुल बच्चे की तरह से पोट-फुसला के रक्खा जाता है। मगर तुम तो खाली यह जानती हो कि दरवाजे से निकलते समय उसको झुकना पडता है। यह नहीं समझती कि वह अभी बच्चा है और यह भी नहीं जानता कि आम के अन्दर जो गुठली होती है, उसके भीतर भी एक बीज रहता है, जिसका स्वाद पहले कुछ अटपटा लेकिन बाद में मधुर निकलता है।"

इस पर भाभी कुछ नहीं बोलीं। खाना परोस दिया गया। भाई साहब ने जब खाना शुरू किया तो कहने लगे—"और सब तो ठीक है, लेकिन आज तुमने खीर नही बनवाई। मेरे लिए तो कोई खास बात

नहीं है लेकिन सतीश का तो पेट नही भरेगा।"

भाभी बोली—"दूध फट गया है। इसलिए खीर नहीं बन सकी, शाम को बनेगी।"

भाईसाहब बोले—"अब शाम को क्या बनेगी? चार बज गए। मेरे लिए तो दूध ही काफी रहेगा।"

"कमरे में कौन है?—कोई आया है?" एक क्षण रुककर भाई साहब ने पुन प्रश्न किया।

"वो अविनाश है!"—मैंने कह दिया।

भाईसाहब नपाक से बोले—"सतीश, तुम अभी व्यवहार मे बहुत कच्चे हो। तुमको अविनाश से यह कहना चाहिए था कि खाना तैयार है। फौरन से पेश्तर स्नान कर लें और खाना खालें; इसके पश्चात् कुछ भी किया जाय! अब हम लोग यहाँ भोजन कर रहे हैं, और वह वहाँ अकेला बैठा है! कितना भद्दा मालूम पडता है।"

खाना खाने के बाद ज्योंही मै बाहर आया, त्योंही रहमतअली तलाशी लेकर बाहर निकल रहा था। बोला—"बस साहब, एक मिनट, देखिए ये चीजें हम यहाँ से लिए जा रहे हैं। आप देख लीजिए और इस परचे पर 'साइन' कर दीजिए।"

मैंने सब चीजें देखकर परचे पर 'साइन' कर दिया और मेरे देखते-देखते सब लोग फिर पुलिस-वान की ओर चल दिए। श्रीमान् विमल विश्वास साथ में थे। उनका चेहरा उतरा हुआ था और बहुत परेशान थे। उनकी आँखो मे आँसू डबडबाए हुए थे। मैंने उनसे तो कुछ नहीं कहा, पर मै जो अविनाश के पास गया, तो मुझे अपनी डायरी का ख्याल हो आया। उसमें आज जो पहला वाक्य मैंने लिखा था वह यह था: जब हम से एक के बाद एक भूल होती ही जाती है, तब भी हमको यह न समझ लेना चाहिए कि वह भूल हमारे अनजान मे हुई है। केवल ध्यान इस बात का रखना है कि वह भूल किस अंश की है।

जैसे मैंने अविनाश के लिए चाय और टोस्ट की व्यवस्था कर ही दी थी, वैसे ही मुझे यह तुरन्त सोच लेना चाहिए था कि अब तो हम सब खाना खाने जा रहे हैं, इस तरह खाने के समय उसकी कम्पनी से हमें जो आनन्द मिलता, उससे हमने अपने आपको वञ्चित तो कर ही लिया, साथ ही अविनाश को भी यह सोचने का अवसर दिया कि हमारी भोजनशाला में अविनाश का कोई भाग न है, न सम्भव है। यह सोचकर मुझे सचमुच पीडा हुई और इसके निवारण के लिए मैंने कलम वहीं रख दी और अविनाश के पास जाकर मैंने उससे कह दिया—"क्षमा करना बन्धु, आज कुछ ऐसा हो गया कि भोजन मे हमको चार घण्टे का विलम्ब हो गया। और मैंने देखा कि तुमको अभी देर है, इसलिए····· "

तौलिए से सिरका पानी पोछ कर उसने चाय का एक घूँट लिया और बोला—"दैट्स ऑल राइट, दैट्स ऑल राइट! डोन्ट थिक दैट आय एम ए थर्ड परसन!"

"तब चलो, अब भोजन करो और फिर उस मुर्ग की जमानत का इन्तजाम! सोचो मत! ठीक है, ठीक है, बाल तुम्हारे बहुत खूबसूरत हैं और श्रीमती विश्वास तुम्हारी रोज याद किया करती थी ।"

इतने में भीखू आकर बोला—"मुन्ना जागिगा है औ रोय रहा है।"

मैंने कहा—"टैक्सी लाओ। हमें अभी जरा बाजार जाना है।" मैं सोचने लगा—भाईसाहब केवल एक गरम सूट लेकर चले हैं, इससे काम नहीं चलेगा। यहाँ रोज पानी बरसता है।

इतने मे अविनाश बोला—"मैं खाना अभी पाँच मिनट में खाए लेता हूँ। तब तक ठहरो। मैं भी चलूँगा। मुझे विमल के यहाँ छोड देना!"

मुझे हँसी आ गई और मैंने कह दिया—"अच्छा! वह है मेरा

दुश्मन और उसी को छुड़ाने के काम में तुम मेरी मदद चाहते हो ? बहुत खूब !"

अविनाश बोला—"बको मत, तुमको मालूम होना चाहिए कि हम पाप से घृणा करते है, पापी से नही।"

मै सोचता रह गया क्योंकि अविनाश ठीक कह रहा था।

शाम को जब हम मार्केटिंग से लौटे और भइया, मुन्ना और भाभी के लिए गरम कपड़े ले आए, मुन्ना के लिए एक डब्बा खिलौनों का भी खरीद लाए, तो भइया बोले—"एक बात है कि खर्च करने मे तुमने रेकार्ड कायम कर रक्खा है। मेरा ख्याल है अब तो तुम्हारे पास दमड़ी भी बची न होगी!"

भाभी बोली—'और तो सब ठीक है मगर यह ऊलन साडी तुम हमारे लिए खूब ले आए। मैने ऊलन साडी अब तक नही पहनी थी। मगर बाबू इसमे प्योरऊल तो नही है। मुझे तो इसमें सिल्क मिली हुई मालूम पड़ती है।'

मैने देखा—भइया जरा-सा मुस्कराए और घूम कर चल दिए। फिर ठहरे और दरवाजे पर खड़े होकर बोल उठे—"बात यह है कि जिस तरह सतीश के हाथ मे फालतू रकमे रहा करती है, उस तरह अगर मुझको भी कोई देनेवाला होता, तो तुमको तो नहीं, मगर अपनी उस भाभी को मै भी ले आता!" और इतना कहकर भाईसाहब चले गए।

मैने अनुभव किया कि जैसे भइया की वाणी मे एक दर्द है। भाभी बोलीं—"तुम्हारे भइया कभी-कभी इन मामूली-सी बातो में ऐसी बात कह जाते है जिनमे बडा मर्म छिपा रहता है। मैने तो यों ही कह दिया था। बात यह है कि अपने तरफ गरम साडी पहनने की चाल भी तो नहीं है। खैर जाने दो। ए, भीखू···देखो, दूध गरम हो गया ?"

भीखू चला गया।

तब भाभी मुझसे कहने लगी—"ये श्रीमती विश्वास कौन है बाबू? इनके पति क्या काम करते हैं? और ये जिसने इनको जहर दिया है, क्या सचमुच इनके सगे देवर हैं?"

मेरे मुँह से निकल गया—"भाभी, दुनिया बड़ी लम्बी-चौड़ी है। आदमी की शकल में जानवर भी इसी दुनिया में रहते हैं। श्रीमती विश्वास चूँकि विधवा हैं, और जायदाद की स्वामिनी हैं, इसलिए यह देवर होकर भी उनकी जान लेने के सम्बन्ध में बिलकुल पिशाच बन गया है। वह नहीं चाहता कि उनके हाथ में उसकी मर्जी के खिलाफ एक पाई भी पड़े। यह बँगला इनके स्वामी का ही बनवाया हुआ है और इसको इतना भी सहन नहीं है कि वह इस पर कोई अधिकार रक्खे!"

इतने मे भीखू दूध लेकर आ पहुँचा। भाभी ने कहा—"दूध रख दो जाकर और बाबू को बाजार से मलाई नही तो रबड़ी ले आओ और रामलाल से कहो दो पूडियाँ गरम गरम अभी सेंक दे। और उनसे भी जाकर पूछ लो अगर खाना पसन्द करें।"

इतने मे मुन्ना आ गया और बोला—"ताता खिलौना तूत गया।"

मैंने उसे गोद मे उठा लिया।

इस समय रात के नौ बज रहे थे। हवा डोल रही थी और सरदी बढ गई थी। अविनाश अब तक नहीं लौटा था। इतने मे भीखू ने आकर कहा—"अभिनाथ बाबू पिछवाड़े ते आय गे हैं औ पूछि रहे हैं कि देखौ छोटे भइया सोय तो नहीं गे?"

मै जो उसके पास गया तो वह टेबिल पर अपना पर्स खोले हुए पैसा-रुपया और नोट्स गिन रहा था। मुझको देखते ही बोला—"मैंने कोशिश तो बहुत की, लेकिन क़ायदे की कार्यवाही करते-करते जो मै ए० डी० एम० के रूम में पहुँचा तो मालूम हुआ कि वे उठ गए है। पूछने पर पेशकार ने बतलाया कि वे यहाँ से सीधे क्लब जाते हैं। अब

आज कुछ नहीं हो सकता है।"

आज मैंने अपनी डायरी में जो अन्तिम वाक्य लिखा वह यह था :

संसार के सारे काम अपने समय पर ही होते हैं। एक मनुष्य है जो क्षण-क्षण पर चूकता रहता है।

: १४ :

बाजार से लौटकर आते ही मुझे पता चला कि भइया तो श्रीमती विश्वास को देखने के लिए हॉस्पिटल गए हुए हैं। मैं नहीं जानता कि क्यों मुझे इस समाचार को सुन कर प्रसन्नता हुई। भाभी से मैंने पूछा—"कब तक लौटने के लिए कह गए हैं ?"

भाभी बोली—"यह तो कुछ नही बतलाया, लेकिन इतना मै जानती हूँ कि किसी भी स्त्री के पास वे दस पन्द्रह मिनट से ज्यादा नहीं ठहर सकते।"

भाभी के इस विश्वास पर मै कोई टीका-टिप्पणी नही करना चाहता, लेकिन किसी भी पुरुष के लिए किसी भी नारी का यह दावा करना कि वह उससे बोलेगा नहीं, कोई सम्बन्ध जोड़ेगा भी नहीं, बिलकुल निरर्थक है। सारी बात व्यक्तित्व के प्रभाव पर निर्भर है।

अब शाम हो गई थी और बत्तियाँ जल गई थी। मैंने हॉस्पिटल को फोन किया तो भइया ने कहा—"ओ ! सतीश, मैं तो खैर आ रहा हूँ, लेकिन तुमको आना पडेगा। श्रीमती विश्वास बहुत कमजोर हो गई है और हम लोगो मे से कोई जब यहाँ नही रहता है तो वह यही सोचने लगती है कि अब तो यहाँ से अच्छा होकर निकलना तो मेरे लिए बहुत कठिन है ? अब भी उनकी आँखो मे आँसू भरे हुए है; खैर, तुम आ जाओ, और देखो, मुन्ना सोया तो नही ? उसको भी लेते आओ। वह साथ मे रहेगा, तो तुम यहाँ से जल्दी जा सकोगे। इसके सिवा श्रीमती विश्वास चाहती भी है कि तुम उसको साथ लेते आओ।"

इस प्रकार मुझे श्रीमती विश्वास के यहाँ जाना पडा।

पलकों के नीचे जो उपत्यकाएँ है, वे कुछ मुरझा-सी गई है। नाखूनों की गुलाबी हल्की पड़ गई है। तकिए पर सिर रक्खे हुए वह चुपचाप

लेटी हुई है और अब भी उनकी आँखें भरी हुई है। मैंने पूछा—"कैसी तबीयत है ?" तो उलझने के स्वर में बोलीं—"ठीक है।" और सिसकियाँ भरकर रो पडी और कहने लगी—"तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं है यहाँ। मगर अब तुमको भी बुलाना पड़ता है।"

मै जानता हूँ कि यह स्थिति मेरे लिए चिन्त्य है। मैं यह भी जानता हूँ कि श्रीमती विश्वास बहुत कुछ सत्य कह रही है किन्तु भइया के रहते मैं उनके यहाँ अधिक समय बिता नहीं सकता। कदाचित इसीलिए जब भइया ने मुझे फोन पर बुलाया, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी।

श्रीमती विश्वास को रोता हुआ देखकर नर्स बोली—"आप कृपा करके ऐसी कोई बात न कहे, जिससे इन्हे दुख हो। और दीदी मै आपसे केवल यही निवेदन करूँगी कि अगर आप इस तरह रोएँगी, तो आप जल्दी अच्छी न हो पाएँगी!"

थोड़ी देर बाद हेड सर्जन साहब भी निरीक्षण करते-करते आ पहुँचे और दो-चार मिनट परीक्षा करने के बाद बोले—"ब्लड की जरूरत पडेगी। और हमारे यहाँ तो स्टोर मे अब इतना कम है कि उससे हम ले ही क्या सकते है! इसलिए कल सुबह तक इसका प्रबन्ध आपको करना होगा। मुझे इस परिस्थिति का पहले से कोई आभास न था।

हेडसर्जन साहब की बात सुनकर मै अवसन्न हो उठा। मैंने उत्तर दिया—"अभी तो मै कुछ कह नही सकता, लेकिन दो-एक घण्टे में मैं कुछ प्रबन्ध करने की चेष्टा करूँगा।"

हेड सर्जन साहब अपने हेट को सिर में रखते हुए बोले—"देखिए, अगर कल इनको ब्लड नहीं दिया गया, तो फिर इनका 'सरवाइव' होना कठिन हो जायगा। इसलिए प्रबन्ध तो करना ही होगा।"

मै इसका क्या उत्तर देता, अतएव जब चुप रह गया, तो वे बोले—"किसी भी हट्टे-कट्टे कुली को पकड लीजिए। सैकडों तो मारा-मारा

फिरता है ! आपको तो मालूम होगा 'वार' ने इन्सान के खून को एक काफी हद तक सस्ता बना दिया है।"

हेड सर्जन साहब की बात सुनकर मुझे ऐसा मालूम पडा कि किसी ने मेरी छाती पर छुरा भोंक दिया, किन्तु जब बात सही कही जा रही है, तब अपनी प्रतिक्रिया को लेकर करूँगा भी क्या ?

मुन्ना को चारपाई पर बिठाल कर श्रीमती विश्वास ने उसकी हथेलियाँ चूम ली। बल्कि मैं अगर मुन्ना को गोद मे ले न लेता, तो सम्भव था कि वह अब तक उन नन्ही-नन्ही हथेलियों को चूमती ही रहतीं, किन्तु जब मैंने मुन्ना को अलग कर दिया, तो उन्होंने करवट बदल ली और उनकी आँखे झपक गईं।

मैंने पुकारा भी—"श्रीमती विश्वास ! विश्वास कीजिए कि मैं आपके पास ही बैठा हूं और मुन्ना मेरी गोद में है।" किन्तु वे बोलीं नहीं कुछ। शायद उन्हे मूर्छा आ गई थी।

इस मूर्छा का कारण मैं समझता हूँ। मैं निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि श्रीमती विश्वास ने मुन्ना की हथेलियाँ चूमते हुए मन-ही-मन यह अवश्य सोचा होगा काश, यह मुन्ना मेरी कोख से उत्पन्न हुआ होता।

तृष्णा को मैं बुरा नही मानता लेकिन यह क्या चीज है कि हम सींचते बबूल को है और फल मीठे आम के चाहते हैं।

थोड़ी देर में उन्होंने अपने आप आँखें खोल दी, बल्कि अच्छा ही हुआ कि नर्स तब तक कार्यवश चली गई थी।

मुन्ना बोला—"अम्मा पाछ !"

मैंने श्रीमती विश्वास से कहा—"यह माँ के पास जाना चाहता है।" श्रीमती विश्वास बोली—"सवाल तो यह है, मैं किसके पास जाऊँ सतीश बाबू !"

मैंने उत्तर दिया—"प्रश्न आपका यथार्थ है। किन्तु आपको तो

साथी मिलने की ऐसी कोई जल्दी है नहीं ! तीस की आप हो ही चुकी हैं। दस-पाँच वर्ष परीक्षा में व्यतीत कर दीजिए। उसके बाद देखा जायगा। खैर, मैं इस समय आपसे कुछ विशेष नहीं कहना चाहता।" इतने में नर्स आ गई और पूछने लगी—"आप यहाँ ही रहेंगे ?" मैंने कह दिया— जैसा कहिए।"

श्रीमती विश्वास बोली—"यहीं बने रहिए सतीश बाबू ! पता नहीं, कब क्या हो जाय !" और मैंने देखा कि उनकी आँखें फिर डबडबा आई हैं।

अब मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। मैंने फोन पर भाभी को बुलाया और सारी परिस्थिति उनसे बतलाते हुए पूछा—"अब क्या करना चाहिए !" भाभी ने कहा—"किसी भी स्त्री की हर प्रकार की सेवा एक स्त्री ही कर सकती है। अपने भइया से पूछ लो, अगर उनको कोई आपत्ति न हो, तो मैं चली आऊँ ! मगर एक बात मैं जानती हूँ, कि तुम्हारे भइया वहाँ मुझे अकेले कभी न आने देंगे।"

मैंने उत्तर दिया—"मगर सारी मुश्किल तो यह है कि मैं अगर तुम्हारे साथ यहाँ रहूँगा, तो भइया फिर वहाँ अकेले पड़ जायँगे, जो मुझे कभी स्वीकार न होगा।"

भाभी बोली—"तो फिर उन्हीं से सलाह कर लो।"

तब मुझे तुरन्त श्रीमती विश्वास को यह आश्वासन देकर कि हम लोगों में से कोई-न-कोई अभी आ जायगा, आप चिन्ता न कीजिए, और मैं मुन्ना को साथ ले वापस लौट आया।

यहाँ आने पर अब निश्चय यह हुआ कि भइया, भाभी और मुन्ना हॉस्पिटल में रहेंगी और मैं बँगले पर।

और इस परिस्थिति का परिणाम यह हुआ कि रक्तदान के लिए हम लोग भाभी को किसी प्रकार मना न कर सके। आज भी जब इस घटना की बात सोचता हूँ, तब बार-बार मन में यही आ रहा है हम

सब लोग उस समय कितने भोले थे।

रात को और तो सब लोग सो गए थे। केवल मुझे निद्रा नहीं आ रही थी। भीखू मेरे पैर दाब कर अभी गया ही था कि मैं सोचने लगा—इन लोगो के अन्दर हमारे वर्ग की अपेक्षा सचमुच कितना बडा हृदय रहता है। श्रीमती विश्वास के साथ यद्यपि हमारे स्वार्थों का सम्बन्ध नही है, फिर भी, रुचि और गुण, कर्म, स्वभाव की एकता के नाते एक प्रकार की निकटता तो है ही। इसलिए रक्तदान को तैयार होने की भावना यदि ऐसे अवसर पर हमारे मन मे आए तो मुझे इसमें कोई अस्वाभाविकता नही मालूम पडती। लेकिन जिस सर्वहारा वर्ग का यह भीखू प्रतिनिधि रूप है, उसका श्रीमती विश्वास जैसे वर्ग के साथ ऐसे स्वार्थ-त्याग का कौनसा मन्तव्य हो सकता है और मैं यही सोचता रहा कि भीखू ने कहा था और जब कहा था, तब उसकी आँखे भर आई थी जिसका अर्थ था—छोटे भइया, आखिर एक न एक दिन मरना है ही, फिर इस शरीर से यदि कोई उपकार हो जाय, तो मेरी वह मौत छोटे भइया, कितनी बडी हो जायगी और उसकी इज्जत कितनी बढ जायगी। ऐसे तो इस धरती पर लाखों आदमी मरा करते है और कोई उनका नाम तक नहीं लेता।

रात अवश्य भीग गई है। लेकिन मै अनुभव कर रहा हूँ कि मेरा मन उससे कही अधिक भीग उठा है। पिशाच ! विमल विश्वास ! भ्रान्त धारणाओं के जाल में फँसी हुई श्रीमती विश्वास, शील, सौजन्य और मानवीय सहानुभूति के अवतार भाई साहब अत्यन्त उदार और सहृदय, ममतामयी भाभी, अबोध मृग-छौना-सा मुन्ना और इस सम्पूर्ण वातावरण के बीच मेरा यह अनभ्यस्त, और अकुशल निरीह चचल मन !

: १५ :

प्रातःकाल होते ही मैं श्रीमती विश्वास के पास जा पहुँचा। तब तक वह नित्यक्रिया से निवृत्त हो चुकी थी और चारपाई पर लेटी-लेटी एक सिनेमा-मैगज़ीन के पन्ने उलट रही थी। मैंने पूछा—"कहिए, कैसी तबीयत है ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"तबीयत तो ठीक है, लेकिन मुझे खड़े हाने और फिर दस कदम चलने में कमज़ोरी बहुत मालूम पडती है। सारा बदन पत्ते की तरह हिलता जान पडता है।"

मेरे मुँह से निकल गया—"पत्ते की तरह से क्यो, हवा जब चलती है और डोलती है, तब टहनी में फूले हुए गुलाब के फूल भी तो हिलते हैं। उन्होंने आपके बदन को छुआ ही नहीं है, हिलाया-डुलाया भी खूब है!"

मेरी इस बात पर श्रीमती विश्वास कुछ मुस्कराईं और बोलीं—"बनाना आपको खूब आता है। इस समय तो मैं कुछ न कहूँगी। लेकिन अगर तबीयत अच्छी हो गई, तो आप ही से पूछूँगी, कि कितने दिन, कब, किन-किन घडियों में उस गुलाब के सौरभ ने आपकी कल्पना को छूने में सफलता पाई है!"

उनका यह कथन सचमुच बड़ा प्रिय लगा, किन्तु तभी मैंने कह दिया—"भइया का भजन-पूजन यहाँ कुछ नहीं चलेगा, इसीलिए हम सब जाते हैं, यही कहने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।"

श्रीमती विश्वास ने कहा—"पहले आप सब लोग चाय ले लीजिए, तब भले ही चले जाइएगा।"

मुझे हँसी आ गई और मैंने कह दिया—"आपको मालूम नहीं है कि हम सब लोगों की दुनिया से भइया का व्यक्तित्व कहीं अलग है। वह प्रातःकाल उठकर सबसे पहले पूजन पर बैठ जाते हैं, उसके पूर्व कोई वस्तु ग्रहण नहीं करते।"

श्रीमती विश्वास बोली—"आप जाइए, उनको मेरे पास भेज दीजिए।"

मैंने कहा—"अभी भेज देता हूँ।"

इतने में नर्स रोजा बोली—"आप पहले दूध-अण्डा खा लीजिए। उसके बाद बातचीत में लगिए।" एक क्षण रुक कर उसने जैसे भूली हुई बात का अनायास स्मरण-सा करते हुए कहा—"जी, डॉक्टर रंधावा ने पूछा है कि 'ब्लड' का इन्तजाम हुआ या नहीं ?"

मैंने उसे एकान्त में लेजाकर बतला दिया कि यदि भाभी का 'ब्लड' उनके अनुकूल होगा, तो पहले वही रक्तदान करेंगी, अन्यथा फिर कुछ दूसरी व्यवस्था की जायगी।

रोज़ा बोली—"ठीक है, तब फिर 'ग्रुपिंग' के लिए उनका 'ब्लड' 'टेस्ट' करना पड़ेगा। चलिए, भाभी को साथ ले लीजिए, वह तो यहीं हैं अभी—शायद उस तरफ !"

मैंने—'हाँ' कह दिया और तब हम लोग, नर्स रोज़ा के साथ, डॉक्टर रंधावा के पास जा पहुँचे। मैंने देखा, आज जाने क्यों, भाभी का अन्तर्मन कुछ ऐसा प्रसन्न था कि उसका आभास उनके मुख पर खेलती स्वाभाविक कान्ति के स्पष्ट द्विगुणित हो जाने से मिलता था।

मिस रधावा ने उनके रक्त की परीक्षा कर ली और मुस्कराकर भाभी की ओर देखा।

वह भी मुस्करा उठीं।

मिस रधावा ने मेरी ओर देखते हुए कहा—"ठीक है मिस्टर सतीश, थ्री हंड्रेड सी० सी० विल सफाइस !" इतना कह कर उन्होंने एक मन्द मुस्कान छोड़ दी।

भाभी के साथ थियेटररूम से जब मैं वापस लौटा, तो भाई साहब उनके निकट बैठे परिणाम जानने के लिए उत्सुक-से हो उठे। सहसा ही उन्होंने दृष्टि कुछ इस प्रकार नीचे से ऊपर उठाई कि जैसे परिणाम

का वह मौन मे ही उत्तर जानना चाहते हो। इसीलिए मैंने सर हिला-कर सकेत कर दिया—"ठीक है।"

इस पर वह किंचित् मुस्करा उठे। कुछ क्षण वहाँ बैठने के पश्चात् वह बाहर निकल आए। मै वराण्डे मे उनके पीछे-पीछे चल रहा था।

अनायास एक चीख—वह सर नीचा किए कुछ सोचते चल रहे थे। सर को नीचे से ऊपर की ओर उठाते हुए बोले—"राम, राम!"

मैंने कह दिया—"किसी का ऑपरेशन किया जा रहा है।"

"हूँ"—कह कर उन्होंने सर हिला दिया और बाहर आकर खड़े हो गए। गभीर बने रहे। फिर बोले—"सतीश, मै तुमसे तग आ गया हूँ। कैसे ये लोग हैं! म नही जानता था। मै अभी जब उनसे मिलने गया था, तो वह अडे को छुरी मार रही थी। मुझे ऐसा जान पडा कि वह छुरी अडे को नही, मेरी अँगुलियो को काट रही है। सोचता हूँ तो जी कॉप उठता है कि सभ्यता की दौड मे हम कहाँ आ पहुँचे। मै तुमको विश्वास दिलाता हूँ सतीश, जो औरत अडा काट कर खा सकती है, वह भ्रूणहत्या भी कर सकती है। शिव, शिव! चलो, चलें! मै उनसे कह आया हूँ कि यह सब कुछ नही होगा यहाँ, हम लोग जा रहे है। मै जानता हूँ कि वह हम सब लोगो की बडी आत्मीय बन गई है, लेकिन मै तो अपने सिद्धांतों के पालन मे ही अपना जीवन देखता हूँ!"

हम सब लोग जारहे थे, बल्कि टैक्सी में बैठ भी चुके थे कि एक अपरिचित नर्स दौडती हुई आई और बोली—"श्रीमती विश्वास मूर्छित हो गई है। आप लोगों में से किसी एक साहब को यहाँ रहना ही चाहिए।"

इतना कहकर नर्स चली गई।

इसके पश्चात् भइया मुस्कराए और धीरे से बोले—"मुझे यह श्रीमती विश्वास कुछ रहस्यमयी भी मालूम पड़ती है, सतीश! इनकी ये मूर्छाएँ कृत्रिम भी हो सकती है। खैर, अब तुम ऐसा करो कि थोडी

देर बाद चले आना।"

इतने मे मैं हॉस्पिटल के अन्दर जा ही रहा था कि भीखू ने एक टेलीग्राम भइया के हाथ पर रख दिया। मैंने तुरन्त लौटकर जो उसको देखा, तो क्या देखता हूँ कि तीस हज़ार का गबन हुआ है और मुनीम जी के सुपुत्र हिरासत मे है! टेलीग्राम मैनेजर ने भेजा है और एक बजे फ़ोन पर प्रतीक्षा करने की प्रार्थना की गई है।

सब लोग टैक्सी से लौट पडे, किन्तु मुझे वहाँ रह ही जाना पड़ा। मैं जब श्रीमती विश्वास के कमरे की ओर बढ रहा था, तब यकायक तीन Z'S वाली बात मन मे पुन उभर उठी!—सारा जगत आज जिस समस्या को सुलझाने मे लगा हुआ है, वह केवल एक त्रिकोण के अन्दर आ जाती हे—अर्थ, भूमि और नारी! ध्यान बट ही चुका था, इसलिए अब चायपान के समय श्रीमती विश्वास से विशेष बाते नही हुईं। वे केवल इतना बोलीं—"यह तो मैं जानती थी कि मनुष्य के सिवा देवताओ का कोई अलग अस्तित्व नही है। किन्तु यह नही जानती थी कि पत्थर में निवास करते-करते वे स्वय पत्थर हो जाते है।"

मेरे मुँह से निकल गया—"आप शायद भाईसाहब के लिए कह रही है! लेकिन आपने यह नही देखा कि उस दिन जब आप मृत्यु से खेल रही थी, तब आपके हत्याकारी को तुरन्त बन्दी बनाने मे उन्होंने कैसे चमत्कारपूर्ण चातुर्य का परिचय दिया। और तारीफ़ यह है कि प्रातःकाल से लेकर चार बजे तक वे निराहार रहे और आज आपको शायद नहीं मालूम कि मेरी दूकान मे तीस हज़ार का गबन हुआ है। टेलीग्राम अभी यहीं भीखू लकर आया था। इतने पर भी केवल आपके लिए वे मुझे यहाँ छोड़ गए है।"

श्रीमती विश्वास चकित हो उठी और बोलीं—"तीस हज़ार का? लेकिन मैं जानती हूँ वे सागर है—अगाध। हम लोग उनकी थाह नहीं पा सकते! और कदाचित् इसीलिए वे अपने आपका किसी भी प्रकार

के मोह में नही डालते । मै उनका उपकार कभी नहीं भूलूँगी । अच्छा, सतीश बाबू, इन अवस्थाओ में आप लोग तो अब शायद ही यहाँ रहे। मेरी नैया कैसे पार होगी ? यह विमल बाबू जो इस वक्त भीगी बिल्ली बने हुए है, आपके पीठ फेरते ही शेर हो जायँगे । और तब ?"

मैने उत्तर दिया—"तब, आपको चटनी बनाकर एक अँगुली पर रख कर जबान से चाट लेगे । बस, यही न आप कहना चाहती है ?"

उन्होने कहा—"सतीश बाबू, स्त्री सबसे अधिक दुर्बल कहाँ होती है, काश आप जान सकते !"

उत्तर देने के बजाय मै—अपनी गम्भीरता को छिपाने के लिए—किंचित् मुस्करा पडा । तभी उन्होने पूछ दिया—"सतीश बाबू, हॉ, किसका 'ब्लड' लिया जायगा !"

"यह आपको अभी नही बताया जायगा !"

इतने मे चाय पीकर जब मै उठने लगा तो श्रीमती विश्वास ने मेरा हाथ पकड लिया । बोली—"बैठो भी, अभी तो तुमने कुछ खाया भी नही ।" और उनकी दृष्टि उधर से गुजरती मिस रोज़ा हडसन पर जा पडी । उन्होंने उसे सी-सी करके सभ्यता के आधुनिक सांकेतिक इशारे से अपने पास बुलाकर कहा—"सतीश बाबू के लिए एक प्लेट ऑमलेट तो बनवा लीजिए !"

किन्तु मैने कह दिया—'मै यह सब नही लेता, मुझे अभी जाना है । आपको पता नही हे कि मुझे अभी, तुरन्त, रक्तदान क्रिया की भी व्यवस्था करनी है ।"

मिस रोज़ा मेरा उत्तर सुनकर जा चुकी थी ।

श्रीमती विश्वास अवाक् रह गई और ऐसा जान पड़ा जैसे उनकी मुखाकृति सफेद पड गई हो ।

मै जब बँगले की ओर आने लगा—एकही विचार मेरे मन मे ज्वार की तरह से उमड़ रहा था—हमे शीघ्र यहाँ से जाना है । और ऐसी

कोई व्याधि नही पालनी है, जो प्रश्न और समस्या बनकर कानपुर में भी मेरे जीवन को निरन्तर कुरेदती रहे, छेदती रहे !

रात कुछ सरदी अधिक पडी थी। एक बजे कुछ लोग खड़े आपस मे कुछ बातचीत कर रहे थे। वही मोड था और एक फर्लाङ्ग भर की चढ़ाई पड़ती थी। मोड़ पर टैक्सि को अत्यधिक मन्द गति से घुमाते समय मैंने देखा—चार आदमी एक शव को लिए जा रहे हैं ! टैक्सीवाले से मैंने पूछा—"क्या कोई दुर्घटना हो गई है ?"

टैक्सीवाले ने बताया—"किसी भले आदमी की लाश खड्ड मे पड़ी पाई गई है।"

मेरे मुँह से निकल गया—"भले आदमी की लाश ?"

टैक्सीवाले ने उत्तर दिया—"हाँ, सेठसाहब, यहां के लिए बहुत मामूली बात है। दो चार सौ नकद दीजिए, और जिसको चाहिए, साफ़ करवा दीजिए।"

यद्यपि मैं पहाड पर था, लेकिन मुझे ऐसा जान पड़ता था जैसे पहाड मेरी छाती पर आ गया है। आज मनुष्य के हृदय का यह निकृष्टतम रूप है ? अभी उस दिन श्रीमती विश्वास को निध दिया गया, आज सुनता हूँ, कि किसी आदमी को केवल एक धक्के से नीचे गिरा कर खतम कर दिया गया है और जिस घटना की छानबीन के लिए मैं बँगले की ओर बढ रहा हूँ, वह विश्वासघात भी एक पत्थर से कम नही है। तभी किसी ने मेरे भीतर से पुकार कर कहा—और इन सब अवस्थाओ के भीतर से अकुरित होती हुई एक ममतामयी नारी का पावन, रक्तदान !

: १६ :

बँगले के अन्दर जिस कमरे मे फोन था, वह श्रीमती विश्वास के ड्राइंग-रूम के बगल मे पडता था; अतएव भाईसाहब वही बैठ गए। ड्राइंग-रूम मे गहरी नीरवता छाई थी; एक ऐसी गम्भीर शान्ति थी, जिससे वातावरण बोझिल-सा हो उठा था। टेलीग्राम में दोपहर को फोन पर प्रतीक्षा करने की बात कही गई थी, इसलिए बारह बजे से ही वह फोन की घण्टी सुनने को आतुर थे। लेकिन पहली बार जो फोन की घण्टी बजी, वह यह बतलाने के लिए थी कि रक्तदान के समय भाभी को कोई विशेष कष्ट नही हुआ और वे पूर्ववत प्रसन्न है। उस समय भाईसाहब के हाथ मे समाचार-पत्र था और फोन पर भी इस समाचार को सुनकर उन्होने कोई प्रतिक्रिया नही व्यक्त होने दी। इस सन्देश के पूर्व जैसे समाचार-पत्र पढ रहे थे, वैसे ही इसके बाद भी पढने में लग गए। थोडी देर बाद जब फोन आया, वह टाफी और लेमन-ड्राप्स, बिस्किट, पेस्ट्री आदि इगलिश मिठाइयोवाली दूकान 'लक्ष्मी-स्वीट-स्टोर्स' का था। दूकान के 'प्रोप्राइटर' ने कहा था कि अब मैने ऐसा इन्तजाम कर लिया है, जिससे डबलरोटी आपको रोज-की-रोज़ प्रातःकाल, ताजी मिल जाया करेगी। उत्तर मे भाईसाहब ने केवल इतना कह दिया 'थैक्स'। उन्हें जैसे यह समाचार बहुत रुचिकर प्रतीत नही हुआ।

अब एक बज रहा था और भाईसाहब बार-बार घडी देख रहे थे। पाँच मिनट बाद फोन की घण्टी फिर बज उठी और भइया ने जो 'रिसीवर' मुँह से लगाया, और जो आवाज़ आई वह हमारे मैनेजर तारकनाथ की थी। उन्होने जो कुछ कहा उसके उत्तर मे भइआ ने उत्तर दिया कि—तुमने फौरन 'ऐक्शन' लेकर हमारी तबीयत खुश कर दी। हम तुमसे ऐसी ही आशा करते थे। एँह, एँह, मैं क़िसी की नाराज़ी और राज़ी को नहीं देखता। अपराधी मेरे सामने सदा शत्रु की शक्ल

कोई व्याधि नही पालनी है, जो प्रश्न और समस्या बनकर कानपुर में भी मेरे जीवन को निरन्तर कुरेदती रहे, छेदती रहे !

रात कुछ सरदी अधिक पड़ी थी। एक बजे कुछ लोग खड़े आपस मे कुछ बातचीत कर रहे थे। वही मोड था और एक फर्लाङ्ग भर की चढाई पडती थी। मोड़ पर टैक्सि को अत्यधिक मन्द गति से घुमाते समय मैंने देखा—चार आदमी एक शव को लिए जा रहे है ! टैक्सीवाले से मैंने पूछा—"क्या कोई दुर्घटना हो गई है ?"

टैक्सीवाले ने बताया—"किसी भले आदमी की लाश खड्ड मे पड़ी पाई गई है।"

मेरे मुँह से निकल गया—"भले आदमी की लाश ?"

टैक्सीवाले ने उत्तर दिया—"हाँ, सेठसाहब, यहाँ के लिए बहुत मामूली बात है। दो चार सौ नकद दीजिए, और जिसको चाहिए, साफ करवा दीजिए।"

यद्यपि मै पहाड पर था, लेकिन मुझे ऐसा जान पड़ता था जैसे पहाड मेरी छाती पर आ गया है। आज मनुष्य के हृदय का यह निकृष्टतम रूप है ? अभी उस दिन श्रीमती विश्वास को विष दिया गया; आज सुनता हूँ, कि किसी आदमी को केवल एक धक्के से नीचे गिरा कर खतम कर दिया गया है और जिस घटना की छानबीन के लिए मै बँगले की ओर बढ़ रहा हूँ, वह विश्वासघात भी एक पत्थर से कम नही है। तभी किसी ने मेरे भीतर से पुकार कर कहा—और इन सब अवस्थाओं के भीतर से अकुरित होती हुई एक ममतामयी नारी का पावन, रक्तदान !

में दिखाई देता है। आदमी सबसे अधिक अपने को प्यार करता है और तुमको मालूम होना चाहिए कि पिता जी कहा करते थे कि न्याय वही कर सकता है जो अपने को भी क्षमा नही कर सकता है। क्या तुम समझते हो···हॉ ··हॉ·· ठीक है, वही मै कह रहा था, क्या तुम समझते हो, मै तुमको समझने में गलती करूँगा ? मै कर्म का उपासक हूँ, चर्म का नही ! · अच्छा, मुझे आना ही पडेगा·· हाँ· आॅ· यह तो तुम ठीक कहते हो। मगर मै यहाँ बुरा फँस गया हूँ, कुछ तो कर्तव्य से और कुछ अपनी रुचि के कारण। अभी घूम तो नही पाया, लेकिन एकाध दिन में घूमने की सोच रहा हूँ। हाँ, और सब ठीक है। मुन्ना इस वक्त खिलौनो से खेल रहा है।·· अच्छा · ह···ह" हँस कर बोले— "··· अभी बुला लेता हूँ। अगर ऐसी बात है, तो मै चला आऊँगा। रुपए का महत्व मै समझता हूँ। केवल अपने ही लिए नही, सम्पूर्ण समाज के सुख और शान्ति के नाम पर, आनन्द के नाम पर ! इच्छा-नुसार रुपया प्रत्येक व्यक्ति के पास होना चाहिए। इसलिए भी सम्पत्ति की रक्षा मेरा और मेरे परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का एक पवित्र धर्म हो जाता है।·· अरे राम कहिए, क्षमा और दया को न्याय के समक्ष मै द्वार के भिक्षुक की भाँति 'ट्रीट' करता हूँ ! · हाँ, सो तो है ही, मैंने पहले ही कह दिया कि मै तुम्हारी इस कर्तव्यनिष्ठा से बहुत प्रसन्न हूँ। ···नही, नही, तारकनाथ, मुझे सदा इन सब बातो का ध्यान रहता है। अच्छा, वह भी ट्रंककाल करेंगे ! बहुत खूब ! मै स्वागत के लिए तैयार हूँ। उन्होने अब तक मेरा देवत्व ही देखा है, पशुत्व नही देखा, दैत्यत्व नही देखा ! अब देखेंगे, तब उनको मेरा यथार्थ परिचय मिलेगा। तुम विश्वास रक्खो मै उन नेताओ में से नही हूँ जो पदों पर पहुँच जाने के बाद भारतीय सस्कृति की न केवल मर्यादा को वरन् लाज को भी भूल बैठे हैं। वे अपनी संस्कृति को आज माँ की तरह नही मानते। मै उनमे से नही हूँ।· नहीं, नहीं, नही ! इसका दण्ड उसको

भुगतना ही पड़ेगा, अच्छी बात है। अगर मेरी पारिवारिक लक्ष्मी मेरा आह्वान कर रही है, तो मै जल्दी-से-जल्दी यहाँ से चल दूँगा। अच्छा··· सुखी रहो ”

भइया की इस बातचीत को सुनकर मै स्तब्ध हो उठा। आँसू मेरी आँखों से टप ! टप् ! गिर रहे थे और ज्योही उन्होने फोन का रिसीवर यथास्थान रख दिया, त्योही मैंने उनके चरण छू लिए। भइया मुस्कराए और तब मै बोला—“भइया जीवन के बहुत-से ऐसे पहलू केवल इसलिए छिपे रह जाते है कि वस्तुस्थिति के मर्म का हमको ज्ञान ही नहीं हो पाता। आज आपने जो बातचीत की है, उसको सुन कर मुझको ऐसा जान पड़ता है, जैसे अन्धकार का पर्दा मेरी आँखो के सामने से हट गया है।”

अब रात के ग्यारह बजे है और भइया, भाभी, मुन्ना सब कानपुर लौट गए है। बात तो मुनीम जी ने भी थोडी देर बाद भइया से की थी, पर उन्होने ज्योही रिसीवर मुँह से लगाया और उनको मालूम हुआ कि फोन पर मुनीम जी बोल रहे हैं, बोलने के साथ-साथ सिसकियाँ भर-भर कर इस ढग से रो रहे है कि शब्द कट-कट कर विकृतरूप मे सुनाई पडते है, तब उन्होने केवल इतना कहा था—“देखिए, मुनीम जी, अवस्था में और श्रद्धा में आप मेरे चाचा के समान है, किन्तु अपराध के मामले में दया और क्षमा को मै उन कीड़ो की तरह देखता हूँ, जो नित्य अज्ञानावस्था मे मरते ही रहते है। खटमल जब बढ जाते है, तब फ़ायर-पाईप से उनको भस्म ही कर डालना पडता है। आपको मालूम होना चाहिए कि किसी नीतिकार का बचन है—कि वैदिकी हिसा, हिसा न भवति ! इसलिए पापी के लिए मेरे पास दया नही है। आप को मालूम होना चाहिए राष्ट्र-पिता हमको सिखला गए है कि अगर कभी कोई अपराध तुमसे हो जाय, तो चौबीस, अडतालीस और बहत्तर घण्टे का निराहार उपवास तो तुमको करना ही चाहिए। अन्यथा आत्म-

शुद्धि असम्भव हो जायगी। तो अपराधी सिद्ध होने पर जब मै स्वयं अपने को दण्ड दिए बिना नही मानता, तब आपतो एक प्रथक शरीर का अस्तित्व रखते हैं। बस, मैने आपकी सब बाते सुन ली। अब यह बकवास बन्द कीजिए। मेरे पास इतना फालतू समय नही है। नही, नही, मै स्वयं आ रहा हूँ। मै देखूँगा कि आपके मन, वचन और कर्म मे कितना अन्तर है।" और इसके बाद भइया ने फोन रख दिया।

इस प्रकार मैने देखा तीन-तीन मिनट करके यह वार्ता कुल नौ मिनट में समाप्त हुई।

आज फिर मुझे नीद नही आ रही है। कई दिनो तक यहाँ कितनी चहल-पहल रही, हालाँकि हम लोग श्रीमती विश्वास के पीछे व्यस्त और चिन्तित ही रहे, किन्तु पारिवारिक जीवन का आनन्द कितना सुखद होता है, यह अनुभव करने का पूरा-पूरा अवसर मिल गया।

मै यहाँ इस समय भी हास्पिटल में ही हूँ। आज श्रीमती विश्वास बहुत प्रसन्न थी। भाभी चलने से पूर्व उनसे मिलने भी आई थीं। मैने तो नही लेकिन नर्स ने उनको बता दिया था कि रक्तदान भाभी ने ही किया है। इस बात को सुनकर श्रीमती विश्वास को बहुत पीडा पहुँची। उन्होने कहा—"आज मुझे मालूम हुआ कि हमारे बीच एक ऐसी भी दुनिया है, जिसमे मनुष्य, मनुष्य को अपना बिलकुल सगा और आत्मीय मानता है। स्वार्थों के सम्बन्धों का उनमें कोई प्रश्न ही नही उठता। मै भाभी की सेवा ही क्या कर सकती हूँ, लेकिन उनका यह रक्तदान मेरे लिए आत्मदान से बढकर है।"

चलते समय उन्होंने मुन्ना को सौ रुपए का एक नोट देते हुए कहा था कि—"भाभी, अगर मुन्ना को भी आप यह नोट न लेने देंगी, तो मैं यह दुःख सहन न कर पाऊँगी। अगर आप मेरा जीवन सुखी देखना चाहती है, तो मेरी यह प्रार्थना तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी।" और जब भाभी चलने लगी थीं तो श्रीमती विश्वास की आँखे भर आई थी।

अन्त मे उन्होने यह भी कहा था—"पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर आप लोगों की कम्पनी 'इन्ज्वाय' करने के लिए मैं कानपुर अवश्य आऊँगी।" और इतना कहकर उन्होंने मुन्ना को छाती से लगा कर उसे चूम लिया था।

भाई साहब और भाभी के सम्बन्ध मे जब-जब सोचता हूँ, तब-तब यही अनुभव होता है कि उनके सामने वास्तव में मेरा ज्ञान, साहस और हृदय कुछ नही है, कुछ नही है! अभी मैंने जीवन मे ऐसा कोई कार्य नहीं किया, जिससे मैं उनके चरणों के निकट बैठने का उचित अधिकारी हो सकूँ। यह मेरी भावुकता नही है, मेरे प्राणों की अपनी निजी अनुभूति है।...

: १७ :

श्रीमती विश्वास की तबीयत अब अच्छी हो रही थी। वे थोड़ा-बहुत चलने-फिरने लगी थीं। हास्पिटल छोड़ चुकी थीं और अपने बँगले पर लौट आई थी। थोड़ी कमजोरी भर शेष रह गई थी। नित्य एक अर्क टॉनिक के रूप में भोजन के पश्चात् ले लेती और भोजन में भी रोगनजोश एक प्रकार से सम्मिलित ही हो गया था। आज कई दिनो के बाद वह अपनी बैठक में चाय की टेबिल पर देख पड़ी थीं और एक समाचार पत्र उनके सामने था :

मसूरी, तीन अगस्त। मसूरी का मौसम हमेशा नई-नई रंगीनियाँ उत्पन्न करने के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के सम्मान्य स्वर्गीय बैरिस्टर श्रीनिर्मलचन्द्र विश्वास अपनी जिस प्रतिभा और आचारनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध थे, उनकी विधवा पत्नी श्रीमती विश्वास ने अपने पति की पुण्य-स्मृति को जाग्रत और सजीव बनाने के लिए बहुत प्रगतिशील बनने की ओर पदार्पण किया है। कहते हैं, अभी वह एक नवीन आयोजन को सम्पन्न करने में पूर्णरूप से सफल हुई है। बहुत सयम और इन्द्रिय-निग्रह का जीवन बिताते-बिताते उन्होंने आमोद-प्रमोद का पल्ला पकड़ कर अपने शरीर में जिस नवीन आत्मा को स्थापित कर लिया था, उससे उनको सहज ही मुक्ति मिल गई है। एक सप्ताह तक वह इसी निमित्त एक हास्पिटल की शोभा बढ़ाती रही। डॉक्टरानियाँ और नर्सों को उनके इस शुभागमन से बहुत पोषण मिला है। पुरस्कारादि से उनको इतना सन्तुष्ट कर दिया गया है कि भ्रूणहत्या की सारी घटना एक रहस्य मे परिणत होकर रह गई है। जीवन के खतरो से सर्वथा मुक्त होकर, बचकर, दूध की भाँति स्वच्छ बनकर, साफ निकल आई हैं और अब स्थिति यह है कि चरित्र की किसी दुर्बलता का कोई आरोप उनपर लग नहीं सकता। सच-झूठ की राम जाने, पर श्रीमती विश्वास की

प्रतिष्ठा पर बिलकुल आँच नहीं आ पाई। आज के युग में सभ्यता की यह अभिवृद्धि समाज के नव-निर्माण के लिए एक ज्वलन्त आदर्श उपस्थित करने में पूर्ण समर्थ हो गई है? और इस अपूर्व सफलता के लिए श्रीमती विश्वास बधाई की पात्र हैं! मगर एक शेर इस समय याद आ ही जाता है :

इब्तदाए इश्क़ है, रोता है क्या,
आगे-आगे देखिए, होता है क्या?

श्रीमती विश्वास ने जब यह कटिंग मेरे सामने रक्खी तो मुझे ध्यान आ गया कि अभी पिछले महीने यह दैनिक बन्द होने जा रहा था। स्थिति इतनी डॉवाडोल थी कि नित्य यही सुनाई पड़ता था अब दस ही पाँच दिन में प्रेस पर लेनदारो का ताला लग जायगा और आज देखता हूँ कि एक पृष्ठ पर विमल विश्वास का चित्र प्रकाशित है, जिसके नीचे लिखा है

'नया गाँव कृषिउद्यान के नवीनतम स्वामी श्रीमान विमल विश्वास।'

और तब मेरे मुँह से निकल गया—"चिन्ता की कोई बात नहीं है। मानहानि की नालिश के लिए इतना मसाला बहुत काफी है। मुझे तो अब कुछ ऐसा जान पड़ता है कि विमल साहब ने निश्चितरूप से यह प्रेस खरीद लिया है। बिना एक अधिकारी हाथ के यह पत्र इस प्रकार का समाचार कभी छाप ही नही सकता था।"

श्रीमती विश्वास बोलीं—"मिस्टर प्रफुल्लचन्द्र उनके अन्तरंग मित्रों मे से थे। आज तो उनके यहाँ जाकर इस केस को दायर करने के सम्बन्ध में बात कर लेना; वैसे तो मेरा भी परिचय है उनसे। हमारे यहाँ वे आते भी रहते हैं। किन्तु वह ज़माना और था और मैं भी तब और थी। अब उन बातों का स्मरण भी एक दुःखद प्रसंग जान पड़ता है।"

बस, नारी-हृदय का यही पहलू मुझे सदा उलझन मे डाल देता रहा है। श्रीमती विश्वास के कथन का जो अर्थ होता है, वह कुछ-कुछ समझ में आ रहा है। हो सकता है कि प्रफुल्लबाबू के मन मे श्रीमती विश्वास के लिए कभी-न-कभी मृदुल भावों का सचार हुआ हो। यह भी हो सकता है कि उन्होने श्रीमती विश्वास पर अपना मूक आकर्षण व्यक्त किया हो और उसका प्रतिदान उन्होने उनसे न पाया हो और यही बात श्रीमती विश्वास को इस समय चिन्ता में डालने का कारण बन रही हो। कुछ भी हो, आज मुझे प्रफुल्लबाबू के पास जाना ही होगा और उस निश्चय को एक बार मन में स्थापित करने के अनन्तर मै फोन पर चला गया और दो मिनट बाद मैंने लौट कर श्रीमती विश्वास से कह दिया—"सात बजे का प्रफुल्लबाबू से एपवाइण्ट-मेण्ट हुआ है।"

अभी मेरी बात समाप्त ही हो पाई थी कि भीखू ने आकर सूचित किया—"अभिनाथबाबू आपकै यादि कइ रहे हैं।"

उसका यह कहना था कि श्रीमती विश्वास मेरी ओर एकटक देखने लगी। मैंने भीखू से कह दिया—"अच्छा! कह दो, दस-पाँच मिनट में आता हूँ!"

भीखू चला गया।

श्रीमती विश्वास बोलीं—"अविनाशबाबू को आप कितने दिनों से जानते हैं?"

श्रीमती विश्वास का यह प्रश्न कहाँ से उठ रहा है और इसके मूल में क्या है, यह मै जानता हूँ। अविनाश को मैंने कभी अविश्वसनीय नहीं समझा था, किन्तु हमारे बीच में इससे पूर्व कभी ऐसा कोई प्रश्न भी नहीं उठा था और जब तक हमारे आपसी सम्बन्धों मे सम्पदा और नारी के साथ हमारे सम्पर्कों के द्वन्द्व न उठे हों, तब तक यह पहचान सकना बड़ा कठिन होता है कि कौन हमारा सगा है और कौन बेगाना,

कौन मित्र है और कौन तथाकथित मित्र है, कौन ईर्ष्या-द्वेष रखता है और कौन स्नेह सौजन्य! किन्तु मेरी सदा से यह मान्यता रही है कि पारस्परिक संघर्षों में भी अपने उस व्यक्तित्व को अक्षुण्ण ही रखना चाहिए, जिसकी पहली शर्त शील और सौजन्य है। मैंने क्षण भर बाद उत्तर दिया—"अविनाश मेरा बाल-सखा है, हमारी प्रगाढ मैत्री भी रही है और हमने जीवन की दौड़ में दाँव-पेच भी खेले हैं। आपको हमारे सम्बन्धो के बीच मे पडने की जरा भी आवश्यकता नही है। जमानत तो विमल साहब की होनी ही चाहिए थी, कोई भी करता! तारीफ तो यह है कि पच्चीस तारीख को जब पहिली 'हियरिंग' होगी तब विरोधी पक्ष से खड़े होने पर भी अविनाश आपके सम्बन्धों की रक्षा कैसे करता है। एक बात और भी है कि मैं तो इस मुकदमे से इतना घिरा हुआ हूँ कि किसी प्रकार बच ही नही सकता! और आप देखेंगी कि अविनाश के विरुद्ध गवाही देते हुए भी मै उसके साथ अपनी मैत्री का सम्बन्ध किस प्रकार निभाता हूँ।"

श्रीमती विश्वास ने उत्तर दिया—"आपका यह कप तो ठण्डा हो ही गया, इसको छोड दीजिए। यह दूसरा कप मैं बना रही हूँ। और समोसे भी तो लीजिए। हमने देसी घी अभी कल ही मँगवाया है। रह गई अविनाश की बात, सो मेरा नाम है विश्वास! इसलिए मेरा आप पर पूरा विश्वास है। आप भले ही चिन्ता में पड़ें, मुझे इस सम्बन्ध में कोई चिन्ता नहीं है।"

मै चाय पीकर ज्योंही अविनाश से मिलने के लिए उठा, त्योंही मेरी दृष्टि बाईं ओर के टेबिल पर जा पहुँची, जिसके ऊपर एक सिने-मैगज़ीन रक्खा हुआ था और 'लाइफ' नामक पत्रिका! ये दोनो ताजे अङ्क थे। इसलिए मैंने उन्हे पुन लौट कर देखने के इरादे से ड्राअर खोलकर जो उसके अन्दर रखने की चेष्टा की, सो क्या देखता हूँ कि उसमे एक बढ़िया पिस्टल मय बेल्ट के रक्खा हुआ था। चूँकि इस

समय मुझे अविनाश के यहाँ जाना था इसलिए जानबूझ कर मैंने—आत्म रक्षा की भावना से—उसे अपनी ऊलन-जैकेट के ऊपर पहन लिया। इस समय श्रीमती विश्वास मुझे देखकर मुस्कराने लगी। बोलीं—"बस सतीश, तुम जितने दिन यहाँ रहना, बिलकुल इसी ड्रेस में मुझसे मिला करना। बल्कि जहाँ कहीं जाना, इसको जरूर अपने साथ रखना।"

मैंने तुरन्त उत्तर दिया—"अगर लाइसेन्स···!"

श्रीमती विश्वास ने कहा—"तुम आज प्रफुल्लबाबू के पास जा ही रहे हो। डी० एम० की उनसे बहुत पटती है। वह 'विदिन टू डेज़' तुम्हें लाइसेन्स दिलवा देंगे। बल्कि इसी बहाने उनसे मिलना और भी अच्छा रहेगा। बाद मे फिर और सब बातें कर लेना। अब कोई बात तो छिपी रह नही गई है, तुम कुछ नही भी कहोगे, तो भी वह इस केस के सम्बन्ध में ख़ुद ही तुमसे बात-चीत किए बिना न मानेंगे।"

इसी समय ज्योंही मै बाहर निकला कि पोस्टमैन ने आकर एक पत्र मेरे हाथ मे रख दिया और सलाम करके चल पड़ा।

मै पुनः अन्दर आ गया और पत्र को ऊपर की ओर उठा, चिट्ठी को बचाते हुए खोल डाला।

यह पत्र भाईसाहब का था।

श्रीमती विश्वास ने उत्सुकता के साथ प्रश्न किया—"क्या गिरीश बाबू का है, सतीश बाबू?"

मैंने कह दिया—"जी हाँ, जान तो कुछ ऐसा ही पड़ता है।"

तब वह बोलीं—"पढो सतीशबाबू, कुछ मेरे लिए भी लिखा है?"

मैंने पत्र खोल डाला और पढ़ने के अनन्तर मैंने उत्तर दिया—"लिखा जरूर है, मगर 'ऑन द होल' बहुत प्रायवेट है। आपको नमस्ते कहा है।"

पत्र मे लिखा था :

श्रीमती विश्वास

प्रिय सतीश,

जियो और जागो।

यहाँ के एक दैनिक में, श्रीमती विश्वास के सम्बन्ध में मसूरी का एक विचित्र प्रकार का सम्वाद छपा है। उसकी एक कापी श्रीमती-विश्वास के पास में कल की डाक से 'टिक' लगाकर भेज चुका हूँ। आज तुमको भी उसकी कटिंग भेजता हूँ। अब इस प्रेस को विमल विश्वास ने अपनी मुट्ठी मे कर लिया है। यह एक ऐसा साधन है जिससे श्रीमती विश्वास की मान-मर्यादा खतरे में पड़ गई है। मैंने यहाँ के वकीलो से बातचीत की तो मुझे ज्ञात हुआ कि कोर्ट से आर्डर लेकर इस पत्र का मुद्रण तुरन्त रोका जा सकता है। विशेषरूप से तब तक के लिए जब तक इस मुकदमे का फैसला न हो जाय, किन्तु इसका 'इन्जक्शन आर्डर' मसूरी का कोर्ट ही दे सकता है। तुम आज ही इसकी कार्यवाही शुरू कर देना।

इस अवसर पर एक बात मैं तुमसे और कहना चाहता हूँ कि हमारी हो या तुम्हारी, श्रीमती विश्वास के साथ चाहे जितनी निकटता और आत्मीयता स्थापित हो चुकी हो, पर तुमको इसके सघर्ष में नहीं पड़ना चाहिए। जब अविनाश विमल विश्वास की जमानत कर सकता है, तो वह तुम्हारे विरुद्ध भी जा सकता है और नारी क्या नही कर सकती। मैं श्रीमती विश्वास पर किसी प्रकार का अविश्वास नही करता, लेकिन अविश्वास और विश्वास के बीच में एक सौंदर्योपासक युवक की जो चिन्त्य परिस्थिति और मनःस्थिति होती है, उसके संकट की कल्पना तो मैं कर ही सकता हूँ। इसलिए मेरी आन्तरिक कामना यही है कि तुम अब इस झमेले में मत पड़ो। तारीख पड़ने पर भले ही चले जाना। यह मेरा एक घोर सासारिक दृष्टिकोण हो, किन्तु मैं किसी भी प्रकार और किसी भी अवस्था में तुमको वहाँ अकेला नहीं छोड़ सकता।

तुम्हारी तबीयत भी ठीक हो ही चुकी है। इसलिए वहाँ अब और

तुम्हारे ठहरने की आवश्यकता नहीं है।

ग़बन के सम्बन्ध में जो कुछ मुझे लिखना था, वह मैं तुमको पूर्व-पत्र में लिख ही चुका हूँ। मुनीम जी के साहबज़ादे ज़मानत पर छूट गए हैं। मुकदमे की पेशी की तारीख तीन सितम्बर है। मुन्ना पूछ रहा है—"ताता जी तब आएँगे?"

तुम्हारा,
भइया गिरीश

पत्र को पढ़ कर मैंने उसे जेब में रख लिया और ज्योंही मैं अविनाश के कमरे में पहुँचा, त्योंही क्या देखता हूँ कि विमल विश्वास और अविनाश दोनों अपने-अपने 'पेग' एक दूसरे से स्पर्श कर आज के प्रीति-पान का शुभारम्भ कर रहे हैं।

: १८ :

मैंने जो अविनाश और विमल दोनों को इस दशा मे देखा तो उन्हीं पैरों मै लौट पड़ा। अविनाश बोला—"आइए, सतीशबाबू, आइए!" और विमल ने अपना पेग टेबिल पर रखते हुए कह दिया—"एस-एस कम इन···कम इन···डोण्ट माइण्ड दैट यू आर मिस अण्डर स्टुड सम हाउ आर अदर! ऑफ्टर ऑल वी आर मोस्ट सिविलाइज्ड पीपुल, यू सी! अमारा कएने का मोतलब हइ कि आइडियोलोजिकल डिफरेन्सेज अमारा फ्रेण्डशिप के बीच में कोई इण्टरफियर नेईं करने सेकता, अण्डर स्टैण्ड! ··टेक युवर सीट, टेक युवर सीट, फ़ॉरच्युनेटली वी आर गेटिंग एन अपारच्युनेटी टु चिट-चेट विद ईच अदर, वेरी कॉमली, एण्ड फ्रैंकली! ओ··आई सी, यू हैव गाट सच्च ए ब्युटिफुल पिस्टल! यू लुक लाइक ए हाई प्लेस्ड आर्मी ऑफिसर नाउ!·· ब्युटिफुल···" नशे में झूमते हुए श्रीमन विमल विश्वास ने कहा—"आय एम मैनेजिंग जस्ट नाउ फार यू टू···!···दिस इज़ वेरी कॉस्टली ड्रिंक···! इट इज़ रेयरली एवेलएबिल हियर···!"

मेरे मन में आया—यह व्यक्ति वास्तव में बहुत बना हुआ है। इसकी नस-नस में फितरत भरी है। जो व्यक्ति श्रीमती विश्वास जैसी भाभी को समाप्त करने के लिए भोजन के साथ विष तक दे सकता है, वह दाँव-घात पा जाने पर किसको छोड़ सकता है? अत. मुझे साफ ही कह देना पड़ा—"आपकी स्मरणशक्ति बहुत कमजोर है। अफ़सोस कि आप इतना भी याद न रख सके कि खान-पान के सम्बन्ध में मेरे क्या विचार हैं? यू हैव टोटली फारगाटेन माई कल्ट एण्ड कल्चर, मैनर्स एण्ड सिविलीज़ेशन, इज़िन्ट इट?"

विमल विश्वास नशे में धुत होने पर भी स्तब्ध हो उठा। बोला—"ओ, आई सी, वेरी सोरी फौर दैट! ऑफ़कोर्स, वी मेट वन्स, आय

रिमेम्बर ऑल दैट ! एक्सक्यूज़ मी ! देन ह्वाट उड यू लाइक टु हैव ?—लेमन, जिंजर, कॉफी, टी, एनीथिंग ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"माफ कीजिएगा, मैं अभी श्रीमती विश्वास के साथ टी लेकर आ रहा हूँ। इसलिए अब आपके यहाँ कोई चीज़ न ले सकूँगा।"

अविनाश जो अब तक चुपचाप बैठा हुआ था, बोल उठा—"स्वार्थ और मोह जो कुछ न कराए सो थोड़ा है। अभी कल तक सतीशबाबू आप मेरे कितने निकट, कितने आत्मीय बन्धु थे, किन्तु आज मैं इस समय आपको इतना बदला हुआ पा रहा हूँ, जैसे हमारा कभी कोई परिचय ही न हो। क्या यह स्थिति दुखद नही है ?"

मुझे अविनाश पर क्षोभ तो बहुत था, किन्तु उस पर परदा डाल कर मैंने कह दिया—"अविनाश बाबू, वी ऑर स्टिल फ्रैण्ड्स !—केवल दृष्टिकोण की बात है, न स्वार्थ की, न मोह की ! समय आएगा, जब आप अनुभव करेंगे कि जिस भूमि पर आप इस समय हैं, वह कितनी लुचलुची है, गीली, पनीली और गसाऊ है ! अविनाशबाबू, आप पूरे दलदल में हैं। जितना ही निकलने की आप कोशिश करेंगे, उतने ही नीचे धँसते और फँसते जायँगे। सिद्धान्त इसलिए नहीं बने हैं कि उन्हे जब चाहे तब मस्तक का तिलक बना लीजिए, और जब चाहे तब गाजर-मूली के भाव बेच कर कुँजड़े की शक्ल मे बदल जाइए।"

मेरी बात सुन कर अविनाश का चेहरा लाल हो उठा। होठ फड़कने लगे और भाषा ही नहीं उसकी 'टोन' भी बदल गई। तपाक से वह बोल उठा—"आप मेरे ही कमरे में आकर मेरे ही घर के अन्दर ठहर कर मेरा अपमान कर रहे हैं। मैं इस बहस को तूल नही देना चाहता था।" कुर्सी से तुरन्त उठ कर मैंने उन्हें उत्तर दिया—"मित्रों में जब विचार-विनिमय होता हो और बहस का रुख जलते हुए तवे की तरह गरम हो पड़े, तब मित्रों को चाहिए कि वे तुरन्त एक दूसरे

को नमस्कार करके अलग हो जायँ ! मित्रता में मानापमान का प्रश्न ही नहीं उठता ! क्योंकि एक का मान दूसरे का भी मान ही होता है और एक का अपमान भी दूसरे का अपमान ही ठहरता है। मैं अगर आपका अपमान कर रहा हूँ .....(अब मेरा स्वर कुछ तीव्र हो उठा) तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि आपने मेरी मित्रता का अपमान किया है। बस, मुझे आपसे और कुछ नहीं कहना है ! आय विल सी यू इन द कोर्ट एण्ड यू विल आलसो सी मी देअर.. ओ० के०.. !"

मेरा इतना कहना था कि अविनाश चिल्ला उठा—"सतीश, सतीश, तुम बहुत भ्रम में हो, इधर आओ, बात सुनो,..." लेकिन तब तक मैं श्रीमती विश्वास के निकट पहुँच चुका था, जहाँ अब तक कुछ नवीन अतिथि आ चुके थे। वह थे रुचिनाथ, सुचिता और किरण ! यद्यपि मैं बहुत उत्तेजित था और मेरा हृदय धक-धक कर रहा था, किन्तु किरण को सामने पाकर मेरा चित्त प्रसन्न हो उठा। मैंने उसे झट गोद में उठा लिया।

इतने में सुचिता बोली—"किरण तुमने पहचाना ये कौन है ?"

किरण ने हँसते हुए लाड़ से उत्तर दिया—"चा.. चा...जी ?"

मुस्कराते हुए सुचिता ने कह दिया—"तुमने चाचा जी को नमस्ते नहीं किया ?"

लेकिन तब तक किरण बोल उठी—"लेकिन चाचा जी, हमने आपको ढूँढ़ लिया न ?"

इसी समय रुचिनाथ बाबू ने भरे हुए पान से गल-गल करते हुए पूछा—"कहिए, सतीशबाबू, आपका वह भीखू कहाँ है ? वह मुझको बार-बार याद आता है !"

मैंने हँसते हुए उत्तर दिया—"वह आपकी सेवा के लिए अभी आ जायगा। चलिए, आप मेरे रूम में तो चलिए।" और मैंने श्रीमती-विश्वास की ओर देखते हुए कह दिया—"आप भाग्य पर विश्वास तो

करती नहीं है, लेकिन मैं करता हूँ ! कल एक भाभी गई थीं, आज दूसरी भाभी—भाई और भतीजी को लेकर—"

रुचिनाथ बाबू हो···हो करके हँस पड़े। बोले—"सुचिता आपको रोज़ याद करती थी। आज आपसे मिलकर यह कितनी प्रसन्न हुई है, इसको आप नहीं समझ सकेंगे।" और उन्होंने सुचिता की ओर देखते हुए प्रश्न कर दिया—"क्यों, झूठ कहता हूँ ?"

सुचिता बोली—"यह गुण हो या दोष इसका निर्णय तो बाद में होगा, किन्तु स्त्री के सम्बन्ध में सारी पुरुष-जाति एक ही स्कूल की सी पढ़ी हुई जान पड़ती है।"

उनका इतना कहना था कि श्रीमती विश्वास बोल उठीं—"दीदी, तुम बिलकुल ठीक कहती हो। हम लोग आजकल इसी शास्त्र की जानकारी में लगे हुए हैं।"

श्रीमती विश्वास के इस कथन को सुनकर मुझको भी कम प्रसन्नता नहीं हुई। परन्तु हमको इस नवागन्तुक मित्र को तुरन्त आदरपूर्वक अपने यहाँ ठहराना था, इसलिए हम सब हँसते हुए अपने कमरे में चले आए। जिस समय मैं श्रीमती विश्वास के कमरे से बाहर की ओर आने लगा, उस समय किरण ने मेरी अँगुली पकड़ते हुए एक लाल फूलों वाली 'स्वीट पी' की झाड़ की ओर इशारा करते हुए पूछा—"चाचा जी यह फूल किसका है ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"किरण का ?"

रुचिनाथ को मेरा यह उत्तर बहुत पसन्द आया और वह बोल उठे—"लवली !"

इतने में इधर-उधर से घूमता हुआ आ पहुँचा भीखू, किन्तु रुचिनाथ बाबू, उनकी पत्नी और किरण को पहचानता हुआ-सा बोल उठा—"आप सबको मेरा परनाम है सरकार ! कब आना हुआ ?"

सुचिता ने उत्तर दिया—"अभी-अभी तो आ रही हूँ।"

भीखू ने प्रश्न किया—"मगर सामान तो आपका···।" -दोंने

रुचिनाथबाबू ने कहा—"हम लोग तो कई दिनों से आए हुए हैं और 'न्यू एरा' में ठहरे हैं। कई दिनो से सोच रहे थे कि सतीश बाबू से मिलना है।"

सुचिता ने कुछ ढिठाई के साथ उत्तर दिया—"हाँ, आप तो खूब सोच रहे थे!"

रुचिनाथ बाबू हँसने लगे, तब मैंने भीखू से कह दिया—"अरे, भीखू आपको···।"

"हाँ·· हाँ सरकार · अभी ले आया।" और फिर ठहर गया—"मगर·· भोजन भी तैयार है।"

सुचिता ने उत्तर दिया—"भोजन तो हमारे यहाँ बन ही रहा है।"

भीखू हँसने लगा। बोला—"अच्छा···अच्छा·· मगर···आप··· चाय लेहौ कि काफी?"

सुचिता हँस पडी—"इनको चाय चाहिए, मुझको कॉफ़ी!"

भीखू बोला—"अच्छा · बहुत · अच्छा ··।"

भीखू ज्योंही बाहर गया, त्योंही मैंने रुचिनाथ बाबू से पूछा—"आप तो यहाँ 'सीजन' भर रहेंगे न?"

सुचिता ने जवाब दिया—"सीजन भर तो क्या रह पाएँगे, लेकिन फिर भी अभी दस पन्द्रह दिन तो रहना ही पडेगा।"

इतने में रुचिनाथबाबू ने कहा—"माफ कीजिएगा, अभी हम लोग जिस कमरे में बैठे थे, वहाँ जो मैडम कुछ दुबली-दुबली-सी थीं, क्या उन्हीं का नाम श्रीमती विश्वास है?"

मेरे मुँह से निकल गया—"हाँ"

रुचिनाथ बाबू बोले—"मैंने उनके सम्बन्ध में अजीब किस्म की बातें सुनी हैं और आज तो उनके सम्बन्ध में एक खबर भी आई है!

आपने देखा होगा शायद ?"

मुझे कहना पड़ा—"देखा है, वह 'डिफ़ेमेशन सूट' भी दायर करने जा रही है—प्रिन्टर, पब्लिशर और एडीटर पर ! मगर, दरअसल बात यह है कि उनको तो उनके सगे देवर मिस्टर विमल-विश्वास ने खानें के साथ 'प्वायजन' दे दिया था। उन पर केस भी चल रहा है, जिसकी तारीख २५ है। ज़मानत अविनाश बाबू ने की है।"

रुचिनाथ बाबू बोले—" यह अविनाश साहब कानपुर के तो नहीं हैं ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"हाँ, हैं तो कानपुर के ही ! क्या आप उनको जानते हैं ?"

"एस, एस, आय नो हिम फुल्ली वेल ! ही वाज़ एक्यूज़्ड इन ए मरडर केस, एण्ड ऑफ्टर एबाउट टू इयर्स ही वाज़ एक्विटेड बाई हाई-कोर्ट !...ही हैज़ स्पेण्ट एबाउट टेन थाउज़ैण्ड इन दैट केस।"

इस समाचार को सुनकर मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा। जब भाग्य उदय होता है, जब दैवी अवलम्ब मिलता है, तब भगवान् की कृपा का हाथ किसी प्रकार मनुष्य के सिर पर आ जाता है और उसी क्षण मेरे मुँह से निकल गया—"तब तो भगवान् ने ही इस अवसर पर आपको मेरे पास भेजा है। शी इज़ माइ इन्टीमेट फ्रैन्ड ! आइ वाण्ट टु हेल्प हर इन एव्री रेस्पेक्ट ! अगर इस विषय में आपकी थोड़ी सी सहायता मुझे मिल जायगी, तो मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँगा।"

भीखू इतने में चाय और काफी अलग-अलग ले आया और मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई कि चाय के साथ वह टोस्ट भी लाया था और किरण के लिए केक और पेस्ट्री भी।

मैंने तब किरण को अपने पास बुला कर पूछा—"तुमको चाय पसन्द है या कॉफ़ी ?"

किरण ने उत्तर दिया—"हम तो बिस्किट और पेस्ट्री ही खाते हैं।"

मैंने तब इतना और जोड़ दिया—"मक्खन लगा कर !"

किरण हँस पड़ी और बोली—"चाचा जी, आप सब कुछ जानते हैं।"

तब मैंने उसको अपने अंक से लगा लिया और तर्जनी उठाकर कह दिया—"अब तुम हमारे यहाँ रोज आया करना।"

किरण ने उत्तर दिया—"और चाचा जी आप हमारे यहाँ रोज नहीं आएँगे ?"

मैंने कह दिया—"जरूर आएँगे !"

सुचिता इतने में बोल उठी—"आजकल यह बड़ी ढीठ होती जा रही है।"

मैंने उत्तर दे दिया—"ढिठाई, बच्चों की स्वाधीनता के लिए बहुत आवश्यक होती है। इससे वे निर्भय और साहसी बनते हैं।"

रुचिनाथ बाबू बोल उठे—"यू आर सपोज्ड टु बी ए वेरीगुड साइकोलोजिस्ट !"

मैं मन-ही-मन हँसने लगा लेकिन मैंने यह नहीं बताया कि मैं इसी विषय का प्राध्यापक भी हूँ।

: १६ :

प्रफुल्लबाबू का मकान लन्धौर में था। नीचे एक ओर जनरल मर्चेण्ट की दूकान थी, दूसरी ओर 'स्पोर्टस वेराइटीज़' की। बीच से जीना ऊपर को चला गया था। ज़ीने के दरवाज़े के ठीक ऊपर सफेद पत्थर पर लिखा हुआ था—'स्वप्नलोक' ! इस नामकरण का भी एक रहस्य था। प्रफुल्ल बाबू ने विवाह नहीं किया था। उनका स्वभाव कुछ ऐसा विचित्र था कि वह आग्रह किसी से कर नही पाते थे। खाने-पीने की बात दूसरी है, किन्तु जिसकी प्रीति, स्नेह, आत्मीयता और एक बदनाम शब्द 'प्रेम' कहते है, उसका आग्रह तो वह किसी से, किसी रूप मे, कभी कर ही न सकते थे। उनका 'बैङ्क-बैलेन्स' अत्यन्त साधारण था, यद्यपि आमदनी दो हज़ार मासिक से कम न थी। वह 'क्रिमिनल केसेज़' ही 'डील' करते थे और जिसको हाथ मे लेते थे, उसको सफलता की अन्तिम सीमा तक पहुँचा कर ही मानते थे। इसका परिणाम यह था कि वर्ष भर में अगर वे तीन 'केसेज़' भी स्वीकार कर लेते तो उनका काम चल जाता था।

घर पर तीन नौकर थे। एक रसोइया, दूसरा शोफर और तीसरा निजी सेवक ! रसोइया नाना प्रकार के व्यंजन आए दिन बनाता ही रहता था क्योंकि प्रफुल्ल बाबू के यहाँ मेहमान भी कोई न-कोई बना ही रहता था। इसके अतिरिक्त प्रतिमास दो नहीं, तो कम-से-कम एक, बड़ी पार्टी तो वे बाहरी मित्रो और अतिथियो तथा स्थानीय सम्बन्धित अधिकारियो और गिने-चुने मित्रो को मिलाकर देते ही थे। उनके यहाँ 'डान्सर्स' ठहरते थे और सगीतज्ञ ! उनके यहाँ कवि और कलाकार बहुत सम्मान पाते थे। कला और सस्कृति के क्षेत्र में वे चरित्र को विवाद का विषय कभी न बनने देते। अगर कोई गायिका वेश्या भी होती, तो उसको भी उनके यहाँ सम्मान अवश्य मिलता; लेकिन स्वभाव के वे ऐसे 'रिज़र्व्ड' थे कि कोई उलझन या इल्लत अपने पास फटकने

नहीं देते थे। उनका यह रेकार्ड था कि किसी भी सुन्दरी से उन्होंने अपने यहाँ ठहरने का कभी आग्रह नही किया। उनके सम्बन्ध में यह बात भी अब प्रसिद्ध हो चुकी थी कि उनका प्यार सदा अव्यक्त रहता है। सो भी इतना कि न कोई यह कह सकता कि वे मुझे चाहते हैं, बहुत चाहते हैं और न कोई यह कह सकता कि नही चाहते, कतई नहीं चाहते! एक वाक्य में वह न 'हाँ' थे, न 'नाँ'!

प्रफुल्ल बाबू का व्यक्तित्व अगर बहुत सुन्दर और अभिराम न था, तो वैसा कुछ साधारण भी न था। निजी जीवन में अब तक उन्होने अपनी बंगीय वेश-भूषा को अब तक सुरक्षित रक्खा था। हाँ, बाहर निकलने पर वे सूट ही धारण करते थे। वेश-भूषा और शृंगार-प्रसाधन का उनका कमरा दर्शनीय था। तीस प्रकार के तो जूते, जूतियाँ, चप्पल, बूट, स्लीपर, लौंग बूट, फुल स्लीपर, पेशावरी सैण्डिल, मद्रासी चप्पल, मराठी जूता, यहाँ तक कि कपडे, रबर, प्लास्टिक और मृग, साबर, घडियाल, खरगोश और लोमडी के चर्म के जूते भी उनके यहाँ पक्ति-बद्ध लगे रहते थे। धोतियों, पैण्ट, गाउन, चेस्टर, शर्ट्स, वेस्ट कोट्स, ओवर कोट, हंटिग कोट, नेकटाई, मोजे, रूमाल, हैट्स और कैप्स की भी विविध जातियाँ और शैलियाँ उनके यहाँ पोषण पाते थे। ऑयल, क्रीम, स्नो, लैवेण्डर, इत्र, पाउडर, सोप, टूथ-पेस्ट, ब्रश, शेविंग की सामग्री आदि से उनके कई ड्रेसिंग टेबिल, अलग-अलग कमरों में सुर-क्षित रूप से रक्खे रहते थे। अपना हिसाब-किताब बिलकुल अलग रहता और अतिथियों का सर्वथा पृथक।

उनके यहाँ दो पिस्टलें, एक रॉयफल और दो बाहर बोर की बन्दूकें थीं। उनकी अँगरेजी और बँगला की लायब्रेरी यद्यपि बहुत बड़ी थी, किन्तु इधर उन्होने हिन्दी के नाटक, काव्य और उपन्यास-साहित्य की भी एक ऊँचे दरजे की लॉयब्रेरी बना ली थी। 'लॉ बक्स' की लॉयब्रेरी तो दर्शनीय थी ही।

अतिथियो और अन्य लोगों के लिए तो यहाँ एक निश्चित समय के लिए ही ठहरने की सुविधाएँ रहतीं, किन्तु साहित्य और विज्ञान के तत्वशोधको के लिए इस विषय में पूरी छूट रहती थी। वे 'सीज़न' भर स्वतन्त्रतापूर्वक उनके यहाँ ठहर सकते थे।

इन सब बातों मे वह बड़े ही शीलवान्‌ और उदाराशय थे। बस, एक बात में वह बहुत कडे और निष्ठुर थे। वह यह कि अगर उनको किसी अतिथि या मित्र के द्वारा ऐसा अनुभव होता कि मेरा समय नष्ट हो रहा है और मेरे सौजन्य का अनुचित रूप से शोषण किया जा रहा है, तो उनका बाहर जाने का कार्यक्रम तुरन्त बन जाता। कोई कितना ही बड़ा या सम्मानित बैठा रहता, इसकी वह क़तई चिन्ता न करते। उठ कर चल देते। और इस कार्यक्रम का अर्थ यह होता है कि अगर कोई उनकी अनुपस्थिति मे रहना भी चाहता, तो न रह सकता। क्यों कि उनके बाहर जाने का अर्थ यह होता था कि रसोइया और निजी सेवक को तो वह कभी छोड नही जाते थे।—और मोटर गैरेज की ताली भी किसी को न दे जाते। सारा मकान बन्द हो जाता और ठहरने के सारे द्वार अपने आप बन्द हो जाते। परिणाम यह होता कि अतिथि हो या मित्र उसको तुरन्त इनका निवास-स्थान त्याग देना पडता। कई बार ऐसा हुआ कि सुबह लोगों को पता लगा कि प्रफुल्ल बाबू दिल्ली चले गए, किन्तु सायकाल नीचे सड़क से गुज़रते हुए लोगों ने अनुभव किया कि ऊपर तो मृदंग बज रहा है। वायोलिन की मधुर झंकार गूँज रही है और बीच-बीच में किसी गायक या गायिका की मधुर रागिनी सुनाई पड़ रही है।

इन सब प्रसगों और घटनाओं का उनसे एक तो कोई कभी भेद ही न पूछता, दूसरे अगर पूछता भी तो उसके प्रश्नों का उत्तर एक हल्की मुस्कान अथवा सिगार के धुएँ की उड़ान में ही मिल जाता। अगर कोई खोदने लगता, तो प्रफुल्ल बाबू यही उत्तर देते—"आपको

श्रौर कुछ बात भी करनी है ?" उनके इस उत्तर का स्पष्ट अर्थ यही होता था कि अब आप चुप रहिए और अगर कोई काम न हो, तो चाल दिखलाइए—"प्लीज़ बी ऑफ !"

मैं जब इन प्रफुल्ल बाबू के यहाँ पहुँचा, तो मालूम हुआ कि वह अन्दर तो जरूर हैं, मगर कोई जरूरी बात कर रहे हैं, किसी से ! नौकर जो पहाडी था, बोला—"आपको थोड़ी देर बैठना पडेगा। कोई कागज़ हो तो दे दीजिए, पहुँचा दूँ। चाहेंगे, तो अपने आप बुला लेंगे।"

मैंने उसको अपना 'विज़िटिंग-कार्ड' दे दिया और कहा—"मै इस समय उनसे मिलने की बात सबेरे ही फोन पर तय कर चुका हूँ। तुम मेरा यह कार्ड उनको दे दो। मै ज्यादा देर तक यहाँ नही बैठूँगा।"

थोड़ी देर बाद जब नौकर भीतर से लौटा तो उसने कहा—"साहब आपको अन्दर बुला रहे है।"

अब मै जो अन्दर गया, तो क्या देखता हूँ कि वह एक पलँग पर लेटे हुए हैं। मच्छरदानी उलटी हुई है। पलँग बहुत बड़ा है—स्प्रिंग-दार !—और फर्श पर घुँगरू का एक जोड़ा पड़ा हुआ है। सामने जो परदा पड़ा है, उसके उस पार बड़ी दूर से वीणा के तारों की मन्द-मन्द टुन ··टुन, टु···नु···नु, तुन···तुन···तुनुन, तुनुन तुनुन···तुनुन···तुन, ·नुन···तुन···तुन ··तुन—तुलुन सुनाई पड़ रही है। पलँग के पास ही दो बैठक वाली कुर्सियाँ पड़ी हुई है। कुर्सियाँ यद्यपि बेंत की है, किन्तु बैठने और पीठ के स्थान पर रुई की पतली-पतली गद्दियाँ मखमली आवरण के साथ चिपटी हुई है, जिन पर रेखांकित मोर अंकित है।

मेरे पहुँचते ही प्रफुल्ल बाबू उठ कर बैठ गए। मैंने उनका अभिवादन करने के साथ ही कह दिया—"आप लेटे रहिए आराम से ! मै आपके पास ही बैठ जाता हूँ।" मैंने एक कुर्सी उठा कर उनके निकट रख ली और उस पर बैठ गया।

प्रफुल्लबाबू के पलँग के पास एक छोटी, गोल टेबिल रक्खी थी, उस पर पुष्पों का एक गुच्छा पारदर्शक प्लास्टिक-पात्र में रक्खा हुआ था, जिसमें थोडा रंगीन पानी भी भरा दिखलाई पड़ता था। उनके सिरहाने की तरफ एक पनडब्बा था, जो था तो चाँदी का, किन्तु उस पर बनी हुई कोयल सोने की थी। प्रफुल्लबाबू ने पनडब्बा खोल कर मेरे सामने रख दिया। मैंने उसी से दो पान उठा लिए। इस पर उन्होने दो पान स्वयं भी लेकर होठों में दाब लिए। इसके बाद उन्होंने उस पनडब्बे के बाएँ ओर का खाना खोल कर चाँदी के वर्कों में लिपटी नन्ही-नन्ही गोलियाँ मेरे सामने कर दीं। मैंने कहा—"क्षमा कीजिएगा, मै तम्बाकू नही खाता।"

प्रफुल्लबाबू ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"क्षमा कीजिएगा, ये गोलियाँ तम्बाकू की नहीं हैं।"

मुझे हँसी आ गई और मेरे मुँह से निकल पड़ा—"श्रीमती विश्वास ने मेरी समझ से, आपकी प्रशंसा बहुत काफी कर दी थी। किन्तु इस समय मैं अनुभव कर रहा हूँ कि वह तो आपके इस रूप और ऐश्वर्य के सामने कुछ भी नहीं है।"

प्रफुल्ल बाबू ने बहुत संक्षेप में उत्तर दिया—"उनकी तो बात ही और है।"

मै इस विचार में पड़ गया कि क्या प्रफुल्लबाबू अपने इस कथन में भी कोई उपालम्भ ही प्रकट कर रहे है। पर तब तक प्रफूल्लबाबू बोल उठे—"कहिए, अब तो उनका स्वास्थ्य ठीक है न ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"हाँ पहिले से तो अच्छा है, लेकिन थोड़ी कमजोरी अब भी है।"

प्रफुल्लुबाबू बोले—"हाँ···आँ, कमजोरी···!"

मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे प्रफुल्ल बाबू कोई बात कहते-कहते रुक गए हों। अब मैंने अपना मन्तव्य उनके सामने जो रखना चाहा, तो

एकाध बात सुनने के पश्चात्, स्मरणशक्ति पर किञ्चित जोर डालते हुए बोले—"आप तो गिरीश बाबू के छोटे भाई हैं न ?"

मुझे उनकी इस बात को सुनकर विस्मय हुआ और मैंने पूछ लिया—"आप उनको जानते हैं ?"

उनके मुँह से निकल गया—"ही इज जस्ट लाइक माई ब्रॉदर—यंगर ब्रॉदर !"

तब मैंने विनीत होकर, हाथ जोड़कर कहा—"मैं आपको प्रणाम करता हूँ !"

: २० :

तीसरे दिन, प्रात काल, भीखू ने आकर सूचना दी—"विमल बिश्वास औ अभिनाथ दूनो जने बँगला छोडि कै आजु चले गे।"

मैंने कुछ सन्तोष के भाव से उत्तर दिया—"अच्छा, चले गए!"

भीखू बोला—"अबै-अबै तो गे हैं छोटे भइया!"

इतने में रामू ने आकर कहा—"मेमसाहब आपको याद कर रही है।"

मैंने पूछा—"और कौन है?"

रामू ने उत्तर दिया—"अभी तो कोई नहीं आया है। लेकिन शायद आने वाले है।"

कल कोर्ट में जो पहिली 'हियरिंग' हुई, उसकी सारी दृश्यावली अब भी स्वप्न-चित्र की तरह मन में स्थिर थी। विमल विश्वास ने जो बयान दिया था, उसकी कहानी गढ़ी हुई ज़रूर थी, किन्तु उसकी भूमिका उसके बचाव के लिए यथेष्ट थी। इस सिलसिले में बात करती-करती श्रीमती विश्वास बोली—"सतीश बाबू, मुकदमा तो कुमार के विरुद्ध जा ही रहा है और पूरी सम्भावना है कि उनको कम-से-कम पाँच वर्ष की सजा भी हो जाय, लेकिन एक बात बार-बार मेरे मनको बराबर मथने लगती है। सही है, कि वह मुझे अपने साथ नियन्त्रण में रखकर मेरी सारी स्वाधीनता छीन लेना चाहता था। यह भी सही है कि उसका इरादा जायदाद की सारी सुविधाओ का भोग एकाधिकारी के रूप में करना चाहता था, किन्तु कचहरी, अदालत मे उसका यह सिद्ध करना कि मै एक कुलटा नारी हूँ, क्या मेरी मान-प्रतिष्ठा को जीवित रख सकेगा? अदालत से जो फैसला होता है वह जैसे सदा उचित नहीं होता, वैसे ही उचित फैसला ऐसा नहीं है कि जनता की दृष्टि में सदा उचित ही ठहरता हो। यश और कीर्ति मिट्टी की उस कच्ची गगरी के

समान होती है, वह जब फूट जाती है, तो यह कोई नहीं कहता कि अगर लात मार कर अथवा ज़मीन में पटक कर फोड़ी न जाती, तो कभी न फूटती। सब कोई यही सोचता है, गगरी कच्ची थी, इसलिए फूट गई। कच्ची थी का अर्थ यह होता है कि कमज़ोर थी। मैं नारी हूँ और जब सगा देवर मुझ पर यह आरोप लगाता है कि मैं कुलटा हूँ, तो दुनिया यही समझेगी कि इस आरोप का कुछ तो आधार होगा ही! इसलिए सतीशबाबू, अब मैं श्रीमती विश्वास नहीं रह गई। वास्तव में, अब मैं श्रीमती विश्वास बन गई हूँ...'' और इतना कहते-कहते उनका कण्ठ भर आया। आँखों में आँसू डबडबाने लगे।

श्रीमती विश्वास के जीवन के कथन का यह पहलू मेरे लिए नया था। सच बात तो यह है कि एक छोर से दूसरे छोर तक हमारा सारा समाज उस खिलौने की भाँति व्यवहार करता है जो हमारी इच्छा-शक्ति के अनुसार हिलता-डुलता और नाचता है। यह एक ऐसा विषय है जो हमारी सम्पूर्ण जातीयता, नैतिकता और संस्कृति को घुन की तरह नित्य खाता रहता है।...अतएव एक बार स्वयं यह बात मेरे मन में आ गई कि यदि श्रीमती विश्वास मेरी बहन होतीं, तो मैं उनको अपने देवर के विरुद्ध इस तरह का अभियोग चलाने का अनुरोध कभी न करता। इतना ही नहीं, यदि वे इसके लिए हठ भी करतीं तो जिस तरह भी होता मैं उनको अवश्य रोक देता. लेकिन श्रीमती विश्वास के साथ अपनी आत्मीयता का दावा करने पर भी मेरा ध्यान उनके सम्मान-रक्षण के इस पहलू की ओर आकृष्ट नहीं हुआ।—और आज, परिणाम यह हुआ है, कि मैं श्रीमती विश्वास के इस कथन के सामने निरुत्तर हूँ। स्पष्ट रूप से यह क्या मेरी लघुता और हीनता नहीं है?

श्रीमती विश्वास के कथन को समाप्त हुए अभी एक मिनट भी नहीं हुआ था कि यह विचार मेरे मन को मथने लगा। मुझे चुप देख-कर उन्होंने कहा—"बोलो, सतीश बाबू, बोलो, तुम चुप क्यों हो?

मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि मुझे अपना मानते हुए भी मेरी अप्रतिष्ठा को तुमने अपनी अप्रतिष्ठा क्यों नहीं समझा ?" मुझे अब स्मरण हो आया कि उस दिन प्रफुल्ल बाबू से जब मैं बात करने गया था तो उन्होंने इस विषय को उठाते हुए कहा था कि इस केस का सबसे अधिक दयनीय स्थल यह है कि एक ओर तो एक सम्भ्रान्त परिवार का नायक सम्पत्ति के लालच मे पडकर अपनी भाभी को विष देता है, दूसरी ओर प्राण हानि का प्रयत्न करने का अभियोग लगने पर यह सिद्ध करने की चेष्टा करता है कि मेरी भाभी चरित्रहीन है। इस प्रकार एक ओर हिंसा और दूसरी ओर प्रतिहिंसा का प्रयोग करते हुए वह उस नारी का चरम अपमान करता है, जिसके साथ उसकी जायदाद की स्वामिनी होने का सम्बन्ध तो है ही, साथ ही उसकी सगी भाभी होने का नाता भी है। यह दोनो अपराध एक दूसरे के विरुद्ध भी हैं और पूरक भी। ऐसे घोर पापी के साथ दया, क्षमा और उदारता का व्यवहार करना स्पष्ट रूप से साँप को दूध पिलाने जैसा है। अतएव, मुझे कहना पडा—"कहती तो आप ठीक ही हैं किन्तु इस समस्या का एक दूसरा पहलू भी है। अब विमल विश्वास के साथ आपका देवर और भाभी का सम्बन्ध समाप्त हो चुका। अब तो वह आपके जान-माल का ही शत्रु नहीं, आपकी लज्जा का भी एक मात्र लुटेरा है। ऐसी दशा मे उस प्रतिष्ठा की हानि का सोच करना आपके लिए कदापि उचित नहीं है। कर्तव्य बड़ा कठोर होता है। उसकी रक्षा करने में सदा हमको घोर-से-घोर दुःख सहना ही पड़ता है। रह गई बात प्रतिष्ठा के नाश की, किन्तु प्रतिष्ठा का सम्बन्ध तो जीवन के साथ अक्षुण्ण रूप से रहता है। जो आपके प्राण लेने पर तुल गया है, वह आपकी प्रतिष्ठा का ध्यान ही कैसे रख सकता है ?"

इस पर श्रीमती विश्वास बोल उठीं—"अब भी आप मूल विषय से अलग ही बने हुए हैं। मेरा कहना तो यह है कि क्या यह उचित न

होता कि हॉस्पिटल से लौट आने पर मैं इस अभियोग को चलने ही न देती। और जैसे भी हो सकता, उसको चुपचाप दबा देती!"

अब एक ऐसा विषय मेरे सम्मुख था जिस पर मुझे अधिकारपूर्वक कुछ कहने का गर्व सदा रहा है और रहेगा। इसलिए मैंने उत्तर दिया—"मैं उन व्यक्तियों में नहीं हूँ जो पाप के फल को पका-पकाकर, भीतर-ही-भीतर सड़ने दिया करते हैं। मैं लीपा-पोती का घोर शत्रु हूँ। मैं समाज के नव-निर्माण का स्वप्न देखता रहता हूँ, उसमें इस दुनियाँदारी के लिए क़तई जगह नहीं है। मैं दावे के साथ यह कहना चाहता हूँ कि जब विमल विश्वास कारागार का दण्ड भोगेगा, तब वह स्वयं भी यह समझने का अवसर पाएगा कि उस जैसे पापियों के लिए अब हमारे देश में कोई स्थान नहीं रह गया है—और मेरा तो यह भी विश्वास है, कि तब समाज का कोई व्यक्ति यह कहने का साहस कभी कर नहीं सकता कि श्रीमती विश्वास का ही दोष था और विमल विश्वास निर्दोष होते हुए भी दण्ड भोग रहा है। मैं कानून की प्रतिष्ठा का समर्थक नहीं हूँ, मैं व्यक्ति की उस बनावटी और झूठी प्रतिष्ठा का भी समर्थक नहीं हूँ, जो यह मानता आया है कि नारी की लाज और उसका गौरव छुई-मुई की तरह हीन और तुच्छ वस्तु है। एक मिथ्या आदर्श के लोभ में पड़कर आपको नारी-सुलभ उस भावुकता को तो अपने मन से निकाल ही देना चाहिए, जो आज नारीत्व के नाम पर एक परम्परा बन गई है। इस स्थल पर मैं एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यदि यह आप समझ बैठी हों कि आप रूढ़िवादी समाज की कोई कुल-वधू नारी हैं, और इसलिए इस अभियोग के कारण, आप समाज के सम्मुख अपना मस्तक ऊँचा करके चल सकने में कदापि समर्थ न रह जाएँगी, तो यह आपका भ्रम है। और मुझे आश्चर्य है कि आप जैसी शिक्षित और सुसंस्कृत नारी को इस तरह की दुर्बलता और भावुकता का भाव ही मन में लाने का साहस कैसे हुआ?"

मेरा इतना कहना था कि श्रीमती विश्वास रक्खी हुई अपनी रिस्टवाच को कान पर लगाती हुई मुस्कराईं और बोलीं—"मैं समझती थी, यह बन्द हो गई है, लेकिन देखती हूँ कि यह मेरा भ्रम था। घड़ी चल रही है।"

अब मेरे मुँह से निकल गया—"हर घड़ी हमेशा चलती रहती है। जीवन की कोई घड़ी कभी बन्द नही होती और जब आप मृत्यु की घड़ी के चारों ओर परिक्रमा कर आई हैं, तो यह घडी जिसकी सुइयाँ आपके स्पर्श मात्र से नाचा करती है, कैसे बन्द हो सकती है !"

अब श्रीमती विश्वास अपनी कुर्सी से उठकर खड़ी हो गईं और बोलीं—"अच्छा, अब तुम भी सोओ।"

मैंने झट कह दिया—"और तुम ?"

वह बोली—"तुम नहीं जानते सतीश बाबू कि नीद तो मुझे कभी आई ही नही, यद्यपि रात सदा पलको पर झूलती रही है।"

मैं उनके कमरे से बाहर निकल ही रहा था कि मुझे कह देना पड़ा—"आपको नींद अब आने लगेगी, मगर शर्त यह है कि पलकों पर नींद बुलाने की चेष्टा आपको अवश्य करनी पड़ेगी।"

मेरा इतना कहना था कि श्रीमती विश्वास खिलखिला कर हँस पड़ीं।

मैं अब अपने शयन-कक्ष में था। लेटने से पूर्व मैंने ड्राअर खोला और उससे अपनी डायरी बाहर निकाल ली। आज के उन प्रभावों को जो मेरे मानस-पट पर स्थायीरूप से अङ्कित हो गए हैं, जब मैंने डायरी में लिपिबद्ध करने की चेष्टा की तो कलम रखते समय एक ओर तो मुझे ड्राअर के अन्दर मिल गया, भाई साहब का चश्मा, जिसको वे यहाँ भूल गए थे, दूसरी ओर मैंने सुना कि दरवाज़े पर 'कुट्ट ! कुट्ट ! कुट्ट !' तीन बार शब्द हुआ। मैंने उसी स्थान से पूछा—"कौन ?"

तब मेरे इस प्रश्न का उत्तर भाषा के रूप में न मिलकर संकेत में

मिला और पुनः शब्द हुआ—'खुट्ट! खुट्ट! खुट्ट!' तब सशंकित होकर मैंने जो दरवाज़ा खोला तो क्या देखता हूँ—श्रीमती विश्वास सामने खडी हैं। इस समय उनको नाइट-गाउन मे अपने यहाँ यकायक अप्रत्याशित रूप से देखकर सहमे स्वर से मैंने पूछा--"क्यो? क्या हुआ?"

श्रीमती विश्वास मेरे कमरे के खिले प्रकाश में अन्दर आकर निकट पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गईं और मुस्कुराती हुई बोलीं—"तुमने अभी कहा था कि अगर तुम स्वयं चेष्टा करो, तो तुम्हे नींद आ जायगी। सतीश बाबू, मैंने बहुत चेष्टा की, किन्तु मुझे नींद नहीं आई।"

तब अनायास मैंने कह दिया—"नीद आपको इसलिए नहीं आई कि आप अभी पूर्ण रूप से स्वस्थ नही हो पाई हैं।"

मेरे इस उत्तर को सुनकर श्रीमती विश्वास कुछ अप्रतिभ हो उठीं और झट कुर्सी से उठकर बिना कोई उत्तर दिए, अपने कमरे म चली गईं। जाते समय मैंने लक्ष किया कि एक शीतल निश्वास उनके नासिका-रध्रो से नि सृत होता जा रहा है; पहले कुछ धीरे-धीरे, फिर एक साथ वेग से।

अब पुनः कुर्सी पर बैठ कर मैंने अपनी डायरी मे जो वाक्य लिखा वह यह था :

जो व्यक्ति अपनी वासनाओं और इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं रख सकता, वह जीवन में कोई भी महान् कार्य करने में सफल नही हो सकता।

: २१ :

मैं चाय पी रहा था। पिछली रात की घटना मेरी आँखों के सामने थी। कमरे का पिछला दरवाजा बन्द था और अगला खुला हुआ था, जिस पर पीले रग की चिक पड़ी हुई थी। एक कोने में बिस्किट का एक टुकड़ा पडा हुआ था, जिसको बहुत इतमीनान से एक चुहिया कुतर-कुतर कर खा रही थी। उसके दोनों हाथो के बीच मे वह टुकडा था और चुहिया का मुँह कुछ जल्दी-जल्दी चल रहा था, जैसे सीनेवाली मशीन की सुई कपड़े पर चलती है, बिलकुल उसी तरह चुहिया का मुँह भी चलता जाता था।

इतने में चिक का पर्दा उठा और रामू ने गरम-गरम मूँग की पकौड़ियो की डिश मेरे सामने रख दी। मैंने उसमें से एक पकौड़ी मुँह के भीतर करते हुए पूछा—"मेम साहब क्या कर रही है?"

हाथ में लिए हुए तौलिए को बाँए कन्धे पर डालते हुए उसने उत्तर दिया—"अभी तो उनके कमरे का दरवाजा ही नहीं खुला।"

रामू की बात सुनकर मुझे कुछ विस्मय हुआ। मैंने पूछा—"सामने का दरवाजा अगर बन्द है, तो जाकर देखो पीछे का दरवाजा तो खुला है।"

रामू ने उत्तर दिया—"बहुत अच्छा।" और इतना कहकर वह बाहर चला गया। अभी वह भोजन शाला मे पहुँचा भी न होगा कि मेरे कमरे के पीछे के दरवाजे का किवाड़ बोल उठा और मैंने देखा—भीखू चला आ रहा है।

मैंने उससे पूछा—"मेम साहब उठीं या नहीं?" उसने उत्तर दिया—"अबै-अबै उठी है। आजु उनकै तबीयत कुछु गड़बड़ है।" मैंने पूछा—"क्या गड़बड़ है?—ज्वर आ गया है?—या नीद न आने के कारण सिर में दर्द है?"

भीखू के दाँत दिखाई पड़ने लगे और उसने एक क़दम आगे बढ़कर उत्तर दिया—"छोटेभइया, उनकै लीला न्यारी है ! कुछ पतै नही चलत ! हम बड़े-बड़े घरन की मेहरियन का दीख है, मुला इनका सुभाव आजु तक न जानि पावा । सूनी सूनी, उदास-उदास बनी रहै मा इनका न जानी कौनु मजा मिलत है ।"

मुझे भीखू की उस बात पर हँसी आरही थी, लेकिन जानबूझ कर मैंने उसे आगे बढ़ने से रोक लिया । हँसी को कभी कभी रोकना पड़ता ही है । विशेषरूप से वह हँसी, जिसका थोड़ा भी सम्बन्ध अपनी रुचियो और प्रवृत्तियों से हो । मैं समाज के किसी व्यक्ति को अकेला नहीं मानता, हर एक व्यक्ति अपने समाज से प्रभावित होता रहता है । उसका निजत्व समाज-व्यवस्था से अनुप्राणित होता है ।

कोई उत्तर न पाकर जब भीखू जाने लगा, तो मैंने उससे पूछा—"क्या तुम उनके कमरे के अन्दर गए थे ?"

उसने ठिठुकते हुए उत्तर दिया—"हाँ, विइ हमका बोलाइन रहै छोटे भइया ! उनका टूथ-पेस्ट चुकि गा रहै । फिर विइ आपका टूथ-पेस्ट माँगेनि रहै । जब हम उनका टूथ-पेस्ट दइ दीन, तब बहुत 'ना नू' करै के बादि हमका पैसा लेक पड़ा ।"

"और तुमने ले लिए ?—क्यो ?" मेरे इस कथन में कुछ जोर था । इसलिए भीखू सिटपिटा गया बोला—"छोटे भइया, आप हमते काहेक नाराज होति हौ । जब विइ बिगड़ उठीं कि तुमका पैसा लेक पड़ी, तब हम लाचार होइ गएन ।"

अब मैंने भीखू से कुछ नही कहा ।

इतने में मेरे दाएँ ओर के दरवाजे का पर्दा उठा और रामू ने आकर कह दिया—"मेम साहब ने कहलवाया है कि आज आपको खाना उन्हीं के यहाँ खाना पड़ेगा ।"

तब मैं कुछ विचार में पड़ गया । मैंने पूछा—"मेम साहब इस

समय कर क्या रही है ?"

उसने उत्तर दिया—"अब तो गुसलखाने मे है ।"

इतने में रामू तो मेरी टेबिल पर से चाय के बरतन उठा कर लेगया और मै कुछ सोचता हुआ कमरे में इधर-उधर टहलने लगा ।

मेरे मस्तिष्क में रात की बातो के प्रभाव नाच रहे थे और बार-बार मै यह सोच-सोच कर गौरव का अनुभव कर रहा था कि गलतियाँ तो मुझमे होती है, लेकिन उनसे बहुत ही सफाई के साथ बचकर निकल जाता हूँ !

यहाँ यह सवाल उठाना बिलकुल स्वाभाविक है कि गलतियो से बच कर निकल जानेवाला व्यक्ति गलतियाँ करता ही क्यों है ? मेरे मन के भीतर से कोई बोल उठा—"मनुष्य हर क्षण जो कार्य करता है, वह अगर सही होता है, तो गलत भी तो होता है । सही का मुख अगर उज्ज्वल रहता है, तो उसके सिर का पिछला भाग अवश्य काला रहता है । हमारी आकृतियाँ अगर अपना नाम 'सही' पाती है, तो हमारे पृष्ठ भाग अगर 'गलत' नाम से पुकारे जाते है, तो इसमें हमारा क्या दोष है ? दोष तो पुकारनेवालो का है, समाज का है, जगत् का है, मेरा—निज का, अपना, कहीं, कोई दोष नही है ।

मुझे अपने इस विचार में आज कोई त्रुटि नहीं जान पडती । इसलिए मैंने सोचा कि क्यों न मै इस विचार को अपनी डायरी का सुबह का नाश्ता बना दूँ और इतना सोचते ही मै डायरी लिखने लगा ।

उस समय जब मैंने क़लम उठाई तो सबसे पहले मेरे मन में एक और इच्छा उत्पन्न हुई कि आज मै श्रीमती विश्वास के यहाँ बिना बुलाए तो जाऊँगा ही नही ! मुझे अब अपना काम करना है और अपने को देखना है । मै लगभग आध घण्टे तक अपना यह विचार डायरी के पन्नों में उँडेलता और सँवारता रहा । इतने में भीखू ने आकर एक पत्र मेरे सामने रख दिया और यह पत्र एक लम्बे लिफाफे में था और था भइया

का। उसमें लिखा था :

प्यारे सतीश,

जियो, जागो ! मैने तुमको, पिछले पत्र मे, लिखा था कि अब तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है। इसलिए फ़ौरन चले आओ। मगर तुमने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। आज मै तुमको एक पेपर की एक कटिंग भेज रहा हूँ और इस विषय मे कुछ न लिखकर इसका उत्तर चाहता हूँ।

मुन्ना अच्छी तरह है। मगर तुम्हारी भाभी को बड़े जोर का 'इन्फ्लयुइन्ज़ा' हो गया है। बस.

तुम्हारा,
भइया गिरीश

इस पत्र को देखकर मै चिन्ता में पड गया। अब मैने साथ की कटिंग जो देखी, उसको पढकर मै स्तब्ध हो उठा। क्योंकि उसमें लिखा हुआ था :

"आज का युग वाद और सिद्धान्त का नही है। अब तो वह प्रयोग और व्यवहार का हो गया है। जो अध्यापक और विचारक मनोविज्ञान का अध्ययन बडे-बडे ग्रन्थो से करते है, वे बहुत दकियानूसी और पिछड़े हुए है। मनोविज्ञान के अध्ययन की नई प्रणाली का इधर एक बड़ा सुन्दर आविष्कार हुआ है। और वह यह कि स्वास्थ्य-सम्पादन और सैर-सपाटे के बहाने किसी मनचाही जगह पर चले जाओ और मनचाही प्रेरणाओं का प्रत्यक्ष और व्यावहारिक ज्ञान ही नही, अनुभव भी प्राप्त करो। सरलतापूर्वक जो रमणी अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिए तत्पर न हो, उसके साथ खूब घुलमिल कर रहो। एक मास, दो मास, चार मास···वर्ष ··दो वर्ष···चार, छै. वर्ष ! उसके मन को उठाओ, खीचो और पत्थर की शिला पर ऐसे पटको जैसे धोबी कपडों को भीचता और पटकता है। धोबी तो कपडो की रक्षा का ध्यान भी थोडा बहुत रखता है, पर आपको अधिकार है कि उठा-पटक कर

श्राप उसके मन की धज्जियाँ उडा दें ! उसे चीर डालें श्रौर चाहें तो सर्वथा नष्ट ही कर दें ! इस प्रकार का एक प्रयोग स्थानीय डिग्री कॉलेज के एक प्राध्यापक आजकल मसूरी में कर रहे है। उनका नाम बहुत बड़ा है। वह सत्य के अन्वेषक ही नहीं, उसके विधाता हैं। और इधर हाल ही में अपने एक प्रयोग मे उनको बडी सफलता मिली है। कानों में कोई कह रहा है कि वे अपनी एक प्रेयसी को लेकर शीघ ही स्विटजर-लैण्ड को प्रस्थान करने जा रहे हैं। ऐसी अनुपम सफलता के लिए वह इस नगर के बुद्धिजीवी वर्ग की हार्दिक बधाइयों के पात्र हैं।

—एक प्रत्यक्षदर्शी

डायरी का आधा पृष्ठ समाप्त हुआ ही था कि भीखू आ पहुँचा और बोला—"मेमसाहब आपकै यादि कै रही हैं ?"

मैं अब ज्योही उनके यहा पहुँचा, त्योही यह देखकर दंग रह गया कि वहाँ प्रफुल्लबाबू जमे हुए हैं। यकायक मेरे मुँह से निकल गया—"क्या अभी-अभी आ रहे हैं ?"

वे उत्तर में जरा भी अस्थिर न होकर बोल उठे—"नही, मैं रात को भी यही था।"

मुझे ऐसा जान पडा जैसे मैं सचमुच किसी दूसरे लोक मे जा पहुँचा हूँ।

: २२ :

मै जब घर पहुँचा, तब प्रकाश—मुन्ना—घोडे की मुँहवाली साइकिल चला रहा था। भाभी मशीन पर बैठी हुई ब्लाउज़ पर बखिया कर रही थी। नौकरानी धोती में साबुन लगा रही थी और भाई साहब बैठक में हिसाब-किताब देख रहे थे। मै जैसे ही सहन में पहुँचा, मुन्ना ने साइकिल पर चढ़े-चढ़े शोर मचाना शुरू किया—"चाचा जी आ गए, चाचा जी आ गए।" साइकिल छोड कर वह मेरे पैरो से लिपट गया। मै उसको कमरे में ले गया और कई नए किस्म के खिलौने जो मने उसको दिखलाए, तो वह वही उछलने लगा। इतने में भाभी आ पहुँचीं। मुन्ना बोला—"सडक खाली करो, मोटर आ रही है। मोटर चलेगी, ये चली, ये चली।" और उसने मोटर में चाभी भरकर छोड दी। मोटर सहन के उत्तर से चली और दक्षिण मे पडी हुई चटाई पर जहाँ गेहूँ सूख रहे थे, चढ़ गई।

भाभी के चरण-स्पर्श कर मैंने पूछा—"कहो भाभी, सब आनन्द है न ?"

उन्होने बतलाया—"और तो सब ठीक है, लेकिन मुनीम जी बहुत बीमार हे। उनके बचने की बहुत कम आशा है।"

मैंने पूछा—"बीमार क्या है ?"

उन्होंने बतलाया—"लज्जा के कारण वह किसी से मिलते-जुलते नहीं है। उस दिन से बाहर नही निकले। उठ-बैठ नही सकते। शरीर भर में सूजन आ गई है। उन्होने कोई औषध ऐसी खा ली है, जिससे उनका बदन भर सूज गया है। जहाँ अधिक सूजन है, वहाँ अँगुली गढ़ाने से गड्ढा पड जाता है और फिर अँगुली निकाल लेने से तुरन्त भरता नहीं।"

मैंने पूछा—"दवा किसकी चल रही है ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"डॉक्टर रघुबीर की" और यह भी कहने लगीं—"उनकी बीमारी तो लज्जा की है। आत्मग्लानि उनको इतनी अधिक है कि अब तक वे जीवित है, यही आश्चर्य की बात है।"

मैंने पूछा—"गबन के रुपयों का क्या हुआ ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"उनके चिरजीव जमानत पर छूटे हुए हैं। रुपया उन्होंने कही गायब कर दिया है, लेकिन मुनीम जी ने अपना मकान गिरवी रख दिया है।"

मैंने पूछा—"किसके पास ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"मेरे पास। दस्तावेज़ की रजिस्ट्री हो गई है।"

मेरे मुँह से निकल गया—"चलो यह बहुत अच्छा हुआ।"

तब वे बोलीं—"मकान गिरवी रखकर जब उन्होने गबन का रुपया चुकता कर दिया, तब उनके चिरंजीव के ऊपर जो ग़बन का मुकद्दमा है, वह भी तो हमको कायदे से उठा लेना चाहिए। पर तुम्हारे भइया का यह कहना है कि दण्ड तो अपराधी को हर हालत में मिलना ही चाहिए। इसलिए उन्होंने कहा है कि जब उसको दण्ड मिल जायगा और वह जेल चला जायगा, तब मैं मकान का वह रेहननामा मुनीम जी की धर्मपत्नी को वापस कर दूँगा। रेहननामा तो हमने अमानत के रूप मे रख लिया है। वह तो तराज़ू का एक पल्ला मात्र है। दूसरा पल्ला उनके सुपुत्र के दण्ड का है। दण्ड भोग लीजिए तो रेहननामा वापस, न भोगिए, अपने भाग्य से छूट जाइए, तो रेहननामा तो अपना है ही। ··बस, मुनीम जी की बीमारी तुम्हारे भइया के इसी निश्चय का एक रूपमात्र है।"

इतने में एक बिल्ला और बिल्ली गुर्राती और लड़ती हुई बगल में आ पहुँची। बिल्ला अन्त में भाग खड़ा हुआ। बिल्ली भी उसके पीछे दौड़ती हुई चली गई। मैंने कहा—"बिल्ला तो मैंने इसके पहले

करने के बाद भी उसके मन में तुम्हारे प्रति प्यार की जो भावना रहेगी, मैं पूछता हूँ क्या वह ज्यों-की-त्यों हो गई ? उसके मन में सदा के लिए एक भय नहीं बैठ जायगा ? एक आशङ्का नहीं जम जायगी कि मौका पड़ने पर यह मेरा अपमान फिर इसी तरह कर सकता है। भगवान् के राज्य में ऐसा कोई विधान नहीं है कि किसी आदमी की हत्या कर डालने पर अगर वह लाख, दो लाख रुपए अदालतबाजी में फूँककर बच भी जाय, तो हत्या के अपराध से उसको मुक्ति मिल जायगी ! हत्या सदा हत्या रहेगी और ग़बन हमेशा गबन रहेगा !"

भइया का उत्तर सुनकर मैं स्तब्ध हो उठा और तुरन्त तो कुछ न कह सका, किन्तु थोड़ी ही देर बाद मेरे मुँह से निकल गया—"आपका विचार ठीक ही है भइया ! मुझको अभी आपके चरणों के निकट बैठकर बहुत कुछ सीखना है।"

भोजन करने के बाद मैं जब बाहर आया तब बैठक में जो महाशय मिले, वे इलाहाबाद से आए थे और एक पत्र के उपसम्पादक थे। उनका पत्र बन्द हो चुका था और माफीनामे का एक ड्राफ्ट उनके हाथ में था। उन्होंने पूछा—"गिरीश बाबू कहाँ है ?"

मैंने उत्तर दिया—"अभी आ रहे हैं।"

अब भइया के तर्क से प्रभावित होकर मेरा मन कह रहा था, यदि इस पत्र-सम्पादक को भी वह क्षमा न करें, तो कितना उत्तम हो। भइया कमरे से बाहर आ रहे थे और मैं हंस रहा था।

: २३ :

अग्नि···अनुभूति की अग्नि, पार्थक्य की अग्नि, वियोग की अग्नि और अग्नि स्वय··! आँच लग रही है, शरीर झुलस रहा है, मनप्राण विकल है, चेतना मूर्छित है! कैसा है यह क्षीरफेन, कैसा है यह उद्वेलन और है कैसा यह द्वन्द्व!

नीचे की गली से जाता हुआ एक व्यक्ति बड़ी मस्ती और अदा के साथ गा रहा है :

ज़माना रंग बदलता है,
रोज़ सबेरे दिन चढ़ता है, शाम को ढलता है!
ज़माना रग बदलता है!

ये पंक्तियाँ निश्चय ही मेरी आज की परिस्थियों से कुछ कहती-सी जान पड़ती है 'किन्तु क्यों सतीश, एक लम्बे अरसे से जो तू इस प्रकार एक कोमल भावना को अपने दिव्य आदर्श, अपने प्रभावोद्भूत चरित्रबल और अपने ज्ञान के उज्ज्वल धवल आलोक से पदाक्रान्त, पददलित, चूर्णविचूर्ण करने की कला का प्रदर्शन कर रहा है, वह कला अब कहाँ चली गई, कहाँ विलुप्त हो गई?'—अन्दर से भी, कभी-कभी कोई मुझसे प्रश्न करता है, इसका अनुभव अब मैं विशेषरूप से करने लगा हूँ।

'ओह! कितना शिथिल है तू सतीश—तृणवत!—मानव सतीश! तेरे पैर कम्पित हो रहे हैं, तेरी गति शिथिल है और पराजय को तेरा हृदय—अहंकार—अपनी विजय समझ बैठा है।'

'धिक्कार! छि छिः!'—मैंने देखा कि दीवार पर यह शब्द बनते और मिटते जा रहे है, किन्तु बड़ी शीघ्रता के साथ।

अनेक ध्वनियाँ—'तू अब यहाँ नहीं रह सकता, नहीं रह सकता··· क्योंकि तू वास्तव में यहाँ है ही नहीं! तू तो वस्तुतः वहाँ है और वहीं

से बोल रहा है।'

मेरा सम्पूर्ण शरीर स्वेद से भीग गया। सर फटने लगा। रोमाच हो उठा। जी में आया—'चलो, निकलो, निकलो यहाँ से सतीश, अब तुम यहाँ कैसे रह सकते हो…कैसे ?'

कुछ क्षण तक ज्वालामुखी का रौद्ररूप लिए, पराजय की गहरी कालिमा लिए, हृदयविदारक आकाश की गडगडाहट लिए मै अपने मकान के ऊपरी कमरे में चंचल मन, अस्थिर गति टहलता रहा।… मकान जिसमें भाभी इस समय स्नान कर रही है, मकान जिसमें भाई साहब बैठे ईश्वर की आराधना में लीन है…मकान जिसकी बैठक में कभी मुनीम जी बैठा करते थे, हिसाब-किताब की बहियाँ, लाखो रुपए के लेन-देन तक जिनका नियंत्रण था।… मकान, जिसके हरेक प्राणी पर उनके स्नेह का बलिष्ट हाथ था, जिसकी सम्पूर्ण श्री-समृद्धि पर उनके कर्म जीवन के लम्बे-लम्बे हाथो की छाया थी। ऐसा जान पडता है कि वह सेनानी अपना सहयोग छोड बैठा है। मृत्यु-शैया पर पडा हुआ वह कराह रहा है।…केवल एक कर्तव्य का वशीरव कभी-कभी भाई साहब के कथनो से गूँज उठता है। भइया न्याय, धर्म, सत्य, दया और ममता आदि की साकार मूर्ति ! सब काम मे लगे है। सब अपने मार्ग से जा रहे है। मै भी अब कॉलेज जाने लगा हूँ। मनुष्य अपने-अपने कर्म से बँधा हुआ है, किन्तु उसकी कुछ इच्छाएँ है, वासनाएँ है, स्वार्थ है और महत्वाकांक्षाएँ है, जो उसके नैतिक कर्म और धर्म का अनुशासन नहीं चाहती, हस्तक्षेप और नियमन नहीं चाहतीं। मै भी नियमन नहीं चाहता। मेरा मन यहाँ है ही नहीं। मै तो खो गया हूँ ! मेरे सामने कोई निश्चित कार्यक्रम ही नहीं है। भाई साहब अब विवाह की चर्चा भी नही करते कभी ! क्या वह भीतर कुछ टटोलते रहते है ? क्या उन्होने मेरा कुछ मनोभाव समझ लिया है कि ये जो दो प्रकार के वक्तव्य समाचार-पत्रों में आए है, क्या उनके भीतर बैठकर उन्होंने मेरा

नग्नरूप देख लिया है ?—नहीं देख लिया है, तो वे विवाह के सम्बन्ध में क्यों चुप हे ?

मैं आज कई दिन से श्रीमती विश्वास के पत्र की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मेरे मन में कभी प्रफुल्लबाबू भी बोलते हैं। मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि वे मुझसे कुछ छिपा रहे है, लेकिन यहीं मैं ग़लती कर रहा हूँ। उस दिन जब मैंने पूछा था—"अरे, आप कब आ गए ?" तो उन्होंने मुझसे कुछ छिपाया नहीं! बिना कुछ सोचे, संकोच किए, चट से कह दिया था—"नहीं, मैं रात को भी यहीं था।" तो उनके कथन में कितनी स्पष्टता थी, कितनी सचाई थी ? लेकिन मुझे आज कुछ ऐसा अनुभव हो रहा है कि इस संसार में मेरे लिए कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं है!

क्या मैं अब भी ग़लती कर रहा हूँ जबकि इस परिणाम पर पहुँच रहा हूँ कि मेरे लिए कुछ भी नहीं है। जब कि श्रीमती विश्वास ने कहा था—"सतीश बाबू, मुझे नींद नहीं आ रही है।" यह एक ऐसा अवसर था जब मेरे लिए संसार में कुछ था, थोड़ा-सा था, कुछ-कुछ था, सम्पूर्ण नहीं था, सम्पूर्ण से कुछ कम था, कदाचित बहुत कम था, लेकिन ऐसा तो नहीं था, कि बिलकुल नहीं था। तब, मैं ऐसा क्यो सोच रहा हूँ कि मेरे लिए इस संसार में कुछ भी नहीं है।

श्रीमती विश्वास, मैं तुमको निष्कपट, निश्छल, बहुत भोली, बहुत सुकुमार, कोमलतम नारी मानता था, किन्तु तुमने अपना जो परिचय दिया है, वह बहुत घृणित है, बहुत ही गिरा हुआ है! तुमने उस दिन रात को मेरे शयनकक्ष से निराश, निराश, लौट आकर निश्चयपूर्वक प्रफुल्लबाबू को फ़ोन किया होगा और प्रफुल्लबाबू, तुम मेरी दृष्टि में अपनी पहली भेंट में जितने ऊँचे उठ गए थे, उसके बाद उस दूसरी भेंट में मैंने जो तुम्हारा कुद्रूप देखा, उसमें तुम बहुत गिर गए। विलम्ब न एक क्षण का श्रीमती विश्वास ने किया और न तुमने किया।

तुम दोनों बहुत बुद्धिवादी बनते थे। तुम्हारी डीगें और घोषणाएँ बड़ी-बडी लम्बी और चौड़ी थी, किन्तु तुम तो एक साधारण मानव से भी गिर गए! धैर्य नाम की वस्तु ही तुम में से किसी में नही रह गई। किसी ने भी यह नहीं सोचा कि हमारे बीच मे एक और प्राणी है। प्रफुल्लबाबू, तुमने जो नही सोचा वह तो स्वाभाविक ही था; क्योंकि स्पष्ट है, कि तुम्हारे साथ श्रीमती विश्वास के कुछ पूर्व सम्बन्ध भी रहे होंगे! किसी बात पर एक मत न होने के कारण आपस में खटक गई होगी और इसलिए तुमने उनके यहाँ आना-जाना त्याग दिया होगा। किन्तु श्रीमती विश्वास, तुम? मै तुमको बिलकुल पशु समझता हूँ! मुझे तुम्हारे इस रूप पर दया आती है। तुमने वह जो किराया हमसे नहीं लिया था और कम्बल वगैरह जो नौकरों को बाँटे थे, वह सब तो मुझ को दिखलाने भर के लिए था। क्योंकि प्रदर्शन के बिना तुम और तुम्हारा सारा वर्ग एक क्षण भी टिक नहीं सकता! तो तुम संस्कृति सभ्यता और प्रेम के नाम पर, मनुष्य को खींचने और उसकी आत्मा का रस चूसने का व्यवसाय करती हो! क्षण भर मे ही 'अ' के बाद 'ब' पर उस मक्खी की तरह टूटती हो, जिसके पंख नाना प्रकार के घृणित और दुर्गन्धमय रस, मवाद, पंक, रक्त और मल-मूत्र में सने रहते हैं। तुम्हारे पास उस रूप और संस्कृति का प्रलोभन है, जो वंशी की तरह मछली को फाँस लेती है। तुम्हारे पास वह महीन, बारीक रेशमी जाल है, जिसमें कोई भी मक्खी आकर फँस ही जाती है! तो तुम मकड़ी हो, तुम वेश्या हो, नागिन हो, और तुम इतनी तुच्छ हो, इतनी पतित हो, कि तुम्हारा स्मरण-मात्र मुझे नारकीय मालूम पड़ता है!—और तुम्हारा वह आदर्श भी कितना निकम्मा, खोखला और कपट-जाल से भरा हुआ है! यह दो-दो नावो पर पैर रखकर खड़े खड़े चलना, यह दो-दो, तीन-तीन व्यक्तियों को लोभ दे-देकर, फाँस-फाँस कर, रखना कितना व्यावसायिक है? प्रफुल्ल आज अगर मर जाय, तो लाखों की

सम्पत्ति तम्हारे हाथ अनायास लग जायगी। और तुम जो विमल विश्वास के साथ न रहकर शैल-शृंग पर क्रीड़ा और कौतुक का जीवन बिताती हो, यह सब भी कितना कृत्रिम और अन्त में कितना विषाक्त है ?

ऐसी दशा में मुझे अब क्या करना चाहिए ? अब रात के बारह बजे हैं। भइया, भाभी सो रहे हैं। बगल में मुन्ना भी सो रहा है। आज भीखू बेचारा बहुत थक गया है और रामलाल की तो अँगुली ही कटते-कटते बची थी—साग बनाते हुए। उसकी वे रक्त की बूँदे ! मैंने ही तो पट्टी बाँधी थी ! भाभी ने तुरन्त रूमाल दे दिया था। हाँ, गगन पर बिजली की बत्तियाँ छाई हुई हैं। बडी-बडी चिमनियाँ, क्लाक-टावर, मस्जिदों के कँगूरे, छायाचित्र बनकर आँखो में अपनी मुद्रा सदा के लिए स्थापित कर देना चाहते हैं। ट्रेन कोई शंटिंग कर रही है : माल-गाडी के डब्बे एक दूसरे से भिड रहे हैं, ऐंजिन अपनी नाक से बोल रहा है, सडक पर आती हुई कार हार्न दे रही है। कहीं किसी मकान से ग्रामोफोन रिकार्ड—का स्वर 'कैसे जादू किया, मुझको इतना बता, जादूगर बालमा !· जादूगर·· बा·· ल· मा !!' यह स्वर इस रिकार्ड में जिसका है, उसके अन्तर का नही है। उसके प्राण का नही है, विशेष रूप से यह जादूगर शब्द तो ऐसा जान पड़ता है कि किसी अंकुर का नही है, कली का भी नहीं है, उस पुष्प का है, जिसकी पहली पंखुड़ी अभी गिरी है। मगर प्रफुल्लबाबू, उस दिन तुमने जो जादू किया, वह जादू भी किसी व्यक्ति का नही था, आदमी का नहीं था, कीड़े का था और वह जादू भी चूँकि श्रीमती विश्वास के आह्वान से आया था, पुकार से आया था इसलिए श्रीमती विश्वास भी नारी नहीं थीं। ममतामयी नारी, आत्मा नही थी। साधना की जननी, वह भी एक कीड़ा थी, क्षुद्र ! ऐसे कीड़े जो बिजली के प्रकाश के इर्द-गिर्द नित्य सहस्त्रों और लाखों की संख्या में उतरते ही रहते है !—मौत के

घाट !

डायरी समाप्त हो चुकी है । अब मैं भी सोने जा रहा हूँ । बत्ती आॅफ़ कर दी है और करवट बदल ली है । दो काले-काले छायाचित्र मेरे सामने हैं । एक कहता है—'हटो, मुझे नींद आ रही है ।'

दूसरा कहता है—'हट जाओ, मेरे सामने से, निकल जाओ, मेरे कमरे से ! कभी मत आना इधर······'जाओ, जाओ······नहीं तो गोली मार दूँगी······'

इतने में अलमारी के ऊपर से कूदती हुई बिल्ली मेरे पास से निकल गई और मैं सोचने लगा—गोली छूट गई !

और मैं हँस पड़ा !

: २४ :

सुबह हुई—सोने की। भगवान् करे ऐसी सुबह सब की हो। आज आठ नहीं बजे होंगे कि भइया का पूजन समाप्त हो गया और चाय के समय उन्होंने टोस्ट के छिद्रों में मक्खन खूब अच्छी तरह भरकर और ऊपर भी एक दोहरी पर्त देकर टोस्ट मेरे सामने बढा दिया। स्वयं अपने टोस्ट को दाँत से काटते और मुँह चलाते हुए बोल उठे—"खाओ न, मैंने तुम्हारे ही लिए बनाया है।" भाभी सामने थीं। मैंने उस टोस्ट को चाकू से बीच से काट कर उसका एक टुकड़ा उनको दे दिया और दूसरा मैंने स्वयं ले लिया। मुन्ना बिस्किट खा रहा था, लेकिन—सूखा! मैंने उसकी नोक पर भी मक्खन का एक टुकडा रख दिया और उसको मुन्ना के मुँह मे देते हुए ज्यो ही मै अपने टोस्ट को उठाकर खाने लगा, त्योही भाभी बोली—"आज जब मै सुबह उठी थी, तो मुझे नकुल ने दर्शन दिया था। अवश्य ही आज कोई ऐसा समाचार मिलेगा जो हमारे परिवार में प्रसन्नता की वृद्धि करेगा।"

भइया कुछ मुस्कराए और बोले—"आज श्रीमती विश्वास का ही कोई समाचार मिलेगा।"

मै ऐसे अवसर पर भइया से आँख मिलाते हुए सदा संकुचित हो उठता था। आज भी मै कुर्सी से उठ कर, घूमकर इधर-उधर देखने लगा।

भइया ने पूछा—"क्यों, क्या हुआ ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"मुझे ऐसा जान पड़ता है कि कोई कीडा अभी मेरे सिर पर रेंग रहा था।"

भाभी बोल उठीं—"जमीन में तो नहीं गिरना चाहिए था।"

भइया ने कह दिया—"हाँ, जमीन में गिरना तो बिलकुल बेकार है। कान पर रेंगने लगता, तो कोई बात भी थी।"

भाभी इस पर हँस पडी। मैं और अधिक संकुचित हो उठा। इतने में मुझे ऐसा जान पडा कि वराण्डे में पोस्टमैन खडा है। इतने ही में चिक का परदा उठा और सचमुच पोस्टमैन ने आकर भइया से कहा—"आपके नाम एक रजिस्ट्री है।"

भइया ने रजिस्ट्री ले ली और रसीद पर हस्ताक्षर कर दिए। इतने में मुन्ना मेरे पास से हटकर भइया के पास चला गया और भइया ने चाय का घूँट 'सिप' करते हुए रजिस्ट्री वाला लिफाफा मुन्ना को दे दिया और साथ ही यह भी कह दिया—"खोलो, तुम देखने आए थे कि इसके अन्दर क्या है, इसलिए खोलो!"

मुन्ना ने लिफाफा एक बार उलटा-पलटा और कह दिया—"यह तो बन्द है। कैंची के बिना नहीं खुलेगा।"

मैनें अब कह दिया—"तो फिर घन्टी वाली इस बटन को अँगुली से दबाओ। इसकी घन्टी भोजनशाला में है। जब तुम इसको दबाओगे, तब घन्टी वहाँ बजेगी, फिर भीखू आ जायगा। तब तुम उससे कैंची मँगवा कर यह लिफाफा खोलना।"

मुन्ना बोला—"इस बटन पर···?"

मैंने कहा—"हाँ, दबाओ इसको।"

और मुन्ना ने बटन दबा दिया। दो मिनट बाद भाभी ने लिफ़ाफ़ा भी खोला, तो क्या देखता हूँ कि सबके नाम श्रीमती विश्वास की अलग-अलग चिट्ठियाँ हैं! एक बिल्टी है।

भइया ने बिल्टी फ़ौरन भीखू को दे दी और कह दिया—"जाओ, छुड़ा लाओ।" थोड़ी देर बाद जब पार्सल खोला गया तो उसमें कई चीज़ें निकलीं। श्रीमती विश्वास ने ताज़े, किन्तु ग्राइप फ्रूट्स भेजे हैं! साथ में मुन्ना के खेलने के लिए कुछ बुद्धिवर्द्धक 'गेम्स' हैं। एक नए प्रकार के 'कार्ड्स' हैं, जिनमें चार व्यक्तियों की सेनाओं के चीफ कमाण्डर अपने सहायक उच्चाधिकारियों के साथ हैं। सभी ताशों के

इक्कों पर बापू की तस्वीरें बनी है, जिसके नीचे लिखा हुआ है—'एकता ने स्वतंत्रता दी।' दूसरा इक्का पटेल का है, जिसमे उनके चित्र के नीचे लिखा हुआ है—'मैंने कोई कार्य असमय पर नहीं किया।' तीसरा इक्का पंडित नेहरू का है, जिसमें उनकी तस्वीर के नीचे लिखा हुआ है—'राष्ट्र के नवनिर्माण के अवसर पर आराम हराम है।' चौथा इक्का सुभाषबाबू का हे, जिसके नीचे लिखा हुआ है—'मैंने अपने महान् उद्देश्य को ही सदा अपने सामने रक्खा ! —और प्रतिक्रियाओ के हाथ उसको कभी बेचा नही !'

भाईसाहब ने जब ये कार्ड्स देखे, तो वे उछल पड़े। बोले—"वाह आज श्रीमती विश्वास ने तबीयत खुश कर दी !"

भइया जब इस प्रकार अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे, तब मैं अपने कमरे में बैठा हुआ श्रीमती विश्वास का पत्र दुबारा पढ़ रहा था। उसमें लिखा हुआ था—

प्रिय सतीश,

तुम यहाँ से कुछ प्रतिक्रिया लेकर गए हो, यह मै जानती हूँ। किन्तु तुमको थोड़ा भ्रम हो गया है। प्रफुल्लबाबू को रात में मैंने स्वयं नहीं बुलाया था, वे अपने मन से मेरे यहाँ उस समय आ गए थे। वे सिनेमा देखकर लौटे थे और बुरी तरह से 'डाउन' थे। मैंने जब उनको उस दशा में देखा, तो तुरन्त उसी कमरे में सुला दिया, जिसमें विमल विश्वास ठहरा हुआ था। मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया था। 'एक भले आदमी की तरह जीवन बिताइए। खाना न खाया हो तो मै अभी उसका प्रबन्ध करदूँ।' वे बोले—'मै यहाँ तुम्हारा लेक्चर सुनने के लिए नहीं आया हूँ।' तब मैंने उत्तर दिया—'तो आप चुपचाप सो जाइए।' वे बोले—'तुम्हारे यहाँ ह्विस्की तो होगी, थोड़ी और लेना चाहता हूँ।' मैने उत्तर दिया—'इधर आइए' और मैंने अलमारी खोल दी और कह दिया—"बोतलें जरूर रक्खी हे, फिकवाई नहीं है। सब खाली पड़ी है। एक

बूँद उनमें से किसी में अब बाकी नहीं है। मैं अब अपने जीवन के साथ पतन का कोई सौदा नहीं करना चाहती। वासना, भूख, भोग और विलास मैंने त्याग दिया है। मैं प्रत्येक क्षण यह अनुभव कर रही हूँ कि मृत्यु मुझे याद कर रही है और हँस रही है। मैं जीवन चाहती हूँ और उस जीवन को बहुत कुछ और महान् बनाना चाहती हूँ। मैंने भूख को, तृष्णा और वासना को मसल कर, पीस कर, नष्ट कर डाला है। आप मुझसे कोई ऐसी आशा न करें, जो मेरे इस उद्देश्य के मार्ग में बाधा बन सके। जाइए, आप सो जाइए।' उन्होंने एक बोतल उठाई। हो सकता है, उत्तेजनावश वे उस बोतल को मेरे सिर पर दे मारते। इस-लिए मैंने आवेश में आकर बोतल उनके हाथ से छीन ली। तुम जानते हो प्रमाद में पड़कर मनुष्य की शक्ति मर जाती है। मैंने तुरन्त वह बोतल वराण्डे में खडे होकर बाहर फेंक दी वह बाउन्ड्री से जाकर टकराई और वहीं चूर-चूर होकर गिर पडी। उन्होंने कहा—'अच्छी बात है, मै समझा। अब तुमको मजबूर नही करूँगा।' वे अब सचमुच सँभल गए और निकट आकर बिलकुल मेरे कन्धे से लगकर बोले—'तुम्हारे इन कोमल हाथो मे अगर मेरे लिए अमृत नही है, तो विष तो है? तुम अब मुझे वह विष ही पिला दो, तो मै जी जाऊँ!' मैंने उत्तर दिया—'तुम होश में नहीं हो, इसलिए मैं तुमको इसका उत्तर न दूँगी। मेरे जीवन में अब विष नाम की कोई वस्तु नहीं रह गई। तुमको मालूम होना चाहिए कि अब मेरे शरीर में उस नारी का रक्त है, जो आज के इस युग में भी सीता के समान पवित्र एक महान् आत्मा है। उसमें अमृत-ही-अमृत भर गया है, छा गया है। तुम मुझको गलत मत समझो। मैं अब जीवन भर कोई ऐसा कार्य न करूँगी, जिससे मातेश्वरी सीता का रक्त, उसकी पवित्रता को आँच आए। तुम अब मेरे प्रेमी नहीं हो, मेरे एक बन्धु के समान हो। मैं तुमको प्यार दे सकती हूँ, किन्तु वह प्रेमी का नहीं, उस बहन का है, जिसकी लाज और

मर्यादा की रक्षा करना तुम्हारा पावन धर्म हो गया है। जाओ, चुपचाप जाकर सो जाओ। सबेरे जब उठोगे, तुम्हारा मस्तिष्क निर्मल होगा; चेतन होगा, तब तुम अनुभव करोगे कि रात के एक बजे जिस नारी से मेरी बातें हुई थी, वह श्रीमती विश्वास नहीं बहन विश्वास थी।'

मेरा इतना कहना था कि प्रफुल्लबाबू की आँखो मे आँसू भर आए और उनके मुख से निकल गया—'मुझे क्षमा करो, मुझे क्षमा करो।' और उसके बाद प्रफुल्लबाबू फूट-फूट कर रो पड़े। वही फर्श पर लेट गए, करवटे बदल-बदल कर वे रोते रहे। मैंने तुरन्त अपनी साड़ी से उनके आँसू पोछे और उनको समझाया—'बापू की याद करो, राष्ट्र-पिता का स्मरण करो, भगवान् तुमको शान्ति, धैर्य और ज्ञान देगा।'

इसके बाद प्रातःकाल हुआ और उठते ही वे चुपचाप जाने लगे। मैंने उनके लिए टैक्सी मँगवा दी। गेट तक मै उनको भेज आई। दिन बीता, सायंकाल उनका फ़ोन आया और उन्होंने कहा—'मै यहाँ से बम्बई जा रहा हूँ, वहाँ दो-चार दिन रह कर स्विट्ज़रलैंड चला जाऊँगा। तुम्हारे केस को लड़ने के लिए मैंने बहुत उत्तम प्रबन्ध कर दिया है। तुम यह न समझना कि मै तुमको मँझधार मे छोड़ जा रहा हूँ। तुम और कोई प्रतिक्रिया भी अपने मन में न लाना।'

मै आज यहाँ अपने अपने को सर्वथा अकेला अनुभव करती हूँ। बार-बार मेरे मन में एक बात आ रही है। क्यों न मै विमल विश्वास पर से मान-हानि का दावा उठा लूँ। क्यों न मै पुलिस को अपने पक्ष में करके विमल विश्वास को दण्ड से मुक्त करवा दूँ। मुझे रात-दिन अशांत रहकर अब जीवन नही बिताना है। मैंने अपने कार्य की एक योजना बनाई है। और मै एक आश्रमवासिनी तपस्विनी का-सा जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ। नैतिक शिक्षण की एक पाठशाला मेरे यहाँ लगने लगी है। अभी तो केवल दो घण्टे का कार्यक्रम है। तुम जब

यहाँ आओगे, तो एक नई दुनिया पाओगे। तुम यह जानकर दुखी न होना कि इस कार्यक्रम के द्वारा मैं जीवन से किसी प्रकार की विरक्ति मोल ले रही हूँ। जीवन के साथ मेरा वैराग्य कभी नहीं होगा। बच्चों में रहकर इनके साथ हँस-खेल कर मैं बहुत सुख, शांति के साथ रह सकूँगी। एक-एक क्षण को मैं सदुपयोग के रूप में बिताऊँगी। घी, दूध, मक्खन, टोस्ट आदि वस्तुएँ मैंने त्याग दी हैं। मूँग की दाल, दलिया और कुछ 'ताजे फ्रूट्स' ले रही हूँ। गीता का पाठ आरम्भ कर दिया है। मैं सोचती हूँ कि इस प्रकार रह कर मैं तुम्हारे आदर्श के अधिक निकट पहुँच रही हूँ। इन अक्षरों का कोई अन्य अर्थ तुम न समझ लेना। अगर तुम्हारा मन यहाँ आने का हो और तुम यह समझो कि केस को उठा लेने में मेरी कहीं से भी पराजय है, तो मैं चाहूँगी कि इस विषय में हम लोग एक बार पास बैठ कर विचार-विनिमय कर लें। कोई ऐसी ग़लती मैं नहीं करना चाहती, जिससे तुमको उलाहना देने का कभी अवसर मिले। मुन्ना को मेरी ओर से प्यार कर लेना और काजू किशमिश अपने हाथ से उसके मुँह में छोड़ देना।

तुम्हारी,

वनवासिनी श्रीमती विश्वास

पत्र समाप्त हो गया। एक-एक अक्षर मैं अनेक बार पढ़ गया। कई जगह जो मात्राएँ और अक्षर कहीं-कहीं पूरा-का-पूरा शब्द कुछ घुल-सा गया है, स्याही भी हल्की-हल्की सी। उन स्थलों पर फैल रही है, धुँधली-धुँधली, उतरते-ढलते आश्विन के बादलों जैसे! जान पड़ता है कि ये रुई के से छोटे-छोटे फाहे उन आँसुओं ने बना दिए हैं, जो इस पत्र को लिखते समय श्रीमती विश्वास के कमल-नयनों से गिर पड़े हैं।

इस पत्र को लेकर जब मैं भाईसाहब के पास पहुँचा तो भाभी उनको अपना पत्र दिखा रही थी और मुन्ना कह रहा था— 'अम्मा, मौसी

ने मुझको कोई चिट्ठी नही भेजी !' मैने उसको गोद में उठा लिया और कहा—"देखो, मेरी चिट्ठी में तुम्हारे लिए लिखा तो है कि मुन्ना को प्यार कर लेना और यह भी लिखा है कि काजू और किशमिश उसके मुँह में डाल देना।"

मुन्ना ने उत्तर दिया—"कहाँ लिखा है दिखाओ !"

इतने में भाभी बोली—"मेरे पत्र मे भी तो लिखा है सो मैनी किसेज़ टु डियर मुन्ना थ्रू योर लवली, स्वीट, लिप्स !"

जब भाभी ऐसा कह रही थी, तब भाईसाहब मुस्करा रहे थे। इसी समय मैने श्रीमती विश्वास का पत्र उनको पढ़ने के लिए दे दिया। थोड़ी देर मे उस पत्र को पढ लेने के अनन्तर भइया बोले—"देखो सतीश, उस दिन मैने श्रीमती विश्वास पर अपना कुछ अविश्वास प्रकट किया था, लेकिन आज मै अपने उन शब्दो को वापस लेता हूँ।"

मैने भाई साहब की बात का कोई उत्तर नही दिया। इसके बाद दोपहर को खाना खाने के पश्चात् एक टेलीग्राम आ गया। उसमें लिखा हुआ था : "श्रीमती विश्वासेज़ कन्डीशन एलार्मिङ्ग। एडमिटेड इन हॉस्पिटल। कम बाई एयर। ए 'विल' टु मुन्ना !—रामू !"

: २५ :

भूकम्प जब आता है, तब गिरिश्रृंङ्ग टूट कर ढह जाते हैं। पाषाण शिलाएँ टूट कर चूर-चूर होजाती हैं। लोहे के स्तम्भ संघर्ष में आकर टेढ़े पड़ जाते हैं। बड़े-बड़े राजप्रासाद धराशायी हो जाते हैं, किन्तु कर्तव्य की कठोरता और दृढता मानवता की रक्षा के नाम पर फिर भी अचल और अडिग बनी रहती है। मैं मसूरी जाने की तैयारी कर रहा था। होल्डाल बँध गया—एरोप्लेन में मेरी सीट 'बुक' हो चुकी। —और अभी-अभी फ़ोन से सूचना मिली है कि मुनीम जी अब इस संसार में नहीं रहे। बाजार बन्द हो गया है और हो रहा है। नाते-रिश्ते, परिचय और व्यवहार के बन्धन में बँधे हुए वृन्द-के-वृन्द उनके घर जा रहे हैं। मैं भी उनका अन्तिम दर्शन कर आया हूँ, लेकिन भइया कह रहे हैं — "तुम जाओ, एरोड्रोम पर समय से पहुँचो, दरवाज़े पर गाड़ी खड़ी है।" भीखू ने उस पर मेरा 'लगेज' भी रख दिया है। मुन्ना मेरी गोद में है और मैं उसे प्यार कर रहा हूँ। भाभी कह रही हैं—"पहुँचते ही वहाँ का समाचार फोन से देना। यहाँ की चिन्ता मत करो। जाओ, आनन्द-पूर्वक।" और इतने में शोफर ने गाड़ी 'स्टार्ट' कर दी। मेरे मन में इस घटना-क्रम को लेकर एक उथल-पुथल मची है। मुनीम जी को आज ही इस जगत् से विदा लेना था?—और, श्रीमती विश्वास को इसी समय इस सीमा तक बीमार पड़ना था? मगर ख़ूब, श्रीमती विश्वास तुमने अन्ततोगत्वा अपने जिस रूप का परिचय दिया है, वह मुझे जीवन भर नहीं भूलेगा। गाड़ी जब लाटूशरोड से आगे बढ़ी, तो मूलगंज के चौराहे पर पहुँचती-पहुँचती यकायक रुक गई। उधर से मुनीम जी के शव का जलूस आ रहा था। सैकड़ों आदमियों की उस भीड़ में गाड़ी के अन्दर बैठा हुआ मैं यही सोच रहा था कि मुझको तो इस जलूस के साथ जाना चाहिए। परिचित और मित्र जो मेरी गाड़ी तक पहचानते थे, मेरे

पास आकर आश्चर्य से पूछने लगते—"अरे, छोटे भइया, आप कहाँ ?" तो उनका यह प्रश्न मेरी छाती पर गोली की तरह लग जाता। समाधान तो किया ही जाता है और मै भी कर रहा था, किन्तु वह समाधान तो दूसरों के लिए है—मेरी पीड़ा का समाधान कहाँ है ? क्या मै सम्पत्ति के लोभ में उधर भागा जा रहा हू ? नहीं तो क्या मै सौंदर्यलिप्सा के मोह से खिचा चला जा रहा हूँ ? मै क्यो जा रहा हूँ ? श्रीमती विश्वास के हृदय-दान और उनकी आत्मीयता की बात जब सोचता हूँ तो मुझे ऐसा जान पडता है कि मै बिल्कुल ठीक रास्ते पर हूँ। लेकिन मुनीम जी का स्वर्गवास हो गया है और उनके चिरंजीव जेल में हैं। इन दशाओ में क्या मेरा यह कर्तव्य नहीं कि मै यहाँ रहूँ और भइया से कहूँ कि मुनीम जी के परिवार के साथ आपको न्याय करना चाहिए। पर, फिर सोचता हूँ कि यह तो भइया पर स्पष्ट अविश्वास है—उनकी नैतिकता पर, उनके सत्य और न्याय पर। मुझे तो उनका सतत आज्ञाकारी ही बना रहना है। वे जो कुछ सोचते हैं—बिलकुल ठीक सोचते है।

अर्थी आगे बढ गई और मैने देखा—आगे ही वे अपना कन्धा लगाए हुए हैं। लोग भइया के इस स्वरूप पर हैरान हैं। काना-फूसी करते हुए एक दूसरे से कह देते हैं, जिनका एक-आधा स्वर मेरे कान में अभी पड़ा है—'गिरीशबाबू, सचमुच विचित्र धातु के बने हैं। एक ओर तो उन्होंने ग़बन का मुकदमा चलवाकर उनके लड़के को जेल में ठूँस दिया, दूसरी ओर उनका मकान भी हड़प कर लिया और यहाँ आए हैं दिखाने मौखिक सहानुभूति !··· अरे साहब, बड़े आदमियों की सब बातें बड़ी ही होती हैं।' मुझे इन लोगों की बातें सुन-सुन कर ताव आ रहा है। मै उनके मुँह पर थप्पड़ की तरह यह समाचार मार देना चाहता हूँ कि मुनीम जी की मृत्यु का समाचार पाकर रेहननामे का कागज़ उनकी स्त्री को वे तुरन्त वापस कर आए हैं। इतना ही नहीं, उस रेहननामे के पृष्ठ भाग

पर उन्होने यह भी लिख दिया है कि गबन के उपलक्ष में दण्ड भोगने के कारण मै अब इस मकान को मुनीम जी की धर्मपत्नी श्रीमती देवकी देवी को खूब सोच-समझकर, अपनी इच्छा से, वापस कर रहा हूँ। आज से अब इस मकान पर मेरा कोई अधिकार नही है।—और इधर हालत यह है कि लोग भइया पर टीका-टिप्पणी कर रहे है। लेकिन सबसे बड़ा समाधान तो यह है कि संसार का स्वभाव ही कुछ इस तरह का है कि टीका-टिप्पणी वह प्रत्येक दिशा मे करता है। जब बापू जीवित थे, तब जो लोग कहते थे कि वे हिन्दू-धर्म की जड़े काट रहे हैं, विभाजन के समय बटवारे की जो रकम पाकिस्तान को तुरन्त मिल जानी चाहिए थी, उसके भुगतान मे थोडा-सा भी विलम्ब उनको सहन नहीं हो रहा है, जब कि वे देख रहे है कि वही पाकिस्तान पैशाचिक हत्या-काण्ड पर तुला हुआ है और उसी रकम का उपयोग हमारे ऊपर आक्रमण करने की अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी व्यवस्था में किया जाएगा, वे बापू की हत्या पर आज आँसू बहाते हुए नही लजाते! स्पष्ट है, कि दुनिया दुरंगी है। संसार के दो मुँह है—एक सामने है, दूसरा पीठ पीछे! ऐसी अवस्था मे कर्तव्यशील प्राणी के लिए यही उचित है कि वह अपना काम करता जाय! दुनिया क्या कहती है, दुनिया क्या कहेगी, इस पर कभी विचार न करे, कभी ध्यान न दे।

अर्थी चली गई। जलूस कभी का आगे बढ चुका था। मै भी ठीक समय पर एयरोड्रोम पर पहुँच गया। अभी एयरोप्लेन नही आया था, इसलिए मै निकट स्थित कैण्टीन में जा पहुँचा। इसी बीच मेरे सामान की तुलवाई कर ली गई। डॉक्टरी परीक्षा हो ही चुकी थी।

थोड़ी देर में वायुयान घहराता और चक्कर काटता हुआ नीचे आ गया। सीढ़ी लगादी गई। सामान अन्दर रख दिया गया और तब हम अपने कई सहयात्रियों के साथ अन्दर जा बैठे। थोड़ी देर में वायु-यान पहले पक्के फ़र्श पर कुछ दूर चला और फिर यकायक उड़ने लगा।

जैसे पानी के नीचे से जब आदमी ऊपर आता है, तो एक शक्ति हमको नीचे से ऊपर ले आती है—रहँट में बैठकर जब हम आकाश के थोड़े से मार्ग में चक्कर काटते हैं और नीचे से ऊपर आते हैं, तब जैसे कुछ नया-नया-सा ऊपर की ओर खिंचते और बढ़ते जाने का भान होता है बस, या कार पर बैठकर जैसे हम पहाड़ी चढाई तय करते हैं, तब मोड़ के समय एक हल्का-हल्का-सा 'जर्क' भी कभी-कभी लग जाता है, वैसा मुझे अनुभव होने लगा। बगल में खिड़की है, उससे हवा बहुत तेजी से भीतर घुस आती है, पर उसे प्रायः बन्द ही रखना पड़ता है, किन्तु आकाशगामी यात्री को अपने ऊपर और दाँएँ-बाँएँ तथा नीचे देखने का अवसर न मिले और वह एक डब्बे में बन्द रह कर ही, एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाय, तो वायुयान की यात्रा बहुत ही शुष्क और मन उबा देनेवाली हो जाय। इसलिए रोशनी, वायु तथा दृश्यावली देखते रहने का पूरा प्रबन्ध रखा गया है। सेविका जिसे 'वेट्रेस' कहते हैं, शायद छाँट कर रक्खी जाती है। वे पढी लिखी तो होती ही है, साथ ही अपनी सुन्दरता और आधुनिकतम वेशभूषा तथा शृङ्गार-प्रसाधन से सुसज्जित बहुत ही शोभन और बहुत ही आकर्षक प्रतीत होती है। उनके वार्तालाप का ढग बहुत ही आत्मीयतापूर्ण होता है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो उनसे आत्मीयता बनाए रखने का लोभ मन में आ ही जाता है। एक सहयात्री ने तो मुझको यह भी बतलाया कि हमारे बहुतेरे अमीर साथी इनकी आत्मीयता पाने के लिए ही बार-बार एरोप्लेन से यात्रा करते है ! किन्तु इस स्थल पर मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि श्रीमती विश्वास इनसे कहीं अधिक आकर्षक और मृदुल प्रकृति की हैं। उनका शील, सौजन्य ही नहीं, उनकी देहयष्टि की कमनीयता मेरे लिए संसार में दुर्लभ प्रतीत होती है। खैर, जो 'वेट्रेस' ने मुझसे पूछा—"नींबू लीजिएगा ?" क्योंकि अब मुझे कुछ मचली-सी जान पड़ने लगी थी तो मुझे 'हाँ' कहना पड़ा। यह यात्रा

उतनी सुखद नही है, जितनी विचारोत्तेजक है। ऊपर उठते समय कम-से-कम मुझे उतना अच्छा नहीं लगता, जितना ऊपर से नीचे आते समय। कभी-कभी तो मै यह भी सोचने लगता हूँ कि क्या जीवन की क्षरणात्मक परिस्थितियों के साथ शारीरिक सौख्य का भी कोई अमित और अमिट सम्बन्ध है ? यद्यपि मेरी मान्यता इससे बिलकुल भिन्न है। मै तो प्रत्येक परिस्थिति से कुछ-न-कुछ सीख ही रहा हूँ। यहाँ तक कि मेरे कुतूहल और साहसी मन मे तो यह भी आ रहा है कि एक बार उतनी ऊँचाई पर से यात्रा की जाय, जितनी ऊँचाई से और अधिक आगे बढ़ना असम्भव हो जाय ? लेकिन अब भी मै वह बात नहीं कह पाया, जो बात मै कहना चाहता हूँ। जैसे किसी पहाड पर चढ़ते समय मै यह सोचता हूँ कि इससे भी ऊँची कोई चोटी हो, तो मुझे उस पर चढ़ना चाहिए, वैसे ही इस आकाश की यात्रा में भी बार-बार मेरे मन में आ रहा है कि जब ऊँचाई का अन्त नहीं है, तब ऊँचाई पर बराबर चढ़ते जाने की मेरी मनोकामना का अन्त कैसे सम्भव हो सकता है ?

इन्हीं विचारों के साथ उस दिन थोड़े ही समय में मै मसूरी जा पहुँचा।

: २६ :

घूम-फिर कर मैं पुन उसी पार्वत्य प्रान्त में आ गया, जहाँ निर्झर कलकल गान करता है, सीरी सीरी पवन जब डोलती है, तब देवदार के वृक्ष अपने कोमल पल्लवों को हिला-हिला कर एक ऐसा मर्मर संगीत छेड़ देते है कि मानव प्राणी उस अद्भुत मोहक वातावरण में पड़कर समझने लगता है कि मैं कृतार्थ हो गया। ऊँचे-ऊँचे शृंग एक ओर चुपचाप खड़े हैं और अपने मूक आह्वान से हमें स्तब्ध कर देते हैं। हरीभरी सघन घाटियाँ नीचे उतरती हुई अपनी गहराइयों में हमें डुबो डुबो देती हैं। कहीं चारो ओर शृंग हैं और बीच में मैं हूँ। कही ऊँचाई असीम है, तो कहीं गहराई भी असीम है। दोनों एक दूसरे को जब चुनौती देती हैं, तब मैं ठगा-सा रह जाता हूँ। प्रश्न मेरे अन्तराल से फूट पड़ते है —"सतीश, सच-सच बतलाओ, तुम ऊँचाई पसन्द करते हो या गहराई ?" यदि मैं कह देता हूँ गहराई तो जान पड़ता है, ऊँचाई मेरे उत्तर की जल्दबाजी पर हँस देती है और अगर मैं कहता हूँ कि मुझे ऊँचाई पसन्द है, तो गहराई मेरे कान के पास मुँह ले जाकर चुपके से कह देती है कि तुम पूरे ऊँट हो ! अब मैं अपने मन की बात कहूँ ?—यह सब कुछ जो विचारों के खेलों की जादूगरी है, यह दृष्टिकोण का एक झुकाव है। विचार करने की पद्धति की एक लहर ! नहीं तो उस ऊँचाई का कोई मूल्य नहीं है, जिसमें गहराई न हो और गहराई स्वयं एक ऊँचाई है। मैं वायुयान पर जाता हुआ यही सब सोचता रहा हूँ और इस समय जब मैं श्रीमती विश्वास के बँगले पर चढ़ता जा रहा हूँ तब भी मेरा मन इस प्रकार के विचार-झकोरों से ओत-प्रोत हो उठता है। आगे बढ़ कर जब मैं बराण्डे में जा पहुँचा, तब बाईं ओर के कमरे में कुछ बच्चों की-सी ध्वनियाँ गूँजती हुई जान पड़ीं। तुरन्त मैंने समझ लिया कि श्रीमती विश्वास ने जिस पाठशाला का उल्लेख अपने पत्र में किया था, वह यही है। एक सेविका उसके द्वार पर बैठी

थी, जिसे मैंने पहले देखा नहीं था। संकेत से उसे अपने निकट बुला कर मैंने प्रश्न किया—"मेमसाहब कहाँ हैं ?"

उसने उत्तर दिया—"मेमसाहब ? मेमसाहब तो यहाँ कोई नहीं है। एक देवी जी जरूर हैं, जिनका यह बँगला है।"

उसका यह उत्तर सुनकर मुझको प्रसन्नता अवश्य हुई। कुली मेरा सामान लिए मेरे पास ही खड़ा था। सेविका ने सहारा दे कर उसे नीचे उतरवा लिया।—और तभी मैंने कह दिया—"उन देवी जी से कहो सतीश बाबू आए हैं।"

सेविका पुनः उसी कमरे में लौट गई और दो मिनट के अन्दर मेरे कमरे का द्वार भीतर से खुल गया। रामू ने हाथ जोड़ कर मुझको नमस्कार किया और कहा—"आइए सरकार! देवी जी अभी आ रही हैं।"

अन्दर जाकर मैं एक कुर्सी पर बैठ गया और तभी रामू ने मेरा सामान रख दिया। मैं जब रामू को पैसे देने लगा और मैंने कहा—"कुली को दे दो।" तब रामू बाहर चला गया और तुरन्त ही फिर भीतर आकर बोला—"सरकार कुली को पैसे मिल गए और वह चला गया।" वह अभी अपनी बात पूरी कर ही रहा था कि श्रीमती विश्वास मुस्कराती हुई भीतर आ गईं।

सदा से मेरा यही विश्वास रहा है कि खुला हुआ और अलंकृत सौंदर्य अपनी चारुता मे, अपने प्रभाव मे शैली और उसके निखार में चाहे जितने उच्चकोटि का हो, किन्तु कुछ-कुछ छिपे हुए, दबे और मुँदे हुए, सात्विक रुचियों से घिरे हुए निर्मल, स्वस्थ सौंदर्य की अपेक्षा वह सदा हीन कोटि का होता है। श्रीमती विश्वास की इस भारतीय रूपरेखा में अमित सौंदर्य है।—और मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि उनका वास्तविक सौंदर्य तो आज तक मुझसे छिपा ही बना रहा। श्वेत

बकलेदर की बहुत हल्की जूतियाँ उनके पैरों में हैं, श्वेत खादी की साड़ी उनकी देहयष्टि पर है, और एक मुलायम श्वेत शाल वे ऊपर से ओढ़े हुए हैं। सदा लाल रहनेवाले अधर आज गुलाबी हो गए हैं और कह रहे हैं—"आपने देखा यही मेरा मौलिक रूप है?" केश उनके अवश्य सँवारे हुए थे, लेकिन आज वे दो भागों की चोटियों में बटे हुए न थे, वरन् अकेले गुँथे हुए वेणी के रूप में गोलाकार होकर मन-हरण छन्द बन गए थे। हाँ, एक फ्रेमलेस चश्मा उन्होंने अपनी नाक पर अवश्य चढ़ा रक्खा था। मैं जब उनको इकटक देखता रह गया, तब वे बोलीं—"मेरा तार तो आपको मिला ही होगा?"

मैंने उत्तर दिया—"जी हाँ, अब मालूम हुआ कि बुला लेने का बहाना अपने आपमें पूर्ण समर्थ था।"

श्रीमती विश्वास इस बार मुस्कराईं नहीं, वरन् गम्भीरतापूर्वक बोलीं—"बहाना नहीं, यत्न और साधन देखने में आपको आश्चर्य में डाल रहे हैं और एक उपालम्भ आपको दे रहे हैं किन्तु यह तो आपको मानना ही पड़ेगा कि जिन श्रीमती विश्वास को आप यहाँ छोड़ गए थे, वे वास्तव मे 'डेथ बेड' पर थी और अब तो मर भी गई हैं। आपको, नही भाई, तुमको क्या उनके पुनर्जन्म पर विश्वास नही है?"

अब मुझे बरबस हँसी आ गई और मैंने कह दिया—"ग्रेट! तुम वार्तालाप मे सदा से ऐसी ही निपुण रही हो और पुनर्जीवन प्राप्त करने पर भी कम-से-कम अपने इस गुण में तो अब भी मेरी वही पुरानी श्रीमती विश्वास हो!"

अब श्रीमती विश्वास कुछ मुस्कराईं—"सच सच बोलो सतीश, तुमको मेरा यह परिवर्तन कैसा लगता है?"

मैं कभी-कभी कोई उत्तर बिना सोचे दे देने का अभ्यासी रहा हूँ। आज इस अवसर पर भी मैंने बिना कुछ सोचे कह दिया—"कैसा लगता है, यह मत पूछो! मुझे तो वह लगता भर है। स्पर्श कर रहा

है। छू रहा है।"

इतने में रामू ने आकर कहा—"पानी गरम हो गया है। सरकार अगर नहा ले, तो सफर की थकान कुछ कम हो जायगी।"

तब मैंने कह दिया—"हाँ, गरम पानी मुझे जरूर चाहिए, लेकिन नहाने के लिए नही, पीने के लिए।"

श्रीमती विश्वास बोलीं—"जाओ रामू, न तो इनको हमारे नए नियमों का ज्ञान है, न उनका पालन करने के लिए मैं इनको विवश ही कर सकती हूँ। तुम चाय बना ले लाओ, लेकिन जल्दी!"

रामू चला गया। अब मुझे ध्यान आ गया कि यह तो अभी बच्चों का कोई क्लास ले रही थी। इसलिए मैंने कह दिया—"तुमतो अभी बच्चो को पढा रही थी न? बीच ही में उठकर चली आई हो। और इधर, धीरे-धीरे मेरा यह विश्वास बहुत पक्का हो गया है कि जीवन मे कोई काम अधूरा नहीं छोडना चाहिए।"

श्रीमती विश्वास ने कुर्सी पर बैठते हुए उत्तर दिया—"अगर प्रारम्भ किए हुए काम की अपेक्षा नवीन आयोजन का कार्य भविष्य के नवनिर्माण में सहायक न हो…"

मैंने अनुभव किया कि सचमुच श्रीमती विश्वास के विचारो में बड़ा परिवर्तन हो गया है।

अभी यह बातें चल ही रही थीं कि श्रीमती विश्वास बोलीं—"तुम चले आए तो मुझे बड़ा सुख मिला, लेकिन तुम अगर मुन्ना को अपने साथ ले आए होते, तो आज अपनी इस नई पाठशाला में उसे भरती करके मैं अपने को बहुत सौभाग्यशालिनी समझती।… गिरीश बाबू ने कल ही मुझे फ़ोन से मुनीमजी के देहावसान और तुम्हारे इधर चले आने की बात बता दी थी। मैं बच्चों को पढ़ा जरूर रही थी लेकिन कोई मेरे मन के भीतर घुसकर मुझसे बार-बार यही कह रहा था कि कोई इधर उड़ा चला आ रहा है। वह अब मसूरी के एयरोड्रोम पर

होगा और अब रास्ते में और अब तो वह मेरे बँगले की सीढ़ियाँ पार कर रहा होगा। इतने में मैं क्या सुनती हूँ कि कोई सचमुच आ ही गया है और देख रही हूँ, अब देख रही हूँ कि तुम मेरे अन्त.पुर में हो और मेरे समक्ष हो। लेकिन तुम तो बहुत थके हुए होगे! पलँग पर लेट जाओ, लेट जाओ···लो मैं तुम्हारे निकट ही यहाँ, इस तरह, बैठी जाती हूँ।"

पलँग के ऊपर आज सदा की भाँति रंगीन चादर न थी। श्वेत खादी की चादर थी। मुझे उनका अनुरोध मानने में सुख मिला और मैं जब तकिए पर सिर रखकर लेट गया, तो उन्होंने मेरे कान के पास मुँह ले जाकर कह दिया—"तुमको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अब मुझे नींद आने लगी है—दिन भर इतनी व्यस्त रहती हूँ कि नींद बिना बुलाए आ जाती है। वह नींद जिसको कि मैं तरसा करती थी, वह भी जब कि तुमको पाने के लिए मुझे सदा बुलाना ही पड़ता है, तुम इतने निर्मोही और निष्ठुर हो कि बिना बुलाए कभी नहीं आते हो!"

मैं आज श्रीमती विश्वास की वाणी में मूर्तिमान कविता का अनुभव कर रहा था और मैं यह कहने जा ही रहा था "अगर तुम मेरी साधना बन जाओगी, तो मैं बिना बुलाए ही आ जाया करूँगा।"

इतने में रामू ने चाय की ट्रे लाकर मेरे पास रक्खी हुई 'टेबिल' पर रख दी। श्रीमती विश्वास बोली—"देख रामू, मैंने तुझसे कहा न था, याद है तुझे कि सैण्डविचेज़ ही तू बनाया कर और आज तू यह हलुआ सोहन की टिकियाँ ले आया है। तू जानता नहीं, कि इन बाबू साहब का मन ही नहीं, तन भी कुमार है। आयु में सुकुमार। यह गरिष्ट पदार्थ अब मैं इनको खिलाना नहीं चाहती। इसलिए यह डिश तो तू उठा ले जा और झट से टोमैटो के सैण्डविचेज़ बना ला।···और देख, वो मुनैको के साल्टी बिस्किट ले आ। मैं नहीं चाहती कि ज्यादा

मिठास से मैं इनका मुँह बाँध दूँ।"

श्रीमती विश्वास की यह बातें मेरे ऊपर 'इन्जेक्शन्स' का काम कर रही थी।

रामू चला गया। अब मैंने श्रीमती विश्वास से पूछा—"क्या तुमने सचमुच यह तय कर लिया है कि विमल विश्वास पर मान-हानि और मार डालने का प्रयत्न ये दोनों अभियोग जो तुम चला रही थी, उनको उठा लोगी।"

श्रीमती विश्वास ने उत्तर दिया—"हाँ, मैं अब यही सोचती हूँ कि देश के काम में लग जानेवाले व्यक्तियों को झंझट के किसी काम में नहीं पड़ना चाहिए।"

श्रीमती विश्वास की आज की इन सारी बातों का प्रभाव मेरे मन पर कुछ इतना व्यापक पड़ रहा था कि किसी भी क्षण मैं उनसे यह स्पष्ट कह देनेवाला था कि पूरे एक वर्ष तक मैं तुम्हारी परीक्षा लेता रहूँगा और बताऊँगा नही कि उसका उद्देश्य क्या है। किन्तु मैं अपने इस विचार को रोके हुए था, पर अब मुझे कहना पड़ा, सीधे तौर पर नहीं, कुछ घुमा-फिरा कर मैंने पूछा—"मुन्ना के नाम जो कुछ वह 'विल' करना चाहती हो, उससे तुम्हारा आन्तरिक अभिप्राय क्या है ?"

मैं समझ नही सका कि मेरे इस प्रश्न को उन्होंने किस मन्तव्य का मूलाधार समझा है। किन्तु मैंने देखा कि कुछ ही क्षणों में उनकी आँखें डबडबा आई हैं और वे बोलीं—"क्या यह बात भी अब पूछने के लिए रह गई है सतीशबाबू ? सच बतलाओ क्या तुम मेरे कोई नही हो ? और मुन्ना मेरा बच्चा नहीं बन सकता ? बोलो—जल्दी बोलो ?"

और बस, इतना कहते-कहते वे अपनी आँखों से मोती गिराने लगीं, मोती अनबेधे ! किन्तु जिन्होंने आज मेरे मर्म को बेध डाला है।

❋

: २७ :

आज फिर मेरे मन में तूफान उठा है। मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता है कि श्रीमती विश्वास मेरे मन को मोह रही है। मै उनकी ओर खिचा चला जा रहा हूँ। जितना ही मै उनसे अपने आपको बचाता हूँ, उतना ही वे मुझे अपनी ओर खीच रही है। उनकी निकटता मुझे पकड रही है और मैं उनके अन्दर एक मोह उत्पन्न कर रहा हूँ। जब मैं कानपुर चला गया था, तब मैंने उनके सम्बन्ध में जो कुछ सोचा था, वह सर्वथा निराधार सिद्ध हो चुका है। मै अब उनका मित्र ही नही प्राणो के साथ स्पन्दन करनेवाला जीवन-साथी बन गया हूँ। यह सब कैसे हो गया है, मुझे आज एक स्वप्न-सा जान पडता है—हो गया है, इतना ही जान पाया हूँ। आज मुझे आए दूसरा दिन है। मैंने पूछा—"आज तुम्हारी पाठशाला नहीं लगी ?"

उन्होंने नृत्य की-सी मुद्रा में उत्तर दिया—"आज सोमवार है न ? सोमवार चन्द्रदिवस होता है। जब अँधेरी रजनी मे चन्द्र झाँकने लगता है, तो रजनी के आनन्द का पारावार नहीं रहता। उसे उल्लास और तरंग मिलती है एक साथ। वही मुझको मिल गई है, इसलिए आज हमारी पाठशाला में छुट्टी हो गई है। यों यह छुट्टी एक नियम है, किन्तु यदि यह नियम न भी होती, तो भी मै आज छुट्टी मनाती। तुम्हारे साथ बैठ कर मै अपने जीवन का सूनापन भूल जाती हूँ। मै अपना सब कुछ भूल जाती हूँ। क्यों ? तुम क्या सोच रहे हो ?"

श्रीमती विश्वास का इतना कहना था कि मैं सोते से जग पड़ा और मेरे मुँह से निकल गया—"एक बात पूँछूँ तो आप बुरा तो न मानेंगी ?"

उन्होंने बिना कुछ सोचे उत्तर दे दिया—"मैं अब तुम्हारी किसी बात का बुरा नहीं मानूँगी। तुम पूछो न ? संकोच क्यों करते हो ? मैंने तो तुमसे कभी संकोच नहीं किया !"

मैंने तुरन्त कह दिया—"यह तुम्हारे नाम के साथ जो विश्वास शब्द लगा हुआ है, इसका अर्थ यह होता है कि तुम मूर्तिमान विश्वास हो, जबकि तुम केवल विश्वास नही हो। विश्वास नाम का जो पुरुष था, उनकी स्त्री हो और श्रीमती हो। लेकिन मूलरूप में तो तुम कही से भी विश्वास नहीं हो, यहाँ तक कि अब श्रीमती विश्वास भी नहीं हो। तुम साधना हो, तपस्या हो, भूखी रहती हो, और इसलिए दुबली भी सदा बनी रहती हो। अच्छा, तुम्हारा असली नाम क्या है ?—असली नाम से मेरा मतलब यह है कि जब तुम श्रीमती विश्वास नहीं थीं, तो तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारा क्या नाम रक्खा था ?"

वे तुरन्त उठकर चली गई और एक 'फ़ोटो-ग्रुप' निकाल कर ले आई। इसमें थोडा समय भी लग गया। वे अपनी वेशभूषा बदल कर आई। वही वेशभूषा जिसमें उन्होने फोटो खिचवाया था। मैंने फोटो-ग्रुप में उनको देख कर झट पहचान लिया। उस फोटो-ग्रुप के नीचे कुछ नाम थे। उन्हीं युवतियों के नाम जिनका वह फ़ोटो-ग्रुप था। उसमें उनका फोटो तीसरे नम्बर पर पड़ता था और तीसरे नम्बर पर जो नाम लिखा हुआ था, वह था—'शैलकुमारी !' मेरे मुँह से निकल गया "ओह, आज मालूम हुआ कि तुम मूलरूप में पर्वतकन्या ो और नाम भी तुम्हारा शैलकुमारी है।···अच्छा शैल सच सच बतलाओ, तुम मुझसे क्या चाहती हो ?"

टेबिल पर एक गुलदस्ता रक्खा था और धूपबत्ती सुलग रही थी। उसका सुरभित धुँआँ पवन के साथ उड़ रहा था—सफेद सफेद।

शैल ने धुँएँ की उड़ान की ओर इकटक देखते हुए उत्तर दिया—"इस धूपबत्ती में तुम देख रहे हो कि धुएँ की टेढ़ी-मेढ़ी, इठलाती बल खाती रेखाओं और गतियों में जो स्वच्छन्द उड़ान है वह कितनी प्यारी मालूम होती है ! मैं, बस, इस धूपबत्ती का यही धुँआँ और उसकी यही उड़ान बन जाना चाहती हूँ। लेकिन मुझे आश्चर्य हो रहा

है कि जो बात कहने की नहीं है, वही तुम मुझसे पूछ रहे हो ! तुम कैसे सतीश हो ?"

अब मुझे उसकी उस परिवर्तित वेशभूषा को देखकर कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह प्रकारान्तर से यह कहने जा रही हो कि तुम अभी ठीक कह रहे थे। मैं अब भी वही शैलकुमारी हूँ, श्रीमती विश्वास अब नहीं हूँ।

मैं बहुत विचार में पड गया। तब शैल बोली—"लो, तुम फिर खो गए। कहीं दूर चले गये। कुछ और सोचने लगे।"

मैंने कहा—"अच्छा शैल, तुम विवाह पर विश्वास करती हो ?"

उसने उत्तर दिया—"लो, तुम फिर पहेली बुझाने लगे ! यह बात भी क्या पूछने की है ? जाओ मैं ऐसे प्रश्नो का उत्तर नहीं देती।" और इतना कहकर वह बोली—"अच्छा, अब मैं घण्टे-आध-घण्टे की छुट्टी चाहती हूँ।"

मैंने पूछा—"क्यों ?"

उसने उत्तर दिया—"मैं अब पूजा करने जा रही हूँ।"

"पूजा ? क्या तुम किसी की पूजा भी करती हो ?"

"पूजा तो मैं मन से करती हूँ, प्राण से करती हूँ, करती ही रहती हूँ।"

"क्यों ? इस पूजा का उद्देश्य क्या है ?"

"उद्देश्य ? पूजा का उद्देश्य ? पूजा का भी कोई उद्देश्य होता है ? पूजा का उद्देश्य स्वय पूजा है। अथवा यों समझिए पूजा स्वयं उद्देश्य है। करनी है, सो करती हूँ।"

मेरी दृष्टि अब सामने के नील गगन पर जा पहुँची जहाँ रुई के से पर्वत छाए हुए थे, वे सामूहिकरूप से एक जगह स्थिर थे किन्तु कहीं-कहीं उड़ते हुए से जान पड़ते थे। वहीं एक पक्षी उड़ रहा था। उड़ता

उड़ता वह बड़ी दूर जा पहुँचा था और अब छोटा से छोटा और भी छोटा, बिलकुल चींटी के आकार का बन गया था। तभी मेरे मन में आया—जो वस्तुएँ हमसे बहुत दूर हो जाती है, वे देखने मे चाहे जितनी छोटी जान पडती हो, लेकिन होती उतनी छोटी नही है। दूरी मात्र उनको छोटा देखने को विवश कर देती है। और तब मैंने कह दिया—"तो तुम्हारा मतलब शायद यह है कि जिसकी तुम पूजा करती हो, वह तुमसे दूर है—बहुत दूर! इतनी दूर कि तुम्हारी पूजा उस तक पहुँच नहीं पाती ?"

"नहीं, ऐसी बात नही है, पूजा उन तक पहुँच जाती है। नित्य पहुँचती है; लेकिन जिनकी मैं पूजा करती हूँ, वे देवता है न ?—इस-लिए, उत्तर में वे कुछ बोलते नही है। क्योकि वे भी पत्थर के ही देव हैं। सदा मूक रहते है।"

"इसलिए मूक रहते है कि तुम्हारी पूजा से वह अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहते ?"

"नही ऐसा नही है। सम्बन्ध तो जुड़ा-जुड़ाया है। और वे इस बात को जानते भी है, किन्तु जैसा कि मैंने अभी कहा न कि वे पत्थर के है, बोलते नहीं है और अगर बोलते भी है तो छिप कर बोलते है, भीतर से बोलते है, सामने नहीं बोलते। और सामने भी बोलते है, तो स्पष्ट कुछ स्वीकार नही करते, यहाँ तक कि प्राय 'हाँ' के बदले 'ना' ही कहते है।"

"आय सी, तो तुमको इस बात पर पूरा विश्वास है कि उनकी 'ना' का अर्थ 'ना' ही नहीं होता, 'हाँ' भी होता है।"

"पूरा विश्वास है। और वह इतना दृढ़ है, जितना पत्थर होता है। जैसे पूजा का देव पत्थर है, वैसे ही पूजा की दृढ़ता भी अपने आपमें पत्थर ही है। इस अर्थ में दोनों एक है—स्वभाव और गुण मे अन्तर

केवल इतना है कि वे मेरे आँसुओं को तो स्वीकार करते हैं, हास को नहीं। मेरा रुदन उनको प्रभावित करता है, मोह नहीं।"

"अच्छा शैल, सच-सच बतलाओ, तुमने यह कैसे समझ लिया कि तुम्हारे अन्दर जो मोह है वह उनको प्रभावित नही करता! यह बात कहाँ तक ठीक है?"

"मैं तो यही सोचती हूँ कि यदि प्रभावित करता होता, तो उस दिन जब मुझे नीद नहीं आ रही थी, तब उन्होने एक बात कही थी और वह बात मुझको याद है—अच्छी तरह। उन्होंने कहा था—'अगर नींद तुमको नही आती, तो तुम्हारा मन स्वस्थ नहीं है।' मुझे भी कुछ ऐसा जान पड़ा था कि उन्होंने ठीक ही कहा था। नींद तो उसी को नहीं आती, जिसका मोह स्वस्थ नहीं होता। लेकिन अब तो मुझको नींद आती है। इसलिए मेरा मोह भी स्वस्थ है। और स्वस्थ मोह का दान कभी व्यर्थ नहीं जाता। मुझे विश्वास है कि मेरी पूजा व्यर्थ नहीं गई है, व्यर्थ नहीं जायगी!" और इतना कह कर वह जाने लगी।

मैंने पूछा—"क्यों? अब कहाँ··?"

उसने उत्तर दिया—"जरा भोग की व्यवस्था कर लूँ।"

मैंने पछा—"क्यों?"

उसने कहा—"पूजा जब पूरी हो जाती है, तब देवता के सामने भोग रखना ही पड़ता है।"

मेरे मुँह से पुनः निकल गया—"आय सी···" इसके बाद मैं आगे बढ़ गया और मैंने कह दिया—"एक बात तुमको नहीं मालूम है शैल, आज देवता के भोग का दिन नही है। आज सोमवार है न? और फिर एकादशी।···तो आज देवता को भी उपवास ही करना पड़ेगा। इसलिए तुम चिन्ता मत करो।"

अब शैल बोली—"देखो, सतीश, तुम मुझको तंग मत करो। मेरे ऐसे कोई देवता नहीं है, जिनको एकादशी व्रत लेना पड़ता हो। भोग

तो उनको नित्य लेना ही पड़ता है। आज भी वह बिना भोग लगाए नहीं बचेंगे।" अब मुझे हँसी आ गई और मेरे मुँह से निकल गया—"शैल ज़रा सोच कर देखो, तुम्हारे इस कथन का अर्थ क्या होता है ?"

वह मेरी इस बात पर बहुत संकुचित हो उठी और कोई उत्तर न देकर कमरे से बाहर चली गई।

थोड़ी देर बाद मैं जो शैल के कमरे के अन्दर प्रवेश करने लगा तो पैर सहसा ठिठुक गए और मैंने देखा कि पुजारिन सचमुच पूजा कर रही है; मिस्टर विश्वास का आयलपेण्टिग उसके सामने है और उसकी दोनो आँखों से अश्रुधारा बह रही है।

: २८ :

आज सन्ध्या समय मैं रुचिता के यहाँ चला गया था। संयोग की बात कि दरवाजा खुला हुआ था और किरण पलँग पर लेटी हुई सो रही थी। मैंने सेवक से पूछा—"कहाँ है तुम्हारे साहब ?"

उसने उत्तर दिया—"वह तो कहीं घूमने गए हैं।"

तब मैंने पूछा—"और भाभी ?"

वह बोल उठा—"गुसलखाने में हैं।"

मैंने कह दिया—"ज्योंही बाहर निकलें, उनको सूचित कर देना कि सतीशबाबू आए हैं। मुझको तो पहचानते हो न ?"

"अरे बाबूसाहब···" वह बोला—"जिस दिन आपको न पहचानूँगा, अपना सर फोड़ डालूँगा !"

मेरे मुँह से निकल गया—"लो, यह रुपया इनाम का, तुमने बहुत बढ़िया जवाब दिया है। मेरी तबीयत खुश हो गई।"

सेवक ने लगातार मुझे तीन बार सलाम किया और मैं सोचने लगा अब मेरे इस रुपए का ज़िक्र, ये अपने समुदाय में, पचासों बार करेगा।

सेवक चला गया ! मैं उस कमरे में टहलने लगा। इतने में 'चित्रा स्टूडियो' का बना हुआ रुचिता का एक एन्लार्जमेण्ट मेरी दृष्टि में पड़ गया—अंधेरा बहुत घना है। उसके भीतर से उज्ज्वल आलोक, घनत्व को धीरे-धीरे मन्द करता हुआ, फूट रहा है। और उसके अन्दर से एक मुख झाँक उठता है, उस पर मुस्कराहट नहीं है; उस पर किसी प्रकार की वेदना की छाप भी नहीं है। एकदम शान्त, प्रकृतस्थ मुद्रा है जैसे कोई प्रस्तर-मूर्ति हो। तुरन्त मेरे मन में आया—अच्छा, तो भाभी कभी गम्भीर भी हो जाती हैं ! लेकिन मैंने तो उन्हें कभी गम्भीर नहीं देखा। सदा ही वे अधखिले फूल की भाँति अर्ध-परिपक्व आम-सी, गदराई हुई, सन्तरे के वर्ण की, कभी जोगिया आम-सी दिखलाई पड़ती

हैं। हँसती हैं, तो उनके कपोल 'क्रिमजन रेड' हो जाते हैं। व्यंग्य करती हैं, तो मटकती हैं दोनामरुश्रा-सी; प्यार करती हैं, तो लिली बन जाती हैं। बात करती हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि पवन के झकोरों से कमलिनी हिल रही है, डोल रही है।

इतने में साड़ी के आँचल को बाएँ हाथ में थामे हुए भाभी आ पहुँची और बोलीं—"आए हुए कितनी देर हुई ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"अट्ठाइस वर्ष हो गए।"

अब वे हँस पड़ीं। बोली—"जाइए। आप बहुत उड़ने लगे हैं।"

मेरे मुँह ले निकल गया—"हाँ, इस बार तो मैं उड़ कर ही आया हूँ।"

वे बोली—"आज सरदी बहुत है या कुछ ऐसा है कि मुझ ही को लग रही है ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"हाँ, मौसम का रुख़ तो कुछ ऐसा ही है। हालाँकि सरदी का सम्बन्ध उमर के तकाज़े पर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। आपका क्या ख्याल है ?"

वे बोलीं—"आओ, इधर अँगीठी के पास बैठें।" और फिर झट बोल उठीं—"धनी चलो···"

सेवक आ गया—"कुर्सी लाओ।"

दो कुर्सियाँ आ गईं। धनी जब जाने लगा तो वे बोलीं—"ठहरो" और फिर मेरी ओर देख कर पूछने लगी—"तुम चाय पियोगे कि क़ाफी ?"

मैंने कह दिया—"न चाय, न क़ाफी, न मेवा, न फल, न मिठाई, न खटाई, कुछ भी नहीं।"

भाभी मुस्कराईं। बोलीं—"यह सब कुछ नहीं। तुम जो चीज़ छोड़ गए हो, आज मैं तुमको वही पिलाऊँगी।"

मैंने पूछा—"क्या ?"

वे बोलीं—"दूध !"

मैंने कहा—"माफ करो मुझको। अब मैं किरण का भैया बनने से रहा।"

वे मेरी ही तरह ढीठ हो पड़ीं और बोल उठीं—"तुम तो हो गए हो शैतान, जो मन में आता है, सो बक डालते हो ! अरे मैं तुमको बादाम का दूध पिला रही हूँ।"

बात कुछ मुझको जँच गई और स्वीकृति के भाव से मैंने पूछा—"उसमे और कुछ तो नहीं होगा ?"

वे बोलीं—"और कुछ क्यों नहीं होगा, उन्होंने आगे कहा—"उसमें बादाम का घी होगा ?" उसमें मिश्री की मिठास होगी, उसमें अमृत का स्वाद होगा और·· और·· मैं तुमको क्या बताऊँ—उसमें शैलकुमारी का प्यार होगा !—बोलो, इसके सिवा और तुमको कुछ चाहिए ? जाओ, जाओ जी धनी, दो गिलास बादाम का दूध बना कर ले आओ 'देर मत करो, जाओ ' "

धनी जो अब तक सर नीचा किए हुए इन बातों को चुपचाप सुन रहा था—लेकिन चिक के पास खड़ा हुआ, यानी काफी दूर—बोल उठा—"जी सरकार, अभी बनाए लाता हूँ म ··ग···र··· मिश्री···तो···?"

इतने में भाभी बोली—"अरे ग्लूकोज़ तो होगा, वही डाल के ले आ।"

धनी चला गया। भाभी लाल फीतेवाली मखमली चप्पल से दोनों पैर निकाल कर अँगीठी की ओर बढ़ाती हुई, उन्हे सेंकती-सी बोल उठी—"तुम अपनी शैल से विवाह क्यों नहीं कर लेते ? अपने को धोखा क्यों देते हो ?"

मेरे मुँह से निकल गया—"यह तुम क्या कह रही हो भाभी ?"

वे बोली—"मुझसे बनो मत, मै सब जानती हूँ !"

"क्या इधर... ?"

"हाँ, इधर मैं कई बार उनसे मिल चुकी हूँ।" उन्होंने स्पष्ट तो नहीं, पर छिपे तौर से यह स्वीकार कर लिया है कि अगर तुम्हारी ओर से प्रस्ताव होगा, तो वे इन्कार नहीं करेंगी।"

अँगीठी की आग से लाल-लाल लपटें निकल रही थीं। मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता था कि यह लपटें शैल के जीवन से फूट कर निकल रही हैं। अगर शान्त न की गईं, किसी उपयोग में न आईं, तो वे केवल उसी को ही भस्म करके तृप्त न होंगी। उनकी आँच उसके मर जाने के बाद भी मेरे तन और मन को झुलसाती रहेगी—जलाती रहेगी।

भाभी बोलीं—"तुम क्या सोचते हो?"

मैंने अपना मनोभाव छिपा कर उन से पूछा—"रुचिनाथ बाबू कहाँ गए?"

उन्होंने उत्तर दिया—"नाच-घर।"

मैंने पूछा—"और आप क्यों नहीं गईं?"

उन्होंने उत्तर दिया—"मैं चली जाती, तो तुमसे कैसे भेंट होती?"

मैंने पूछा—"क्या मेरे आने की बात तुम्हें मालूम हो गई थी?"

उन्होंने कहा—"कल ही, शैल ने मुझे फ़ोन से बता दिया था।"

मैंने पूछा—"तो यह कहो, इधर शैल से तुम्हारी बड़ी मित्रता हो गई है?"

उन्होंने उत्तर दिया—"जहाँ जहाँ तुम्हारी आँख पड़ जाती है, वहाँ वहाँ मेरी नजर भी घूम ही जाती है।"

मैंने पूछा—"तो तुम मुझ पर नजर रखती हो?"

उन्होंने उत्तर दिया—कुछ मुस्कराते हुए—"मैं नजर रखती नहीं हूँ, नजर झाड़ती हूँ। तुम यहाँ अस्वस्थ होकर आए थे न? तुमको किसी की नजर लग गई थी। मैंने उसे झाड़ दिया और तुम तोते की तरह से चहकने लगे।"

मेरे मुँह से निकल गया—"भाभी आज मैं तुम्हारे सामने मात खा गया।"

भाभी बोली—"तुम हमारे सामने हमेशा मात खाते रहे हो, आज कोई नई बात कह रहे हो ?"

मैंने उनके पैर छूते हुए कहा—"बस भाभी बहुत हो चुका, अब मुझे क्षमा कर दो।"

भाभी गम्भीर हो गईं। बोलीं—"अच्छा, यह सब तो रही मज़ाक, अब यह बताओ कि मैं तुम्हारा माध्यम बन कर सौदा पटा दूँ ?"

मैंने कह दिया—"एक बात तुमको नही मालूम शायद भाभी ! इस समस्या का समाधान इतना आसान नहीं है, इतना सरल नहीं है। असल बात यह है कि इसके लिए मेरी ओर से कोई प्रयत्न सम्भव नहीं है। और बिना प्रयत्न किए भइया इस सम्बन्ध को कभी स्वीकार नहीं करेंगे।"

भाभी बोलीं—"यू मीन गिरीशबाबू ?"

मैंने कह दिया—"हाँ !"

अब उन्होंने उत्तर दिया—"अच्छी बात है। मैं देखूँगी।"

इतने म बज गए नौ और रुचिनाथबाबू ख़रामा-ख़रामा आ पहुँचे और मुझे बैठा देखकर दरवाज़े से ही चिल्ला उठे—"हल्लो सतीशबाबू, हाउ डू यू डू ?"

मैंने उत्तर में कह दिया—"आपके आशीर्वाद से बहुत स्वस्थ और प्रसन्न हूँ।"

उन्होने कहा—"आज प्रसन्नकान्ति घोष मिले थे, नाच-घर में ! उन्होने जो समाचार दिया है, उसको सुनकर तुमको खुशी होगी।"

मैंने पूछा—"क्या ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"सात वर्ष सपरिश्रम कारागार-प्रवास श्रीमान् एक हज़ार आठ विमल विश्वास को।"

यह समाचार सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं सोचने लगा—शैल वास्तव में बहुत भली और भोली नारी है। उसको इतना भी ज्ञान नही है कि मार डालने के प्रयत्न वाला यह अभियोग अब उठाया नहीं जा सकता! अब तो यह पुलिस-केस बन गया है। जान पड़ता है कानून के इस पहलू की ओर उसका ध्यान ही नहीं आकृष्ट हुआ। मगर अभी तो विमल विश्वास इसके विरोध में अपील भी करेगे ही। इसलिए खुशी मनाना भी क्या मानी रखता है! पर इस सम्बन्ध में एक बात अवश्य आश्चर्यजनक है कि घोषबाबू ने 'जजमेण्ट' तब लिखा, जब प्रफुल्लबाबू स्विटजरलैंड चले गए। तो घोषबाबू से उनकी बातचीत भी अवश्य हो गई होगी।

क्षण भर में मै यह सब सोच गया और उसी समय मैंने फोन उठाकर शैल को इसका समाचार दे दिया। शैल ने उत्तर में कहा—"समाचार सुनकर मुझे दु ख ही हुआ। विमल विश्वास ने मेरे साथ चाहे जो कुछ किया हो, लेकिन कुछ भी हो, उसके प्रति मेरी मानवी सहानुभूति तो है ही। वह अगर जेल चला गया, तो मेरा उत्तरदायित्व बहुत बढ जायगा। जायदाद की सारी देख-रेख मुझे ही करनी पडेगी। और उस दशा में तुम्ही सोचो कि साधना के जिस पथ पर आज मै आ पहुँची हूँ, उसमें अब और आगे कैसे बढ़ूँगी! खैर, वह सब तो देखा जायगा। रुचिनाथबाबू को मेरी ओर से बहुत बहुत धन्यवाद दे देना, बल्कि ठहरो, तुम यह फोन उन्ही को दे दो, मुझे भी इस सम्बन्ध में उनसे बात करनी चाहिए और मैंने रिसीवर बाएँ हाथ में लेकर रुचि-नाथबाबू को देते हुए कह दिया—"लीजिए, श्रीमती विश्वास आपसे बात करना चाहती हैं।"

और इसी समय धनी ने बादाम के दूध वाला ग्लास मेरे सामने टेबिल पर रख दिया।

चपरासी ने कुछ डरते-डरते उत्तर दिया—"दो बाबू साहब उधर खड़े हैं। वे आपसे कुछ बात करना चाहते हैं। मैं उन्हीं का नौकर हूँ।"

अब शैल ने कह दिया—"हम रास्ते में किसी बाबू-आबू से नहीं मिला करते। जाओ, कह दो जाकर।"

चपरासी थर-थर काँप उठा। जान पड़ा—उसने शैल को पहचान लिया था। हाथ जोड़कर बोला—"सरकार, मैंने आपको पहचाना नहीं, मुझसे बड़ी भूल हो गई। मैं इसकी माँफी चाहता हूँ। मैं आपका बहुत पुराना गुलाम हूँ। बहुत दिनों में देखा था, इसलिए······"

इतने में शैल बोल उठी—"अच्छा, अच्छा, समझ लिया। उनसे जाकर कह दो कि यहाँ कोई बात नहीं हो सकती। फोन पर 'एप्वाइण्ट-मेण्ट' ले लें, तब जिस वक्त मैं आने के लिए कहूँ अपने पैरोकार को भेज दें। मैं उनसे तो अब कोई बात ही न करूँगी। समझ गए? जाओ! जैसा मैंने कहा है बिलकुल वैसा ही एक शब्द बिना इधर-उधर किए हुए कह देना।"

चपरासी चला गया। अब मैंने कह दिया—"तुम्हारे इसी गुण पर मैं मुग्ध हूँ शैल! तुम सचमुच राजकुमारी हो।"

शैल मुस्कराई और बोली—"तुम अधूरे हो सतीश, पूरी बात तो कभी कहना ही नहीं जानते। मैं पूछती हूँ अगर इस वाक्य के पहले 'रूपनगर की' शब्द और जोड देते तो तुम्हारा क्या बिगड जाता? या कुछ ऐसी बात है कि अब मैं रूप नाम की चीज़ खो चुकी हूँ?"

शैल की बात और उसकी आपत्ति में सार था। इसलिए मैंने कह दिया—"सब बाते एक साथ नहीं कह दी जाती। क्यो कि हर बात समय-समय की होती है। फिर, अकेला राजकुमारी शब्द जो तुम्हारे लिए मेरे हृदय से फूटकर निकला है, क्या अपनी गरिमा में वह कुछ कम महत्व का है?"

शैल मुस्कराने लगी। बोली—"मैं तो मज़ाक कर रही थी। खैर,

अब हम इस तरफ से न जाकर इधर से जायेंगे।" और इतना कहकर वह प्रतिकूल दिशा की ओर मुड़ गई। मैंने पूछा—"क्यों, डरने की तो कोई बात थी नहीं!"

शैल ने उत्तर दिया—"मानती हूँ कि डरने की बात नहीं है, लेकिन जो बात मैंने अभी उस लोचन नाम के चपरासी से कही है कि मैं कुमार की शक्ल देखना भी पसन्द नहीं करती, बस, इसी कारण मैंने इस मोड़ को गति दी है।" यह बात भी शैल की ठीक ही थी। इसलिए मैंने कह दिया—"हाँ, ठीक है, खैर! अब हमारा रास्ता बिल्कुल साफ हो गया। आज ये लोग तुम्हारे पास आएँगे। खुद नहीं आएँगे, तो किसी को भेजेंगे। और यह निश्चित है कि तुमको मिलाने की चेष्टा भी करेंगे। कहेंगे, जो कुछ हुआ, उसके लिए कुमार साहब बहुत लज्जित हैं। शायद यह भी कहें कि अगर भाभी मुझको क्षमा नहीं करेंगी और बचाएँगी नहीं, तो मैं आत्मघात कर लूँगा। इसलिए मैं तुमको सावधान कर देना चाहता हूँ कि अब उनसे किसी प्रकार का समझौता न होना चाहिए। जो पाप उसने किया है, उसका फल उसे मिलना ही चाहिए।"

शैल अब बहुत गम्भीर हो गई थी। उसने उत्तर दिया—"नहीं, सतीश! मैं अब इस सम्पूर्ण जायदाद की देख-रेख की झँझट में नहीं पड़ना चाहती। इतना तो तुम मुझे अब तक जान ही चुके होगे कि मुझे धन और वैभव के प्रति कोई मोह नहीं रह गया है। विमल जेल में सड़ता रहे और मैं जायदाद की स्वामिनी बन कर क्वीन विक्टोरिया की तरह राज्य करूँ, यह मेरे बस का राग नहीं! मैं राज्य नहीं चाहती। मैं तो अब शान्ति चाहती हूँ। इसीलिए मैं सोचती हूँ कि अगर किसी भी तरह कुमार इस दण्ड से मुक्त हो जाय, तो बड़ा अच्छा हो। अगर हमको इस प्रयत्न में सफलता न मिली और कुमार को जेल भोगना ही पड़ा, तो मैं जीवित रहते हुए भी मर जाऊँगी। मेरे मुँह पर वह कालिमा

पुत जायगी, जो फिर किसी भी तरह से नहीं धुल पाएगी। जरा सोच देखो सतीश, वह नारी सुख शान्ति के साथ कैसे सो सकती है, जो एक ओर से पति-हीना हो और दूसरी ओर भले ही अपने कर्मों से हो, हो उसका देवर जेल में, मैं झूठ कह रही हूँ ?"

हम बँगले की ओर बढते चले जा रहे थे। किन्तु मुझे शैल की इस बात ने फिर भ्रम मे डाल दिया, तो क्या शैल फिर अपने को धोखा दे रही है ? क्या उसके मन में अब भी मेरे लिए कोई स्थान नही बना है ? क्या अब भी हम दूर-ही-दूर बने रहेगे ?—लेकिन शायद इसीलिए शैल, कुमार को मुक्त करा देना चाहती है। अब सारी बात समझ में आ रही है। वह यह नही चाहती कि हम अगर शैल के साथ दाम्पत्य-जीवन भोग करें, तब दुनिया को यह समझने का अवसर मिले, कि इसी दिन के लिए, इन लोगो ने मिल कर कुमार को जेल मे पहुँचा दिया है। वाह ! शैल, तुम धन्य हो ! लोक-लाज जीवन का बहुत बडा पहलू है। सम्पत्ति, वैभव और आनन्द के प्रमाद मे आकर जो व्यक्ति लोक-लाज की उपेक्षा करता है, मैं उसको सफल नही मानता और सत्य तो यह है कि दुनिया उसको सफल नही मानती। अब मुझे कुछ ऐसा जान पडा, मेरी ही आँखें मुँदी हुई रही हैं। शैल मुझसे अधिक दूरदर्शिनी है। और तब बँगले की सीढी पर चढते-चढते मैंने विवश होकर कह दिया—"तुम ठीक कहती हो शैल ! हम ने जो सोचा था, वह उस समय भले ही सही रहा हो, पर अब बिल्कुल गलत मालूम पडता है। परिस्थितियों की पुकार है कि हमको कुमार को छुडाने में अब पूरा सहयोग देना पडेगा।"

मैं ये शब्द कह ही रहा था कि शैल वराण्डे में पहुँचते-पहुँचते, बहुत गम्भीर होकर बोली—"अब हमारा काम बहुत बढ गया है और गिरीश-जी की सहायता के बिना किसी तरह भी काम नही चलेगा। अच्छा, तुम भइया को 'ट्रँक कॉल' करने का प्रबन्ध करो, फोन पर जा बैठो और जब वह बात करने लगें, तब मुझको बुला लेना। तब तक मैं देखती हूँ

कि खाने में क्या विलम्ब है। मैं तो बहुत थक गई हूँ और मझे बड़ी भूख लगी है।"

इतना कहकर शैल भीतर चली गई और जैसे ही मैं फोन पर गया, वैसे ही घण्टी अपने आप बज उठी। मैंने रिसीवर जो उठाया, तो अविनाश बोल उठा—"ओ! सतीश, तुम मुझको बिलकुल ही भूल गए? हाँ भाई, भूल ही जाना चाहिए! तुम्हारी परिस्थिति में अगर मैं होता, तो शायद मैं भी भूल जाता। खैर, मैं इसके लिए तुमको दोष नहीं देता। अच्छा, विमल की जमानत तो किसी तरह हो गई, हालाँकि बडी मुश्किल से हुई। मगर अब मुझे तुम से कहना यह है कि माई डियर जो कुछ हुआ, सो हुआ। विमल ने जो कुछ किया, उसका उसे बहुत दुख है। सच पूछो तो उसकी हालत अब दयनीय हो गई है। थोडे से ही अरसे में उसका वजन दस पौण्ड घट गया है। एक तरह से बीमार ही उसे समझना चाहिए। बल्कि मझको तो भय है कि कहीं उसे टी० बी० न हो जाय! ··हल्लो ·हाँ, तो अब इस मामले में तुमको उसके साथ सहयोग ही करना चाहिए। बिगड़ो मत, देखो मैं उपदेश नही देता हूँ। मैं तुमसे विनयपूर्वक कह रहा हूँ और अगर तुमको मेरी इस भाषा से पूरा सन्तोष नहीं है, तो लो, मैं स्पष्ट कहता हूँ कि मै श्रीमती विश्वास के देवर को तुमसे भीख की तरह माँग रहा हूँ! मेरे शब्दो में ज़रा भी 'एग्ज़्याग्रेशन' नहीं है। परिस्थिति सब करा लेती है। मैं भी परिस्थिति के हाथो बिका हुआ हूँ। ···क्या बकते हो, सुनो भी, मैंने किसी लोभ के वश विमल का साथ दिया था? छिः छिः! शर्म नहीं आती तुमको मुझ पर ऐसा चार्ज लगाते हुए? तुमको मालूम नहीं, विमल के साथ मेरे कैसे सम्बन्ध रहे है! खैर, छोडो, छोडो, इस बात को! यह तो अपनी-अपनी रुचि की बात है। ·· अरे जाओ, उससे कहो, जो तुमको जानता न हो सतीशबाबू! बातें छिपी नहीं रहती बाबू! आखिर तुम्हारी प्लानिंग तो थी ही स्विट्ज़रलैण्ड जाने की! तुम नहीं गए, तो प्रफुल्ल

बाबू गए। एक नहीं गया, दूसरा गया· 'हाँ, हाँ· ·'मैंने लिखा था; मैंने छपवाया था सब कुछ! तो, अब तुम क्या चाहते हो ? सम्पादक से माफी तो मँगवाली ! तुम्हारे भैया ने कोशिश तो बहुत की थी, मुझको भी कटघरे में लाने की ! लेकिन वह तो कहो कि भाग्य साथ दे गया, इसलिए इस तस्वीर के साथ में गिरफ़्त से बच गया। खैर, इस बात को भी जाने दो। ··हाँ ··हाँ अच्छा माफी माँगता हूँ ! बस, अब तो खुश हो न ? तो मेरा कहना यह है कि भगवान् से डरो, कहा मानो, समाज की ओर भी जरा देखो ! कुमार यदि जेल चला गया और तुमने अलग से, एक दूसरी जायदाद पर, जो तुम्हारी अपनी पूरी जायदाद से कहीं बडी है, अधिकार भी कर लिया और साथ-ही-साथ श्रीमती विश्वास के साथ तुम्हारी 'सिविल मैरेज' भी हो गई, तो इसमें तुम्हारी कौन सी इज्जत बढ जायगी ! कानपुर में सिविललाइन्स पर अपनी गाडी में बगल में श्रीमती विश्वास को बैठाकर जब तुम घूमने निकलोगे, तो क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे पुराने मिलनेवाले हर चौराहे पर, रोक-रोक कर, तुम्हारा अभिनन्दन करेंगे, फूलो के गजरे तुम्हारे गले में डालेंगे ? अरे प्रोफेसर साहब हल्लो···हल्लो, एस, हाँ, मै यह कह रहा हूँ कि जैसे भी बने तुम कुमार को इस समय तो बचा ही लो। और फिर तुम्हारे मन मे जो आए, जो तुम को भाए, वह कर उठाओ। कौन तुमको मना करता है ! और सुनो, जब तुम्हारी 'सिविल मैरेज' होगी, तो फूलों का सबसे बड़ा गजरा सब से पहले मेरा ही तुम दोनों के गले में पडेगा। सच, और रह गया कुमार, सो इस विवाह का पूरा खर्च मैं कुमार से तुमको दिलवा दूँगा। ·बोलो, अब तो खुश हो ? कह दो मियाँ हाँ, एक बार प्रेम से प्यारे ! ···ह···ह···ह···ह, हाँ, हाँ ··अच्छी बात है। हाँ·· हाँ···मै ही आऊँगा ! ···अरे मै मना लूँगा, उनको भी ! तुम कैसी बात करते हो···और सुनो, हमारे भी दिन कभी रहे है बाबू। क्या समझते हो · मुझको ? रहने भी दो, अरे जाओ भी, · तो मै कुछ कहता थोड़े

ही ।मैं तो सब तरह से तुम्हारे साथ ही हूँ···अच्छा, नहीं···नहीं··· आज नहीं ··यह खाना वाना आज कुछ नहीं चलेगा ··बस, डियर यह तो तभी शुरू होगा, जब कुमार इस केस से बिलकुल मुक्त हो जायगा···कुछ भी कठिन नहीं है।···यार, यह सब हो जायगा·· बस, तुम्हारा सहयोग हमें मिलना चाहिए···तो···कल सबेरे आठ बजे·· एस···चेरियो·· !"

: ३० :

शैल फोन पर भाई साहब से बातें कर रही है और मैं पास ही बैठा सुन रहा हूँ :

"गिरीश बाबू हैं ?···अच्छा, अच्छा ·नमस्कार करती हूँ ··दीदी अच्छी तरह तो हैं ? ···मुन्ना को नहीं भेजा आपने हाँ, हाँ·· सो तो ठीक ही है माँ के बिना ··अच्छा, खीर खा रहा है बहुत थोडे से थे खिलौने · अच्छा ·अच्छा भगवान करे हजार वर्ष का हो···हाँ, वो तो तय है। · आपको ड्राफ्ट दिखलाए बिना, आपके आए बिना उसकी रजिस्ट्री कैसे होगी·· हाँ· हाँ · मगर···फिर बहुत देर हो जायगी। देखिए, जो कुछ हमको करना हो, उसे अविलम्ब कर डालना चाहिए··· आपने देख ही लिया क्या कसर रह गई थी मेरी 'डेथ' में ! कर्म का थोड़ा-सा भोग अभी शेष है, इसीलिए जीना पड रहा है।· ·नहीं· ·नहीं ··ऐसा कैसे हो सकता है ·? हाँ· ·हाँ ··लीजिए, लीजिए, अब मैं नहीं बोलूँगी। मगर क्या यह बात आपके मन के भीतर से उठी है ? क्या मेरा ऐसा भाग्य है ? मेरे सिर पर आपके वरद हस्तो की छाया रहेगी, तो तो मन का धर्म है, इसलिए आँसू आ ही जाते हैं (कण्ठ भर आया है) अच्छा, मैं केवल मतलब की बात करूँगी। हाँ···अच्छा देखिए, अगर आपके मन में यह भाव उठा है, तो मैं इसे अपना सौभाग्य ही समझती हूँ, मगर उस दशा में कुमार को जेल में सडने देना·· दुनिया क्या कहेगी ?—यही न कहेगी कि मैं अपने पशुधर्म की तृप्ति के लिए एक अरसे से यह जाल बना रही थी। इसी दिन के लिए मैंने इस नाटक की रचना की थी ? मानती हूँ···हाँ यह भी मानती हूँ · किन्तु लोक-लाज की उपेक्षा करके अपमान, तिरस्कार, उपेक्षा, बहिष्कार का जीवन बिताने में सुख और शान्ति भी मुझे मिलेगी ?···नहीं···नहीं···यह मुझे शोभा नहीं देता—और आपका भी गौरव गिर जायगा। ऊँचा न उठ पाएगा। दुनिया से डर कर चलने में मैं कोई कायरता नहीं मानती।

आखिर यह दुनिया भी तो उसी भगवान की बनाई हुई है, जिसके हम एक अंग हैं। इसलिए उसका अनुशासन हमको मानना ही पड़ता है। ···यही सत्य है, यही न्याय है। अपराधी के प्रति दया का अर्थ मैं अन्याय नहीं मानती; अच्छा मान लीजिए कि आज विमल विश्वास को फाँसी हो जाय तो क्या समझते हैं कि मुझे सुख मिलेगा? मेरे आँसू सूख कर फूल की तरह आँखों में ही खिलकर बदल जाएँगे? ···नहीं ·· नहीं· ·बिलकुल नहीं···इसके बिना·· मुझे कभी शान्ति नही मिलेगी! ···अच्छा · हाँ ·· हाँ · आँ · हाँ ··· बस, आपका यही आशीर्वाद मेरे जीवन का नवनिर्माण करने में सहायक होगा। · हर्ज तो होगा ही ··· असुविधा भी होगी · मगर यह सब तो मेरी ओर से हो रहा है न? इसलिए आप 'प्लेन' से आइए। खर्चे की चिन्ता न कीजिए। · · नहीं · · नही ·· मैं इसे अपव्यय नहीं मानती। आप मेरे बड़े भाई के समान हैं और अब तो इस नए प्रस्ताव के अनुसार मेरे पिता के समान हो गए हैं। इसीलिए कहती हूँ कि सब यहीं छूट जाता है। कुछ भी साथ नही जाता। साथ जाता है केवल यही विश्वास, यही आस्था, यही धर्म और सत्य कि मैंने इस दुनिया में आकर कुछ ऐसे काम किए जिससे भगवान की इस अद्भुत रचना क्रम को थोड़ी गति मिली। यही सद्गति है मनुष्य की, यही मोक्ष है। बस, ··अब मुझे आपसे यही निवेदन करना है कि कल का प्रातःकाल आप यही देखेंगे·· अच्छा ··अच्छा ··· दो दिन मैं और किसी तरह काट लूँगी। ···हाँ ··· हाँ ·· सुनिए, देखिए, तो ऐसा कीजिए, दीदी और मुन्ना को साथ लेते आइए। सच, आप जानते हैं; मुझे कितना सुख मिलेगा! · अभी नहीं, नही, नहीं ··· जब तक कुमार इस अभियोग से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक यह सब मेरे लिए शोभन न होगा ··· हाँ · हाँ अच्छी बात है। · मैं चली आऊँगी · ·वहीं सही ·· अब तो वही मेरा घर रहेगा। यहाँ रहकर मैंने क्या कुछ नहीं सहा है?—और जब मेरे जीवन का फिर से निर्माण हो

रहा है तब ·· तब तो मुझे वही रहना ही पडेगा, यह बात दूसरी है कि 'सीज़न' आन पर आप सब के साथ ही मै भी यहाँ आ जाया करूँगी ···हल्लो · हल्लो···ह्·· लो···ओ· एस·· एस ··मुन्ना ? मुन्ना ?··· मिट्ठी जियो जियो खेलो; देखो दो दिन के बाद जब तुम यहाँ आओगे, तब मै तुम्हारे साथ खेलूँगी, गाऊँगी । · ·अच्छा ··अच्छा नाचूँगी, गोद मे लेकर अच्छा ·जियो ·जियो ।" और इतना कह-कर शैल ने फोन का रिसीवर मुझको दे दिया और भइया का स्वर मेरे कान में आन लगा । मैंने कहा—"चरण छूता हूँ ।· अच्छा यह सब आप क्या कह रहे हैं ?···"

वे बोले—"देखो सतीश, मन के धर्म को कोई मनुष्य छिपा नहीं पाता । व्यवहारों से और कर्म से वह कभी-न-कभी, किसी-न-किसी तरह प्रकट हो ही जाता है । लोग मन के धर्म में भी एक गाँठ लगा लेते हैं । उससे गति में अन्तर पडता है और गति का अन्तर अवरोध उत्पन्न करता है । वह अवरोध निर्माण को, सृष्टि को, हानि पहुँचाता है । इस से पहले तो मैंने तुमसे इस तरह का कोई प्रस्ताव किया नहीं था ! तुम सोचते होगे कि मै इस सम्बन्ध में उदासीन बन गया हूँ, लेकिन कर्तव्य का भवन, अध्ययन की आधार-शिलाओ पर ही दृढ़ता के साथ खड़ा होता है । मैंने जब स्वयं आकर वहाँ तुम्हारे सम्बन्धों को अपनी आँखों से देखा, आत्मा के स्वरों से पहचाना और निरन्तर अनुभव किया, तुम्हारे यहाँ आ जाने पर भी और फिर यहाँ से चले जान के बाद भी । मुझे इस सम्बन्ध में एक बात की खुशी और है कि तुमने मुझसे कुछ छिपाया नहीं और श्रीमती विश्वास ने भी सदा अपना निर्मल रूप ही प्रकट किया । तुम दोनो का मन जब इस सीमा तक एक हो गया है, तब मेरे समक्ष इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है कि निकट भविष्य में वैधानिकरूप से भी तुम दोनो को एक कर दूँ ! हाँ···हाँ···मगर सारी बातें समझने में···मानता हूँ कि मुझे आवश्यकता से कुछ अधिक समय

लग गया है और वह 'विल' वाली जो समस्या है, उसे भी अभी मुझे समझना बाकी है।···नही···नहीं ··ऐसी कोई बात नहीं है···पर एक बात मै सोचता हूँ कि श्रीमती विश्वास तुम्हारे लिए सर्वथा उपयुक्त है, तब वे अपने जीवन से सन्यास लेने की प्रवृत्ति क्यो दिखला रही है ? अगर मै देखता कि वे बिना तुम्हारे जी सकती है और अपना जीवन एक आदर्श विधवा नारी की भाँति बिता सकती हैं, तब तो उनका अपनी जायदाद का मुन्ना के नाम कर देना, कुछ अर्थ भी रखता था, किन्तु वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। मैंने अभी उनसे बात-चीत कर ली है और मुझे प्रसन्नता है कि उन्होने अपने आपको कहीं से भी मुझ मे छिपाया नहीं है। ऐसी दशा में यही उचित भी है। ··नही नहीं··· नहीं···ऐसा नहीं होगा···ऐसा कभी नहीं होगा···इस सम्बन्ध को तुम्हारे साथ जुटा देने मे मुझे तभी प्रसन्नता होगी, जब 'विल' का विचार वे अपने मन से बिलकुल निकाल देंगी···नहीं···नहीं सतीश, ऐसी कोई बात नहीं है, जो उचित और स्वाभाविक है, वही मै कह रहा हूँ ! ···हाँ,···हाँ · आँ तुम्हारी भाभी की भी यही राय है। ··बल्कि उस दिन जब श्रीमती विश्वास की बीमारी का तार आया था और 'विल' का भी उसमें उल्लेख था, तब मुझमे तुम्हारी भाभी ने ही इसका संकेत किया था। वैसे चाहे इस दिशा की ओर तुरन्त मेरा ध्यान न भी जाता, किन्तु अब सारी बातें मेरे समक्ष बिल्कुल स्पष्ट हो गई है और मै सोचता हूँ कि केवल मेरे दो-चार दिन के सानिध्य से ही जो नारी हमारे परिवार के लिए इतना उत्सर्ग करने के लिए तत्पर है, वह अवश्य ही एक असाधारण नारी है। उसकी पवित्रता में किसी प्रकार का सन्देह करना अपनी ही हीन मनोवृत्ति का परिचय देना है। खैर .बाकी बातें मिलने पर होंगी। यहाँ अब सब काम ढग पर आ गया है ! और दो-चार दिन के लिए तुम्हारी भाभी और मुन्ना को लेकर मै परसों यहाँ से चल दूँगा—परसों या कल। अच्छा, यह लो मुन्ना तुमको प्रणाम

कर रहा है।"—और मैंने सुना कि यह स्वर मुन्ना का ही है—"चाचा जी, मै आपके पैर छूता हूँ ! और चाचा जी हमने अभी अम्मा से कहा था कि तुम भी चलो न वहाँ जहाँ चाचाजी रहने लगे है तो उन्होंने मान लिया है और चाचा जी, इस बार हम रेल से नही हवाई जहाज से उडकर आएँगे और दो-तीन घण्टे में ही आपके पास पहुँच जायेंगे। बस, तब तुम हमको गाडी पर घुमाने ले चलना और वहाँ बडे-बडे खिलौने, रेलगाडी, हवाई जहाज, सब हमको खरीद देना। फिर हम और तुम मिल कर इन खिलौनो से खलग और टॉफी खाएँगे और मिठाई रसगुल्ला और रबडी, मलाई सब खाएँगे और चाचा जी आपको भी खिलाएँगे। बस, अब फिर ! अच्छा... आ...। फिर पैर छूता हूँ। आशीर्वाद दो, कहो, खुश रहो अच्छा, बस !"

जब फोन से यह सब सारी बातें हो गई तो मैं वहाँ से उठकर जो शैल के पास गया तो मै क्या देखता हूँ कि वह रामू से कह रही है—"देखो रामू, हमारी पाठशाला में ५२ लड़कियाँ है और २० बच्चे। इस प्रकार ७२ 'डिशेज़' बनेंगी ! दो-दो मिठाइयों की, दो-दो नमकीन की और एक-एक गिलास दूध की। यह सब सामान आज तैयार हो जाना चाहिए। दावत का समय मैंने छै बजे शाम का रक्खा है। मिठाइयों का इन्तज़ाम मै कर लूँगी, लेकिन पकौडी और बैंगनी ये दो चीज़ें तो तुझी को बनानी पड़ेंगी। समोसे और दालसेव भी बाज़ार से आ जायगी। और देखो, तुम्हारे यहाँ प्लेट्स तो काफी है हीं, ग्लास शायद कुछ कम पडे तो ऐसा करो कि रुचिनाथ बाबू के यहाँ से ले आना। मै अभी फ़ोन पर कहे देती हूँ। और इसके बाद रात को रुचिनाथ बाबू, रुचिता देवी और बेबी किरण हमारे यहाँ खाना खाएँगे। हो सकता है कि अविनाश बाबू भी आ जायँ। मगर अभी तय नहीं है। खैर, अगर तुम अकेले यह सब सामान तैयार न कर सको, तो रुचिनाथ बाबू के 'कुक' को भी बुला लो।"

राम् बोला—"सब कर लूँगा आप चिन्ता न करें।"

इसी समय एक पुष्पगुच्छ के स्टैण्ड को बगल में पड़ा देख शैल ने झिडकते हुए कहा—"मने सुबह तुमसे क्या कहा था? तुमने अभी तक इसे हटाया क्यो नहीं! यह लापरवाही मुझे पसन्द नही! फौरन हटाओ! और हाँ, देखो, बँगले की पूरी सफाई हो जानी चाहिए। आज नहीं। क्योंकि तुम्हारे पास काम है। लेकिन कल जरूर हो जानी चाहिए!—दोपहर से पहले! समझे? गिरीश बाबू आने वाले हैं!"

"जी, बहुत अच्छा! सब काम हो जायगा, देवीजी!"

मै चित्रलिखित-सा खड़ा-खडा यह सब देख रहा था और सुन रहा था। भावना में डूबा-डूबा, खोया-खोया-सा मै अपने कमरे में आ गया और कुर्सी के बदले पलँग पर आकर चुपचाप, लेट गया। दस मिनट बाद मै क्या देखता हूँ कि शैल मेरे पास कुर्सी डाल कर आ बैठी और मै आँखें मूँदे यथावत लेटा रहा। जान पड़ता है, शैल समझ गई कि मै सो नही रहा हूँ, इसलिए वह बोली—"ओ सोनेवाले पथिक अब जाग पड़ो! नहीं तो बादल खिडकी के रास्ते से भीतर घुस आएँगे और पानी की बौछार से तुम्हारे कपडे तर-बतर हो जाएँगे। तुम्हें सरदी लगेगी और तुम ठंडक से सी-सी करने लगोगे और तब तुम्हारे अड़ौसी-पडौसी, जीवन साथी दुःखी होगे! मार्ग बहुत बड़ा है। पथ बडा चौड़ा है। साथियो की आगे और पीछे कमी नही है, लेकिन जो तुम्हारा कोई अपना निज का साथी भी है, वह उस भीड़ में सबके सामने तो तुमको अपने बदन से चिपका लेने का साहस करेगा नहीं, और लज्जा भी उसमें होनी स्वाभाविक है। इसलिए वह दूर दूर की ही आत्मीयता प्रकट कर सकेगा। इसका तुम बुरा न मानना। देखो पथिक उठो, नहीं तो जैसा मै कह रही हूँ, वैसा होकर रहेगा।"

और शैल का इतना कहना था कि मैने देखा—खिड़की खुली है

और सामने की शैल हरी-भरी उपत्यका पर धूप आकर खिलखिला कर हँस रही है। वायु तेजी के साथ खिड़की में घुसती हुई अपने साथ पानी की बौछार भी लेती आई है। ऊपर पडा हुआ शाल पानी की बूदों से तर हो गया है और शैल दरवाजे के पास खडी-खडी मुस्करा रही है।

: ३१ :

दो दिन बाद भाभी और मुन्ना को लेकर भाई साहब आ गए। शैल और हम दोनों नीचे बस-स्टैण्ड पर पहुँच गए थे। सामने पड़ते ही मुन्ना मेरे पैरों में लिपट गया। मैंने उसे गोद मे उठा लिया। दोनों हाथों की मिट्ठी ली और जब मैं उसे उतारने लगा तो शैल ने उसे गोद में ले लिया। मैंने भइया और भाभी के चरणों की रज मस्तक से लगा ली। इसके पूर्व जब मैं मुन्ना को प्यार कर रहा था, तब शैल ने भी भइया और भाभी के चरण छुए। शैल बहुत पुलकित थी और उसकी आँखों में आनन्दाश्रु छलछला आए थे। थोड़ी देर में हम सब बँगले पर आ गए। आते ही हमने देखा कि पाठशाला के बच्चे एक पंक्ति में खड़े गा रहे थे:

'मंगल-स्वागत, मंगल-गान'

इस दृश्य को देख कर भइया और भाभी बहुत प्रभावित हुए। भइया ने कहा—"इन बच्चों ने आज हमारा जो स्वागत किया है, वह मेरा अपना उतना नहीं है, जितना भारतीय संस्कृति और परम्परा के पावन उद्घोष का है। इसका सारा श्रेय शैलकुमारी को है, जिसके पवित्र स्नेह का मैंने निरन्तर अनुभव किया है। मुझे पूरी आशा है, कि यह पाठशाला स्थायी रूप से अपना यह कार्यक्रम निरन्तर गतिशील रक्खेगी और उत्तरोत्तर उन्नति करती हुई एक दिन एक महाविद्यालय का रूप धारण कर लेगी।" इसके बाद शैलकुमारी ने भइया के आशीर्वाद की गुरुता को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हुए घोषणा की—"तुम सबको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि दादाजी ने इण्टरवल के समय सदा बच्चों को पाव-पावभर दूध नित्य पिलाने की व्यवस्था कर दी है। और इसका शुभारम्भ आज से ही हो रहा है।" इनका यह प्रसाद प्राप्त कर हम वास्तव में बहुत गौरवान्वित हुए हैं।"

यह सारा आयोजन शैल ने मुझसे गुप्त रक्खा था, इसलिए मुझे आशातीत आनन्द मिला। नाना कल्पनाओं में डूबा हुआ मैं बिलकुल ही मूक बन गया था। दोपहर को हम सब जब एक साथ भोजन पर बैठे तो भाभी ने कहा—"हमारी जिन्दगी में ऐसा भी अवसर आएगा, जब मैं ऐसी देवरानी पा जाऊँगी, जो व्यवस्था के क्षेत्र में मुझसे कहीं अधिक कुशल होगी, यहाँ तक तो मैं सोच ही न सकती थी।" अब भइया बोले—"मैं जब पिछली बार सतीश के कारण मुन्ना का जन्म-दिन मनाने के लिए यहाँ आया था, तब मैं शैल जैसी आचारवान नारी को अपने इतने निकट पा जाने की कल्पना भी न कर सका था।"

इतने में मोर बोल उठा। भाभी बोलीं—"मुन्ना देखो, तुमने सुना ? कौन बोला ?"

मुन्ना ने उत्तर दिया—"मोर"

भाभी ने कहा—"मोर मीन्स माइन · मतलब यह है कि वह बोल रहा है, हम लोगो की इन बातो को सुन कर जो मेरा है—मेरा बन चुका है।"

शैल मुस्कराई। सिर से खिसकती साड़ी को पुनः यथास्थान स्थापित कर बाएँ हाथ की अँगुलियो से उसकी किनारी को वक्ष पर ले आकर वह बोली—"सब आप लोगों के आशीर्वाद का, मगल-कामनाओं का प्रतिफल है। इसमें मेरा तो कहीं कुछ है नहीं।"

जिस समय शैल यह बात कह रही थी, उस समय यकायक मेरी दृष्टि उस पर जा पहुँची। मैं जो कुछ कहना चाहता था, जो कुछ मेरे मन में आ रहा था, वह जहाँ-का-तहाँ स्थिर होकर बैठ गया। क्योंकि तभी भइया ने कह दिया—"सतीश तो अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए यहाँ आया था।" और इसके बाद भाभी बोल उठीं—"और मुझे यह जान कर बड़ी खुशी हो रही है कि उसने स्वास्थ्य के साथ-साथ अपने आपको भी सुधार लिया है।"

भाभी का इतना कहना था कि मैं झट पानी पीकर वहाँ से चलने लगा। शैल ने अपनी दृष्टि नीची कर ली और बड़ी मुश्किल से वह अपने प्रकृत हास को रोक सकी। मुझे यकायक उठता देखकर भइया बोल उठे—"बैठो, बैठो, सतीश! मैं देख रहा हूँ कि तुम अपना 'रोल' बहुत अच्छा अदा कर रहे हो। अच्छी बात है। हम अब इस विषय की बात तुम्हारे सामने नहीं करेंगे।"

लेकिन भाभी बोल उठीं—"तुम भले ही न करो, मगर मैं तो चूकूँगी नहीं। कितने दिनों के बाद तो यह सौभाग्य मिला है।"

इतने में मुन्ना बोल उठा—"अम्मा, अब हम उनके पास बैठ कर खाएँगे।" यह संकेत शैल की ओर था और वह इस बात को सुन कर आनन्दविह्वल हो उठी। रामू भोजन परोस रहा था। शैल बोली—"एक डिश खीर और तो लाना। मुन्ना खीर खाएगा।"

इतने में मुन्ना बोल उठा—"न, न, अलग से मत लाओ। हम तो साथ ही में खाएँगे।" और वह शैल की पीठ से जाकर लटक गया। दोनो हाथ उसने शैल की गर्दन के नीचे डाल दिए और बोला—"बोलो, बोलो, तुम मुझे साथ खिलाओगी?"

शैल ने उसको अपने पास बिठा लिया और पुलकित होकर उत्तर दिया—"मैं अपने मुन्ना को रोज़ अपने साथ खिलाऊँगी।" और इतना कहती हुई शैल चम्मच को पानी से धोकर, प्लेट से खीर लेती हुई, मुन्ना के मुँह में जो डालने लगी, तो मोर फिर बोल उठा। भाभी बोलीं—"देखो, मोर फिर बोला।"

मुन्ना ने उत्तर दिया—"मोर मीन्स माइन!" और उसका यह कहना था कि भाभी और भइया हँस पड़े—शैल भी। अब भाभी बोलीं—"देखो शैल, यह तुमको तंग करेगा। खेल मे और बातों में उलझाए रहेगा। नतीजा यह होगा कि तुम ठीक तरह से भोजन भी न कर पाओगी। इसलिए तुम इसको हमारे पास भेज दो।" और

इसके बाद वे बोलीं—"मुन्ना, इधर आ जाओ, भइया ! चाची को तंग नहीं करते है !"

मुन्ना आश्चर्य से भाभी की ओर इकटक देख कर रह गया। इतने में रामू ने पूछा—"खीर और लाऊँ ?"

भइया बोले—"सतीश को दो।"

मैंने कह दिया—"नही, नही, नही ! मेरा पेट भर गया। अब मैं नहीं लूँगा।"

भाभी बोल उठी—"आज ये दोनों-के-दोनों पेट भर खाना भी न खाएँगे। खा लो सतीश, खा लो, आज की इस खीर का बडा महत्त्व है। जीवन तुम्हारा खीर की तरह रुचिकर और मधुर व्यतीत हो, यही मेरी आकाक्षा है।"

अब मैं एक दम से उठ कर चल दिया और थोड़े अन्तर से लगे 'वाश-बेसिन' में हाथ-मुँह जो धोने लगा तो शैल ने कह दिया—"अरे रामू, वो फल वाली 'डिश' तो रह ही गई ! तू बडा भोदू है। बातों में मुझे ख्याल नहीं आया और तूने वह 'डिश' ही गोल कर दी !" और इसके बाद उसने भइया की ओर देखते हुए कहा—"दादा बात यह है कि खाना खाने के बाद हम लोग फलादि दूसरे रूप में जाकर लेते हैं। मगर नीचे मैदान के शहरों मे भोजन के साथ ही लेने की प्रथा है, यह भूल इसी लिए हो गई।"

रामू फलो की 'डिश' सबके आगे रखने लगा। भइया बोले—"यह 'डिश' अब तुम सतीश को बैठक में जाकर दे आना।" मगर फलवाली 'डिश' जब मेरे सामने आई तो मैने उसे ढक कर रखवा दिया और कहा—"अब इसको तुम मुझे चार बजे देना। इस वक्त मैं नहीं खाऊँगा।"

बहुत दिन से मेरा डायरी लिखना छूट गया है। इसलिए जब भाभी और भइया आराम करने लगे और मुन्ना सो गया, तब मैं डायरी लिखने

लगा :

"सभी दिन एक से नही जाते ! कभी दुख और क्लेश; कभी सुख और आनन्द; सबेरे कुछ, सन्ध्या को और कुछ; रात को सोने से पहले मन पर उतरनेवाले प्रभावो में और भी बहुत कुछ ! जब सोचता हूँ कि इन विभिन्न अवस्थाओ मे भी मनुष्य तो एक ही रहता है, पर परिस्थितियों के नाना चक्र उसे अपने ढग से घुमाते, भगाते, नचाते और रुलाते रहते है। कितनी यात्रा तय कर आया हूँ, कितनी अभी शेष है, नही जानता ! स्वप्न कितने जीवन मे चरितार्थ हो पाते है और कितने मार्ग में अधूरे ही छूट जाते है, कौन जानता है ! जीवन की छोटी-से-छोटी घटना भी हमसे कुछ कह ही जाती है।—भले ही हम उसके आन्तरिक मर्म को ठीक समय पर ग्रहण न कर पाएँ ! .. फलों की वह तश्तरी जो मैंने चार बजे चाय के साथ देने के लिए अलग रखवा दी थी, शैल ने उसे उस समय, बेकार समझ कर, माली की छोकरी सुन्दरिया को दे दी थी।·· जो भाग वास्तव मे मेरे लिए निकला था, वह शायद नियति की दृष्टि मे, न्यायतः मेरा था नहीं ! इसीलिए मै उसे प्राप्त करने से भी वंचित रह गया !

"आज और भी एक बात हुई। अविनाश ने भइया से एकान्त में भेंट की। लगभग दो घण्टे वह उनसे बातें करता रहा और उसने उनको यह स्पष्ट बता दिया कि 'सिविल-मैरिज' करने के लिए मै मना नहीं करता, पर उस दशा में श्रीमती विश्वास अपनी जायदाद का कोई भाग न्यायतः न पा सकेगी। इसके लिए उचित तो यह होगा कि जिस सम्पत्ति पर उनका इस समय पूरा अधिकार है, उसको वे जल्दी-से-जल्दी बेच डालें। यह बात मै आपके हित में कह रहा हूँ और सच्ची बात तो यह है कि यह विचार ही मेरे मन में उत्पन्न न होता अगर आप हमारे साथ सहयोग करके सम्मिलित और संगठित रूप से विमल विश्वास को बेदाग छुड़ाने का वचन न देते।

"इस विषय को जितनी दूर तक सोचता हूँ, यही सही जान पड़ता है कि यह सारा जगत एकमात्र व्यावसायिक सिद्धान्त पर बना हुआ है। 'इस हाथ दे, उस हाथ ले' का ही चारो ओर प्रभाव दिखलाई पड़ता है।—और यह बात तब और भी प्रामाणिक बन जाती है, जब मैं यह देखता हूँ कि अगर शैल ने मुन्ना के नाम 'विल' करने की बात न कही होती, तो भाभी के मन में मेरे इस पवित्र लग्न-बन्धन का विचार ही कदाचित न उत्पन्न होता। यहाँ मैं भाभी के ऊपर किसी प्रकार का आरोप नही लगा रहा हूँ। मैं तो केवल उस विचारसरणि की ओर सकेत कर रहा हूँ जो सर्वथा स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है।

"अब सब लोग सो गए है और रात के बारह बज रहे है। मेरे मन में आता है कि जरा शैल को टटोलू जाकर, कि उसे नीद आ रही है या नही।"

: ३२ :

सोचता तो मैं यही था कि अब विमल विश्वास से कभी नहीं मिलूँगा; पर मनुष्य तो केवल सोच ही सकता है। उसके विचार और निश्चय के ऊपर भी एक महत शक्ति है, जो उसके कर्म पर नियन्त्रण रखती है। जिस समय शैल को खाने के साथ विमल विश्वास ने कोई विष दे दिया था, उसके बाद जब वह हॉस्पिटल में मरणासन्न अवस्था में पडी हुई थी, अपराधी को अधिकार से अधिक दण्ड दिलाना ही हम लोगों का एक कर्तव्य हो गया था, किन्तु आज की परिस्थिति बिलकुल भिन्न हो गई है। विमल विश्वास इसी दण्ड से यदि छुटकारा नहीं पाता, तो शैल कही आत्महत्या न करले, क्योकि वह अपने ऊपर इस तरह का लाँच्छन लाना कभी पसन्द न करेगी कि वैभव और भोग के प्रलोभन में पड़कर उसने अपने देवर को जेल में पहुँचा दिया। और तब वह अपना पुर्नविवाह भी किसी प्रकार स्वीकार नही करेगी। भले ही उसका जीवन मरुभूमि बन जाय! मानता हूँ कि मुक्त कराने के इस कार्य के साथ हम सबकी सांसारिकता का ही विशेष महत्त्व है। किन्तु यदि हम ऐसा नही करते हैं तो दो-तीन प्राणियो का जीवन ही बिलकुल व्यर्थ हो जाता है। शैल के साथ मेरे मन का जो योगायोग है, उसको ध्यान से हटा भी दूँ तो इधर शैल और उधर विमल, इन दोनों का जीवन विपत्तिमय तो हो ही जाता है। साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ने की लालसा आज जैसी बलवती जान पड़ती है, वह सदा इसी प्रकार शक्ति का पुञ्ज बनी रहेगी, इसको कौन कह सकता है? शैल की सबसे बडी महत्ता इस बात में है कि उसने अपने आपको जीवन में उठने वाली आँधियों से बचा कर रक्खा है। उसका एक त्याग है और उसके इस त्याग का कम-से-कम मेरे लिए बड़ा महत्त्व है। यह महत्त्व उस समय और भी महान् हो जाता है जब नींद न आनेवाली उस रात में

भी उसने अपने उज्ज्वल आचार-धर्म का ही परिचय दिया है। मुझे पक्का विश्वास है, कि प्रफुल्लबाबू स्विट्जरलैण्ड की ओर प्रस्थान कभी न करते यदि वह अपने कठोर सयम का निर्वाह न करती। मेरे आने से एक दिन पूर्व उसने अविनाश को जो दिल्ली भाग जाने के लिए विवश किया था, मै जानता हूँ, वह भी उसके सयम का ही परिणाम था। रह गई मेरी बात, सो वही तो मुझे यह सब सोचने के लिए विवश कर रही है। मै उन परिस्थितियो से अपने आपको कैसे पृथक कर सकता हूँ, जिनके साथ मेरे जीवन का रागात्मक सम्बन्ध है। अगर वह दोषी है, तो दोषी मै भी हूँ। यही बात मेरे लिए यदि दुर्बलता की है, तो उसके लिए भी है। मै यह कैसे कह सकता हूँ कि मैने ही उसे उन परिस्थितियो की प्रतिक्रिया से बचाया है। अगर मैने बचाया है, तो उसने भी मुझे बचाया है। सयम की रक्षा में हम दोनो का समानरूप से अधिकार है। और इसीलिए वह मेरे अभिमान और गौरव की वस्तु है।

विचारो की इसी टकराहट ने मुझे विमल विश्वास से मिलने के लिए विवश कर दिया। मै उससे मिला और प्रेम से मिला। विमल विश्वास वास्तव में बहुत दुखी था, पश्चात्ताप से उसका सिर, उसका मस्तक ऊपर उठता न था। उसने अपना मनोभाव अपना दुःख बहुत थोड़े शब्दो मे प्रकट किया। हिन्दी वह शुद्ध बोल नहीं पाता था, इसलिए उसने अगरेजी में जो कुछ कहा उसका आशय यह था : मैंने जो कुछ किया, धन के लोभ में किया। मुझे उसका बहुत दुःख है। आप जिस तरह चाहें, मेरे साथ व्यवहार कर सकते है। आपने जो कुछ किया, वह आपके लिए बिलकुल उचित था। मुझे इसके लिए आपसे कोई शिकायत नहीं। शिकायत मुझे अपने से है, लेकिन सवाल यह है कि अब मैं उस पाप से बच ही कैसे सकता हूँ ? जेल में दस-पाँच बरस के लिए मै चला भी जाऊँ, या अगर मै मर भी जाऊँ, तो क्या आपको और मेरी भाभी को कोई दुःख न होगा ? क्या सुख, शान्ति के साथ

आप लोग अपना जीवन बिता सकेंगे ? आप यह न समझिए कि केवल स्वार्थ के भाव से मैं ऐसी बात कह रहा हूँ। आप यह भी न समझिए कि अब चूँकि मैं मजबूर हूं, इसलिए ऐसा कह रहा हूँ। मुझे भाभी से जो शिकायत रही है, वह यही तो थी कि उनका मुझसे अलग होकर यहाँ रहना हमारे परिवार की मर्यादा के विरुद्ध है। पर, जिन कारणों से वे मुझसे अलग रहना चाहती थीं, उनके सम्बन्ध में मुझको पूरा-पूरा ज्ञान भी तो न था। दुनिया जो कुछ कहती है, जो सन्देह करती है, मैं उसके प्रभाव से बच ही कैसे सकता था ? इधर मुझको जो यहाँ रहने और बराबर आने-जाने का अवसर मिला, उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि उसकी बदनामी करनेवाले वही लोग हैं, जिनको भाभी ने अपनी सम्मान-रक्षा के नाम पर लात मार कर ठुकरा दिया है। मैं आपसे पूछता हूँ कि इन बातों का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मुझे इस घटना से पूर्व मिला ही कब था ? आदमी अपने समाज को देख कर चलता है। मैं भी सुनी-सुनाई बातों के आधार पर चलने लगा हूँ। बस, इसी का मुझे दु:ख है और यही मेरी उस प्रतिक्रिया का मूल कारण है जो आज पाप बन गई है। मैं साफ कहना चाहता हूँ कि अगर भाभी अब अपना विवाह नहीं कर लेती, तो उनका मेरे साथ ही मर जाना अच्छा है। मैं उस परिवार का एकमात्र उत्तराधिकारी हूँ, जिसकी नारी सम्मान साथ जीती हैं और सम्मान के साथ मरती भ । अन्त में मुझे एक ही बात का सुख है और गौरव भी है कि पाप होते हुए भी इस घटना ने उनके पवित्र रूप का मुझे परिचय दिया है।—और इसी घटना ने आप जैसे मर्यादा-शील व्यक्ति को मुझसे मिलाने का अवसर दिया है। अगर आप भाभी के साथ 'सिविल मैरिज' करलें, तो मुझे फिर कोई शिकायत न होगी, चाहे इस दण्ड से मुझे छुटकारा मिले, चाहे न भी मिले। विवाह का सारा खर्च मैं अपनी ओर से उठाने के लिए प्रसन्नतापूर्वक तैयार हूँ।

एक बात और है और उसे मैं बिलकुल साफ कर देना चाहता हूँ कि ब्याह कर लेने के बाद न्याय तो मेरी जायदाद की एक पाई भी उनको नही दे सकता, मगर मैं अपनी जायदाद का, अपने भाई के हिस्से का आधा भाग उन्हें ब्याह से पहले ही दे दूँगा, चाहे वह 'कैश' ले-लें, चाहे 'काइण्ड' में ! और मैं इसकी लिखा-पढी के लिए अभी, इसी समय, तैयार हूँ ! बतलाइए अब मेरे लिए आप क्या कहते हैं ?"

उसका यह वक्तव्य समाप्त हुआ ही था कि जिस कमरे में वह बैठा हुआ था, उसके विभाजन की खिडकी यकायक खुल गई और मैंने देखा कि मेरे सामने खडा हुआ अविनाश बोल उठा—"वाह ! विमल बाबू, आपने अपनी बात जिस सुन्दर ढग से रक्खी है, उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ ! अब आपको और कुछ कहने की जरूरत नही है। सतीशबाबू से इस सम्बन्ध मे हमारी काफ़ी बातचीत हो चुकी है। अब मैं यही चाहता हूँ कि आप लोग प्रेम से हाथ मिला ले और निश्चित कार्यक्रम के अनुसार आगे बढ़ें !"

अविनाश की बात समाप्त होते ही भाई साहब तुरन्त वहाँ आ गए और कुर्सी ग्रहण करते हुए बोले—"आपने अभी इस मामले में जो बातें कहीं उन्हें मैं चिक के बाहर खडा हुआ सुन चुका हूँ और उनसे मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि आपकी राय में दोष आपका नही, परिस्थितियो का है ! यह बात सही है, यह भले ही विवाद का विषय हो, किन्तु आपने जिस भावना का परिचय दिया है, उससे मैं सहमत हूँ। पहले हम अपराध के विषय में आपका मूल-भाव जान लें और तब आगे बढ़ें तो अधिक उत्तम होगा !"

विमलबाबू बोले—"एग्रीड !"

भाई साहब ने पूछा—"तो आपका इरादा यह बिलकुल पक्का था कि भाभी को आज समाप्त कर डालना है। और उसका कारण यह था कि आपको उनके चरित्र पर पूरा सन्देह था। बस यही बात

थी न ?"

"ओ एस, ओ एस, दैट इज राइट !"

"तो आप यह मानते है कि भाभी को मार डालने के बाद आप पूरी तरह बच जाएँगे, इसका भी आपने पूरा प्रबन्ध कर लिया था ?"

"आँ, बात ठीक ऐ !"

"तो इसके लिए आपने पहले से सब-इसपेक्टर पुलिस और चीफ इन्चार्ज ऑफ द हॉस्पिटल को भी अपने साथ मिला लिया था ?"

"बात तो ये भी ठीक ऐ· बट दिस इज ए कन्फ़ेशन इन अदर वर्ड्स · बिफोर द ऑर्क बिशप।"

इस पर भाई साहब कुछ मुस्कराए और बोले—"आपको बुरा लगता हो, तो इस तरह के प्रश्न मैं आपसे न करूँ ? लेकिन एक बात मैं आपसे कह देना चाहता हूँ साफ-साफ कि जो आदमी किसी की हत्या इसलिए करता है कि इसके द्वारा मेरे खानदान की बदनामी होती है, उससे मैं यह पूछना चाहता हूँ कि उसी आदमी को मरवा डालने में उसके खानदान की बदनामी नही होती ? आप समझते है कि उसकी कीर्ति बढ जाती है ? मतलब यह है···" भइया ने जरा नाक-भौं सिकोड़ कर कहा—"कि अपनी नैतिक रक्षा के लिए किसी व्यक्ति से अपना निकट सम्बन्ध बना लेना आपकी दृष्टि में पाप है और उसकी हत्या कर डालना पुण्य है ? खूब विमलबाबू आपकी हिम्मत की मै दाद देता हूँ ! अच्छा, ठीक है, अब एक बात बताइए, कि यह भाई साहब की मृत्यु होने के बाद भी जो आपने अब तक अपना विवाह नहीं किया, इसमें आपका क्या इरादा रहा है ?"

"सो यू आर डाउटिग माई नोबुल कैरियर ! डू यू थिक दैट आई वाज ऐन ऐडमायरर आफ माई ओन भाभी ? स्ट्रेंज !"

भाई साहब विमल विश्वास के इस उत्तर पर हँस पड़े और बोले—"आप क्या है और क्या नहीं है, यह मै कुछ नहीं जानता, लेकिन एक

बात मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि भाई साहब का शान्ति-संस्कार कर लेने के बाद किसी दिन क्या आपने अपनी भाभी के साथ एक ही थाली में भोजन किया था ?"

भाई साहब के इस प्रश्न ने विमल विश्वास के चेहरे पर एक कालिमा-सी पोत दी और वे बिलकुल अप्रतिभ हो गए, और बोले—"हू कैन डेयर टु से लाइक दिस ? आय विल किल हिम !"

उसी क्षण भाई साहब ने सामने रक्खी टेबिल की घण्टी पर अँगुली रख दी और रामू तत्काल भीतर आ गया।

तब उन्होंने रामू से पूछा—"अभी कुमार साहब ने मुझको बतलाया कि भाभी मुझको सदा से बहुत प्यार करती रही है।"

इतने में विमल विश्वास बोल उठे—"मैंने तो ऐसा नेई कहा, आप जूट क्यूँ बोलटा ऐ ?"

भाई साहब ने तपाक से और कुछ ज़ोर से भी जवाब दिया—"चुप रहिए, जब मैं आपसे पूछूँ तब जवाब दीजिएगा ! हाँ राम, इनका कहना है कि भाभी तो बहुत पहले से हमको चाहती रही हैं। यहाँ तक कि हम लोग एक ही थाली में खाते रहे हैं। तुम सच-सच बतलाओ, यह बात सही है ?"

रामू इस परिवार का बहुत पुराना नौकर है। वह भइया के इस प्रश्न पर बहुत सिटपिटा गया। तब भइया ने कहा—"देखो, रामू ! तुमने एक चौपाई सुनी है कि 'हित अनहित पशु-पक्षी जाना' ?"

रामू के मुँह से निकल गया—"सुनी है, सरकार !"

अब भइया बोले—"तो तुम इतना समझ लो रामू कि अगर इन्होंने तुमको जवाब भी दे दिया, तो मेरे यहाँ भी तुम बहुत सुखी रहोगे। अब यह बताओ कि क्या ऐसा कभी हुआ है ?"

रामू के मुँह से निकल गया—"सरकार ! ठीक ही कहते हैं !"

अब भइया ने कहा—"बस, एक बात मैं तुमसे और पूछना चाहता

हूँ ! जिस दिन तुमने इन दोनों को एक थाली में खाना खाते देखा था, उसके दूसरे ही दिन विमलबाबू यहाँ से चले गए थे ?"

रामू ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया—"नहीं सरकार, दूसरे दिन नहीं, तीसरे दिन···।"

"अच्छा" भाई साहब बोले—"ठीक है, पर अभी इस बात के साथ मिली हुई एक और बात छूटी जा रही है, वह यह कि उस रात श्रीमती विश्वास और इन विमल विश्वास के बीच कोई कहा-सुनी, दगा-फसाद, लड़ाई-झगडा और हाथापाई भी हुई थी ?"

इतने मे विमल विश्वास उठ कर खड़े हो गए और उत्तेजना के स्वर में बोल उठे—"आइ एम नाट सपोज्ड टु हियर ऑल दीज रबिश थिंग्ज ! यू कैन डू एनी थिंग यू लाइक बट फॉर गाड सेक डोण्ट ट्राई टु एक्सपोज दीज वेरी सीक्रेट्स आफ माई कैरेक्टर !"

इस पर रामू कुछ कहने ही जा रहा था कि विमल विश्वास ने झट से आगे बढ कर रामू के मुँह पर जोर का एक तमाचा जड दिया और साथ ही कह दिया—"बदमाश ! दुष्ट ! पाजी ! गदा ! हज्जा मेरे सामने से, निकल जा कमरे से ! कबी जो इदर आया, तो गला गोट दूँगा ।"

भाई साहब उठ कर खड़े हो गए और अविनाश की ओर देखते हुए बोले—"कहिए, अविनाश बाबू, क्या ख्याल है आपका ! यही वह आदमी है जो अभी यह कह रहा था कि श्रीमती विश्वास 'लूज कैरेक्टर' की नारी है, अब मै आपही से पूछना चाहता हूँ कि चरित्र-दोष इस शैतान में है या श्रीमती विश्वास में ! आप तो इसके बड़े हिमायती बनते हैं ! आप चाहते है कि ऐसे आदमी को क्षमा कर दिया जाय ? देख लिया आपने सारा तमाशा ! मै ऐसे आदमी को क्षमा करने के बिलकुल पक्ष मे नही हूँ ।"

अविनाश भी उठकर खडा हो गया और सिर नीचा किए हुए बहुत

धीरे से बोला—"ख़ैर, जो कुछ भी हुआ, उस पर अब परदा डालिए और जो परिस्थिति सामने है, उसको सुलझाने की कोशिश कीजिए।"

भाई साहब ने इस पर उत्तर देते हुए कहा—"कोशिश समाप्त हो गई। मेरे मनोराज्य मे ऐसे आदमी के लिए क्षमा नहीं है। अब इस सम्बन्ध में कोई बात न होगी। जाइए अपना काम देखिए!" और उनके इस कथन के बाद मैं उनके पीछे-पीछे चला आया। भइया के इस रुख पर मैं भी कॉप उठा था और सच बात तो यह है कि मैं उनके इस कठोर व्यवहार पर मन-ही-मन बड़े गर्व का अनुभव कर रहा था। अविनाश बाबू विमल विश्वास के कमरे मे रुक गए थे और भइया शैल के पास पहुँचते ही बोले तो कुछ नही, पर यकायक हँस पड़े और शैल की ओर देख कर बोले—"सुनो शैल, तुम्हारे काम की बात है।"

शैल बोली—"दादा, मैं तो आपके सामने बच्ची हूँ, इसलिए आपकी प्रत्येक बात को मैं आज्ञा और उपदेश मानती हूँ, और मानती रहूँगी।"

इसके उत्तर में भइया ने कहा—"मैं तुमसे केवल एक बात कहना चाहता था और वह यह कि अगर मेरे कोई बहन होती, बेटी होती, तो आज मैं उसको भी उतना ही प्यार करता, जितना अब तुमको करने लगा हूँ। आज विमल बाबू की बात-चीत से तुम्हारे जिस पवित्र रूप का परिचय मिला है, उसकी मैं सराहना करता हूँ। मुझे आशा है, कि मैं तुमको आगे भी सदा इसी भाव से प्यार करता रहूँगा! ·· अरे सतीश, जाओ देखो, खाना तैयार हो गया हो, तो तुम लोग सब खा पी लो। मैं तो सिर्फ दूध लूँगा।"

शैल बोल उठी—"दादा, यों तो आपकी व्यवस्था में मैं कोई हेर-फेर करने का साहस नही करती, लेकिन मैंने आज ताहरी बनवाई है और मैं सोचती हूँ कि आप थोड़ी-सी ले लें, तो बड़ा अच्छा हो।" इतने मे मैंने देखा—भाभी आ रही है और मुन्ना उनका हाथ पकड़े हुए कह रहा है—"हम सब खा लेंगे!"

भाभी पूछ रही है—"तुम सब खा डालोगे और चाचा जी को नहीं खिलाओगे ?"

तो मुन्ना जवाब देता है—"चाचा जी तो हमको मिठाई ही ज्यादा खिलाते है और फिर साथ में वह भी खाने लगते हैं। चावल, आलू, नमकीन खाते हुए हमने उनको कभी देखा नही!"

इस पर भाभी हँसती-हँसती भीतर आ गईं और भइया से बोलीं—"शैल ने आज ताहरी बहुत अच्छी बनवाई है। मुन्ना तारीफ कर रहा है। पर तुमसे क्या कहूँ? तुम तो हमारी बात कभी मानते ही नहीं।"

इतने में भइया तो कुछ नहीं बोले, लेकिन शैल बोल उठी—"दीदी, पहले भले ही न खाते रहे हो, मगर आज तो दादा को मै थोड़ी सी तहरी खिला के ही मानूँगी। अब दीदी एक बात सुनकर तुमको बड़ी ईर्ष्या होगी।"

भाभी बोल उठीं—"ईर्ष्या? तुम क्या कह रही हो शैल?"

तब शैल ने उत्तर दिया—"ईर्ष्या की ही बात है दीदी! दादा ने अभी कहा है कि अगर मेरी कोई छोटी बहन होती या मेरी जितनी उमर की कोई लडकी ही होती, तो मै इतना ही प्यार उसको भी करता, जितना अब तुमको करता हूँ, तो अब मेरे लिए उनके मन में तो बहुत बडा प्यार पैदा हो गया है। बोलो, क्या अब भी तुम मेरे भाग्य से ईर्ष्या नहीं करोगी?"

अब भाभी बोल उठीं—"मुझको तो भूख लगी है। इसलिए तुम और सतीश और वे जल्दी खाना खा लो, तो फिर मेरी भी बारी आ जाय!"

शैल ने हँस कर उत्तर मे कह दिया—"मगर हम लोगों के साथ बैठकर क्या तुम खाना न खाओगी?"

इस पर भाभी हँस पड़ीं और मेरी ओर देखने लगीं। तब मेरे मुँह से निकल गया—"भाभी तो भइया की छोड़ी थाली में ही सदा खाना

खाती रही है।'

मेरा इतना कहना था कि शैल फर्श पर बैठ गई और भाभी के पैरों की ओर हाथ बढ़ाती हुई बोली—"तब आओ दीदी, मैं तुम्हारे चरणों की रज से अपने भाग्य का गौरव बढ़ा लूँ।" और इतना कहकर शैल ने सचमुच भाभी के पैर छू लिए।

: ३३ :

"यह सब कुछ नहीं, अब तो बहस उन्हीं आधारों पर होगी जो इस घटना के तथ्यों को काट-काट कर बिखेर देंगे !" रुचिनाथ बाबू कह रहे थे कि कुछ सोचते हुए भाई साहब ने कहा—"हूँ, तो अब मेरी बात सुन लीजिए। डी० एस० पी० साहब ने जब हॉस्पिटल में जाँच की थी, तब उन्होंने रक्त के बहाए जाने का क्या प्रमाण पाया था ?"

इस पर एक मौन।

"और मान लीजिए, उन्होंने ऐसा कोई प्रमाण पाया भी हो तो, इससे क्या होता है, हॉस्पिटल है ! घावों का धोना, आपरेशन, लाल दवाओं का धोवन आदि !" भाई साहब ने कहा—"इसलिए यह सब सोचना बेकार है। और इस बात का क्या सबूत है कि शैल को ज़हर ही दिया गया ? डाक्टर साहब अपने बयान में कहते हैं कि उनके पेट में एक फोड़ा था और जब शैल उसका भयानक दर्द सहन न कर सकी, तो उसने कोई ऐसी दवा खा ली जिससे उसका वह फोड़ा भीतर-ही-भीतर फूट गया। और इसी से पेशाब के रास्ते से वह बह गया। रह गई बेहोशी, सो यूँ भी वह काफी दुर्बल है और आप जानते हैं कि कमज़ोर आदमी जब कोई झटका खा जाता है, तो मामूलीतौर से ही उसे मूर्छा आ जाती है।"

रुचिनाथ बाबू बोले—"यह भी सही है, मगर एक कागज़ पर जो पाउडर मिला है, उसकी मेडिकल-रिपोर्ट तो यह कहती है कि वह 'प्वायज़न' था और उससे फ़ौरन ही पेट में ज़ख़म हो गया होगा। इस सम्भावना के लिए आपके पास क्या जवाब है ?"

भाई साहब बोले—"इधर देखिए, रुचिनाथ बाबू, सम्भावना की तो बात कीजिए मत। कोई पक्की बात हो, तो बताइए। पाउडरवाला कागज़ जब परीक्षा करके देखा गया, तो क्या उससे सिद्ध हो गया कि क्या वह 'प्वायज़न' था ? सम्भावना तो इस बात की भी है कि पाउडर

का वह कागज हवा के वेग से, आँधी से, कही बाहर से भी उडता उड़ता भीतर चला आया हो। आपको अगर विश्वास न हो तो इस बँगले के सारे दरवाजे एक बार खोलवा दीजिए और फिर सबेरे मुआइना करने के लिए मेरे साथ आ जाइए।"

रुचिनाथ बाबू बोले—"बात तो आप कुछ सही कह रहे है।"

"कुछ नहीं साहब, बिलकुल सही कह रहा हूँ! मै हमेशा सही बात ही कहता हूँ!" भाई साहब बोले—"अच्छा साहब नौकरो के बयानो से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि खाना खाने से पहले दोनो मे काफी लडाई हो चुकी थी। यहाँ तक कि गाली-गलौज भी उनके कान में पड़ा था, तब क्या ऐसा नही हो सकता कि विमल विश्वास से चिढ़ कर उसने स्वयं ही कोई ऐसा प्रयोग कर डाला हो! क्या कहते है आप?"

रुचिनाथ बाबू कुछ सोचने लगे—"मगर यह बात तो शैल के खिलाफ जाती है।"

भाई साहब ने उत्तर दिया—"बला से, शैल के खिलाफ तो कोई मुकदमा है नही। मुकदमा तो विमल विश्वास के खिलाफ है! और हमारा तो यही उद्देश्य होना चाहिए कि हम विमल विश्वास के अपराध में कोई बड़ा सन्देह उत्पन्न कर दें।"

"हाँ, यह भी आप ठीक कहते है!"—रुचिनाथ बाबू बोले।

"अच्छा।" भाई साहब बोले—"और सुनिए, झगड़ा हो जाने के बाद शैल का विमल विश्वास के विरोध में कोई भी चार्ज लगाना क्या उसकी प्रतिहिंसा के लिए स्वाभाविक नहीं है? आप यह साबित नहीं कर सके कि जहर किसने दिया। आप यह भी साबित नहीं कर सके कि किस किस्म का जहर दिया और आप यह भी नहीं साबित कर सके कि रक्तश्राव को शान्त करने के लिए डाक्टर ने जो 'प्रस्क्रिप्शन' दिया, वह जहर को निर्मूल करने के लिए था, वह तो वास्तव में 'ब्लीडिंग' बन्द करने के लिए था। और भी एक बात है कि न तो यह साबित है कि

कि शैल के पेट का कोई भाग कट जाने से 'ब्लीडिंग' हुई है, न यह साबित है कि उनके पेट में कोई बच्चा था, जिसके गिराने के कारण 'ब्लीडिंग' हुई है, न आप यह साबित कर सके कि फोड़े के फूट जाने के कारण 'ब्लीडिंग' हुई है, फिर आखिर 'ब्लीडिंग' हुई कैसे ? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि 'ब्लीडिंग हुई ही नहीं ! सब 'फ़ार्स' है । और जो विमल विश्वास अपनी भाभी से लड़ाई-भिड़ाई करता है, वह इतना बेवकूफ है कि कुछ ही घण्टो के बाद वह उसको 'प्वायजन' दे देगा ? बात कुछ आपके समझ में आती है ?"

रुचिनाथ बाबू बोले—"हाँ ऐसा तो जरा कम ही मुमकिन है।"

"कम, आप इसे कम कहते है ? अरे साहब, यह बिलकुल नामुमकिन है !" भाई साहब बोले—"और एक नई बात सुनिए। आज मुझको अभी मालूम हुआ है कि विमल साहब अपनी भाभी पर तबीयत भी रखते थे। ऐसी हालत मे जबकि उनकी हैसियत एक प्रेमी की हो जाती है, तब अपनी उसी प्रेमिका को, जिसको आगे चलकर वह 'वाइफ' के रूप में 'एडाप्ट' कर लेने की पूरी-पूरी कोशिश में लगे हुए है, तब वह इतने अन्धे है कि उसको जहर पिला देंगे ? आपकी समझ में आता है कुछ ?"

रुचिनाथ बाबू बोले—"क्या बताऊँ गिरीश बाबू, अगर आपके नाम का कहीं से कोई 'लॉ' का सर्टिफिकेट मिल जाय, तो आपकी शुमार नामी वकीलों में होते देर न लगे।"

"जाने दीजिए, इस बेकार की बात को।" अब भाई साहब ने आगे कहा—"पहली बार मैं बम्बई गया था, तो एक फिल्मी प्रोड्यूसर साहब ने भी यही फरमाया था कि अगर आप मुझको साल भर का भी टाइम दे दे, और आप मेरे साथ रह सकें, तो मैं आपको (चुटकी बजाते हुए उन्होंने कहा) यूँ, चुटकियों में डाइरेक्टर, बना दूँ !—और बताऊँ ? एक डाइरेक्टर साहब संयोग से मेरे मित्र भी है। उनका कहना यह है

कि मै अपनी अगली ही 'पिक्चर' में आपको 'हीरो' का 'चान्स' दे सकता हूँ ।—बोलिए मजूर है ? मगर शर्त यह है कि 'एग्रीमेण्ट' के अनुसार आपको जो बीस हजार की रकम मिलेगी, वह सब मेरी होगी । कुछ समझ में आ रहा है ?"

रुचिनाथ बाबू मुस्कराने लगे । बोले—"खैर, अब मुझे इस बात पर पूरा भरोसा हो गया कि इस केस की अपील का जो मसविदा मैं बनाऊँगा वह अवश्य ही अपील के 'फेवर' मे जाएगा और यह मसविदा मैं आपको तीन दिन के अन्दर—(ड्यूली टाइप्ड)—दे दूँगा ।"

भइय .बोले—"अच्छी बात है ।"

इधर ये बाते चल रही थीं और इसके बाद मै जो कमरे से बाहर निकल कर विमल के कमरे की ओर बढा, तो क्या देखता हूं कि वह चारपाई पर लेटा हुआ रो रहा हे । अविनाश उसके पास बैठा है और विमल द्रवित वाणी में कह रहा है—"ही हैज़ पेण्टेड ए वेरी डार्क ब्लेक इक आन माई फेस ! एण्ड ही हैज फुल्ली इस्वायल्ड माई करेक्टर एंड कैरियर ऐज़ वेल ! आय विल डाई पाजिटिवली टुनाइट !"

और अविनाश टेबिल पर रक्खे हुए पेग को गट···गट गले के नीचे उतारता हुआ कह रहा था—"तुम पागल हो गए हो बिलकुल । तुम उनके नेचर को समझते नहीं हो—बिलकुल । एक बार तुमको उनके पैरों पर सिर रख देना चाहिए था और बस तुम्हारा बेड़ा पार हो जाता ।' मगर तुम तो हो उल्लू, जो अब भी अपनी शेखी नही छोड़ रहे हो । लो, इसी बात पर यह पेग चढ़ा तो लो प्यारे और चलो अभी हमारे साथ ! मिनटों में म तुम्हारा काम बनाए देता हूँ । लो पियो···अरे पी भी ले ··एस ··एस·· अब चल दो अभी ! और देखो रूमाल से मुँह साफ़ कर लो । मगर ठहरो, यह पान खाओ और यह सौंफ लो ! मगर तुम्हारे जैसे भोचप्पा मुँह के लिए दो पान में होगा क्या ? लो, दो पान और ले लो, चलो···"

और इस प्रकार जब अविनाश विमल को मेरे कमरे में ले आया तो रुचिनाथ बाबू कह रहे थे " न तो आप जायदाद में एक पाई चाहते हैं, न इस 'मैरिज' के सिलसिले में डावरी' या खर्चे की मद में टका लेना चाहते हैं और इतने पर भी आप विमल विश्वास को बेदाग मुक्त करा देने का पूरा विश्वास दिला रहे है, तब तो आप सचमुच आदमी नही, देवता हैं ?"

इतने में अविनाश अन्दर आ गया और विमल विश्वास सचमुच भइया के पैरो मे औंधा गिर पडा। भइया ने फौरन उसको उठा लिया और प्रसन्न मुद्रा मे बोले—"बहुत ज्यादा चढा ली है आज शायद तुमने! खैर, कोई बात नही! जाओ, मैंने तुमको क्षमा किया!"

विमल विश्वास—"यू आर ए वेरी काइण्ड हार्टेड एण्ड मर्सी-फुल मैन रादर लाइक गॉड टु मी प्लीज सेव माई लाइफ एण्ड गिव मी शैडो ऑफ योर पायस हैण्ड। आय शैल बी ग्रेटफुल टु यू फार होल ऑफ माई लाइफ!"

भाई साहब मुस्करा उठे और बोले—"अच्छा, अच्छा, जाओ, मौज करो। मगर अब कभी भी मेरे सामने पीकर न आना।' जाओ, अविनाश ले जाओ। तुमसे भी मुझे कुछ कहना है, पर आज नहीं, कल कहूँगा।"

जब विमल विश्वास और अविनाश दोनो चले गए, तो शैल आकर बोली—"आप लोगों का यह नाटक कभी खतम भी होगा ?"

भइया बोल उठे—"देखो शैल, नाटक तो यह अब उस दिन खतम होगा, जब तुम्हारे सिर पर पडी हुई यह साड़ी कुछ थोडी और मस्तक पर आकर पहली बार का अवगुण्ठन बन जायगी।"

शैल अपनी मुस्कराहट न रोक सकी और सिर पर पड़ी हुई साड़ी को थोडा आगे खिसकाती हुई भइया के सामने आकर उनके चरण छूने लगी और उस समय मालूम नहीं क्यों मैंने भी उसके साथ ही भइया के

पैर छू लिए ।

इस समय भइया के दोनों हाथ हम दोनो के सिर के ऊपर थे और भाभी दरवाजे के पास खड़ी होकर आशीर्वाद दे रही थी—"जुग जुग जिए यह जोड़ी । लाओ, मिठाई खिलाओ, इसी बात पर ।" और मुन्ना बोल उठा—"चाचा जी, बहुत बहुत ढेर-सी मिठाइयाँ अम्मा ने मँगवा ली हैं और अम्मा कहती हैं कि यह सब कल सबेरे बाँट दी जायँगी, दस बजे ।..."

और इसके ठीक साल भर बाद हम कानपुर के 'सिविल-मैरिज' रजिस्ट्रेशन 'आफिस' के अन्दर जा बैठे । उस समय हमारे आगे तो भाभी, भइया और मुन्ना था और पीछे अनेक मित्र । सडक पर बैण्ड बज रहा था । गाड़ी फूलों से सुसज्जित थी और नगर के शत-शत नागरिक हमारे स्वागत के लिए खड़े हुए थे ।

: ३४ :

कथा, जीवन के बीच में उत्पन्न होनेवाली प्रवृत्तियों और उनकी अकल्पित किन्तु स्वाभाविक गहराइयों की; कथा मनोभावो के स्थिर—अस्थिर मन्तव्यों और संकल्पों के स्तर-स्तर के चढाव उतार की, और कथा सम्भावित भविष्य के असम्भावित रूप, छवि, सौंदर्य और उसकी निष्पन्नता की ! यह वर्ष भी बीत गया। अविनाश और रुचिनाथ बाबू के सतत प्रयत्नो और भाई साहब के आत्मीय सम्बन्धो के प्रभाव से विमल विश्वास बिलकुल अपने हो गए ! भाई साहब ने पहले ही कह दिया था कि ऐसा होकर रहेगा। जब-जब विमल विश्वास असफलताओं की आशका से आतकित हो-होकर दुखी हो उठता, तब-तब एक भइया का ही आश्वासन उसको सन्तोष देता था।

इसमें एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग भी सम्मिलित था। अभियोग के दौरान में कभी किसी अवसर पर रुपया कम हो जाता अथवा बैंक से ही रुपया निकालने में देर हो जाने के कारण काम रुकता जान पडता, तब भाई साहब तुरन्त उसकी पूर्ति कर देते थे। पर उसके बाद जब विमल विश्वास रुपया ले आते और भइया को देने लगते, तो वे उसे वापस कभी न लेते। सदा उनका यही उत्तर रहता—"ठीक है; रक्खो, रक्खो ! समझ लो कि मुझे मिल गया।" भइया के इस व्यवहार को देखकर विमल विश्वास का सारा अहंकार और दर्प मोम की तरह पिघल-पिघल कर आँखो के रास्ते से आँसू की तरह बह गया था। वैभव और पैसे के पीछे घोर से घोर पाप करनेवाला व्यक्ति यह समझ ही न सकता था कि पैसे के महत्व की इस दुनिया में ऐसा भी कोई आदमी हो सकता है, जिसके आगे पैसे के लोभ और मोह का कोई मूल्य ही न हो। रात-दिन वह भाई साहब की महिमा के गीत गाया करता था।

विमल के इस परिवर्तन में अविनाश का हाथ पहले तो भूमिका

रूप में ही आया था, सो भी नीतिवश। क्योंकि उसने यही कहा था—"अपना काम निकालने के लिए जो आदमी गधे को भी अपना बाप नहीं बनाता, वह स्वयं भी गधे का बच्चा होता है! फिर गिरीश बाबू तो महा मानव हैं! इसलिए जब तक तुमको दण्ड से मुक्ति न मिल जाय, तब तक तो तुमको उनके चरण धोकर पीते ही रहना चाहिए। बराबर! उसके बाद तुम चाहे जो कुछ करना।" और विमल के समुदाय में ऐसे ही लोगो की अधिकता थी। श्रद्धा और विश्वास के स्थायित्व और अस्थायित्व का उनके आगे कोई विशेष महत्व न था। किन्तु जब विमल भइया के सम्पर्क में आया, तो उसने अनुभव किया—कि मैं तो बिलकुल अँधेरे में था और धीरे-धीरे वह भइया का वास्तविक भक्त बन गया था।

इस सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि अविनाश का जीवन भी अब बदल गया था। एक बार जब वह एक होटल में ठहरा हुआ था, तो वहाँ एक घटना हो गई। मैनेजर एक सिंधी था और वह अपनी तीसरी पत्नी के साथ होटल के ही एक भाग में रहा करता था। उसका स्वभाव तो वैसे विशेष बुरा न था, किन्तु उसको शराब पीने की बडी बुरी आदत पड गई थी। वह जब बहुत पी लेता तब अपनी उस नवभार्या के सम्बन्ध की ऐसी बातें बकने लगता, जो स्वयं उसी की मर्यादा के सर्वथा विरुद्ध पडती थी। अविनाश उन बातों को सुनकर कुछ बहक गया और वह उस होटल में दस-पाँच दिन के लिए कुछ और अधिक ठहर गया। इसका परिणाम स्वयं अविनाश के लिए भी असह्य हो उठा। पहले तो मैनेजर की उस नवभार्या ने उससे मित्रता कर ली, परन्तु एक दिन जब उसे यह मालूम हो गया कि अविनाश आज बैंक से रुपया निकाल कर लाया है और यह रुपया उसका अपना नहीं है, क्योंकि अविनाश वह रुपया विमल विश्वास के लिए लेने आया था तब उसी रात को मैनेजर की उस नवपत्नी ने अपने स्वामी के साथ-

शराबी का अस्तित्व नही रह गया है। इसलिए तुम अभी मर जाओ, तो मुझे बडा सुख मिलेगा। जाओ, मरो जाके, निकलो मेरे कमरे से! मुझे शराबियो की शकलो से नफरत हो गई है। निर्लज्ज कही का! कमीना! रात-दिन इन लोगो के ये किस्से सुन-सुन कर नाक में दम आ गया है। अब तू जाता है कि नहीं यहाँ से?"

मैं बहुत क्रोध में था और उसे जूते की नोक से ठोकर मारने ही वाला था कि इसी समय चिक का परदा उठा और भइया ने प्रवेश करते हुए कह दिया—"ये तुमने क्या गुलगपाडा मचा रक्खा है?"

मैं अभी मुँह खोल भी न पाया था कि अविनाश ने अपनी सारी दु:ख-कथा विस्तारपूर्वक भइया को सुना दी। वह फर्श पर लोटता हुआ भइया के पैरों पर मत्था पटकने लगा। उसके शब्द थे—"मेरी लाज बचाओ, बचाओ, बचाओ, भइया...तुम सबकी रक्षा करते हो, तो मेरी भी करो, करो, करो!" बस, उसका इतना ही मर्म-निवेदन भइया के हृदय में पैठ गया और वे बोले—"तुम अपनी माँ की लाज की शपथ लेकर आज प्रतिज्ञा करो कि अब कभी शराब नही पियोगे और साथ में उन लोगो से भी अपना सम्बन्ध पृथक कर लोगे जो शराबी हैं। चाहे वे तुम्हारे सगे सम्बन्धी हो, अथवा इस राज्य के सत्ताधारी प्रभु और उनके चाटुकार!'

अविनाश ने प्रतिज्ञा की और उसकी प्रतिज्ञा केवल मौखिक न थी, लिखित थी और जिस में इस घटना के उल्लेख के साथ साथ ढाई हज़ार रुपए नकद लेने की स्वीकृति भी थी।

भइया ने रुपए 'सेफ़' से निकाल कर दे दिए और मुझसे कह दिया—"तुम इसके साथ जाओ। देखो, बहुत सावधानी के साथ जाना।" बस उस दिन से अविनाश भी भइया का भक्त बन गया। इस प्रकार शैल का अपना निज का ही जीवन नहीं, उसके इर्द-गिर्द का सारा वातावरण भी अब शुद्ध और परिष्कृत बन गया था।

शैल के साथ केवल एक बात पर भइया का तो नही, पर मेरा मत-भेद अब भी बना हुआ था। शैल की दृष्टि से वह वैधानिक था, किन्तु मेरी दृष्टि से भावुकतापूर्ण ! शैल का कहना था "मै मसूरी का बँगला बेच डालूँगी।" क्योकि विवाह होने के बाद फिर उस पर उसका कोई अधिकार न रह जायगा। परन्तु मै इसके पक्ष में नही था। मै लोक-लाज से तो डरता ही था। मै यह सहन नही कर सकता था कि मेरे ही मित्र मुझसे यह कहने का अवसर पाएँ कि तुम्हारी 'वाइफ' के पास भी रुपए की कौन कमी है ? मसूरी का बँगला बेच कर उसने जो एक लाख रुपया बैंक में जमा कर रक्खा है, उसका सूद ही तुम्हारे खर्चे के लिए काफी है। मुझे इसीलिए इस पर आपत्ति थी। पत्नी की सम्पत्ति पर मै किसी प्रकार का अधिकार नही चाहता। वह उसके अपने उपयोग की वस्तु है। यह बात दूसरी है कि कोई भी पतिप्राणा पत्नी अपने उपयोग को पति से पृथक नहीं मानती, किन्तु यह एक ऐसा प्रसग था कि मै शैल के साथ जबरदस्ती तो कर नही सकता था। मेरे इस मन्तव्य मे एक अभिप्राय और था और वह यह कि मसूरी में शैल का एक बँगला अगर किसी प्रकार बना रह जाय, तो अच्छा ही होगा। हमारे बीच में अविनाश का मस्तिष्क इन मामलो में बहुत तेज़ था। भइया का अनुगत हो जाने के कारण वह अब सब प्रकार से हमारा बन गया था। उसने कहा—"बहुत मामूली-सी बात है। बँगला का बँगला बना रहेगा और तुम्हारी टेक भी रह जायगी।" उसने सुझाया कि बस एक स्टैम्प पेपर मँगवाना पडेगा और उसकी रजिस्ट्री करवानी पड़ेगी और शैल को भइया के नाम 'बयनामा' लिख देना पडेगा। बात कुछ मुझको जँच गई और 'बयनामा' शैल ने विधिवत भइया के नाम कर दिया। पर यह बात तब तक भइया को नही बतलाई गई, जब तक लिखा पढ़ी नही हो गई। अन्त में जब रजिस्ट्री कराने का समय आया, तब भइया को सब कुछ बतलाना ही पडा। पर उसका परिणाम यह हुआ कि भइया ने कहा—

"मैं अपनी छोटी भाभी की कोई सम्पत्ति इस प्रकार हरण नहीं करूँगा। मैं यह एक लाख रुपया शैल को दूँगा और शैल को लेना पड़ेगा।"

अब शैल बुलाई गई। भइया बोले—"तुमने यह क्या किया शैल ?"

शैल ने संकोच से नतमुखी होकर उत्तर दिया—"इसमें करने की क्या बात है दद्दा! मैं जब तुम्हारी हो चुकी हूँ, तब मेरी कोई सम्पत्ति तुमसे अलग रह सकती है ?"

भइया ने उत्तर दिया—"मगर अनुज-वधू के रूप में तुम मेरे लिए बहन और बेटी के समान हो। इसलिए तुम्हारी सम्पत्ति को मैं छू भी नहीं सकता। तुम्हें यह रुपया अपने नाम से बैंक में जमा करना पड़ेगा।"

शैल ने उत्तर दिया—"अब मेरे अपने नाम का कोई अस्तित्व नहीं रह गया है। मेरा कुछ भी अपना अलग से नहीं है। ऐसा ही है, तो मैं यह रुपया मुन्ना के नाम से जमा किए देती हूँ, लाइए दीजिए ··· !"

भइया उठ कर खड़े हो गए और बोले—"ऐसा हो नहीं सकता शैल, मेरी आज्ञा तुम को माननी ही होगी !"

यह सब बातें मेरे सामने हो ही रही थीं, इसलिए मैं शैल से कुछ कह न सका। शैल को भइया की आज्ञा के सामने झुकना पड़ा और तब मैं भी कोई विरोध न कर सका। अन्त में बँगले के बयनामे का रजिस्ट्रेशन भी हो गया !

बहुत दिनों से मैंने डायरी को नहीं छुआ था, पर अब मुझे उठाना ही पड़ा। क्योंकि इस घटना के साथ एक घटना का और भी सम्बन्ध है। सम्बन्ध इसलिए है कि कुछ मिनटों का ही अन्तर पड़ा था। तारीख एक थी, दिन एक था और समय भी एक ही था। जिस समय रजिस्ट्री में हस्ताक्षर हो रहे थे, उसी समय विमल विश्वास को दण्ड से मुक्त होने का 'जजमेण्ट' सुनाया गया था। दुनिया के लिए उसका कोई

महत्व न हो, किन्तु मेरे लिए तो उसका बड़ा महत्व है। सृष्टि, वैचित्र्य के इतिहास में मैं इसको भी स्थान देता हूँ। एक ओर विमल विश्वास अपने पाप कर्म का प्रायश्चित्त पूरा करता और दंड से मुक्ति पाता है, दूसरी ओर शैल बैंक में एक लाख रुपए से नया एकाउन्ट खोलती है और मैं सोचता रह जाता हूँ, यह दोनों घटनाएँ परस्पर विरोधी होने पर भी ऐसा अद्वैत क्यो रखती है? क्या कोई ऐसी बात है कि जैसे ससार के समस्त समुद्रों का जल आपस में घुला-मिला रह कर सदा ही एकात्मभाव बनाए रखता है, वैसे ही व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन का आनन्द भी क्या अलग-अलग रह कर वास्तव में मिश्रित और एकरस ही बन जाता है? जबकि एक व्यक्ति का आनन्द इस संसार में दूसरे का आनन्द नहीं होता! क्योंकि प्रायः वह दूसरे का दुःख होता है, कष्ट होता है। इसी दुनिया में मैं नित्य देखता हूँ, नित्य सुनता हूँ कि शिशु जन्म लेते क्षण कहने लगता है, बोल उठता है, विस्मय के साथ--"मैं कहाँ आ गया, मैं कहाँ आ गया?" और उसकी माँ मृत्यु के घाट उतर कर, चाहे मूकभाव से ही सही, कह उठती है—"मैं कहाँ जा रही हूँ, यह मैं नही जानती. लेकिन मैं जा रही हूँ, मैं जा रही हूँ!"

: ३५ :

छिपाने योग्य बात हो, तो उसको छिपाऊँ भी; लेकिन जो जीवन का अगाध दु:ख है, उसको कैसे छिपाऊँ ? आनन्द हो, सौख्य हो, तो उसे पचा भी डालूँ, लेकिन जो वेदना मन की अपार है, उसे कैसे पचाऊँ ? इसलिए आज उसे कहे ही डालता हूँ !

इन पक्तियो का सम्बन्ध एक केवल निज के जीवन के साथ ही होता, तो भी इन्हे न लिखता, लेकिन जो पीडा सार्वजनीन है, सार्वभौमिक है और सर्व कालीन है, उसे मै छिपा नही सकता ! शैल के साथ मेरा विवाह हो गया। कई दिन तक सम्बन्धियो और मित्रो, परिचतो और व्यवहारियों, सार्वजनिक क्षत्र के अधिनायको और राजकीय अधिकारियो के अलग-अलग प्रीति-भोज चलते रहे। बैण्ड और शहनाई ही नहीं, सगीत समारोह हुए और सजधज के साथ नाटक भी खेले गए। इन सबके बीच शैल का हास-विलास भी चलता रहा। दिन भर और रात को भी नौ-दस बजे तक शैल फूली-फूली फिरती रही। शामियानो, तम्बुओं, कमरो, आँगन और दालानों, छत और छज्जो पर शैल के उत्फुल्ल आनन की शोभा नाना प्रकार के वस्त्राभूषणो से सुसज्जित, घर भर में डोलने फिरने के नव-नव प्रकारों से भरे दृश्य हँसी और मनोविनोद के छींटे वह सुनती और सँभालती रही और मैने भी उसको अपना बना कर जो आनन्द मन्दाकिनी अपने जीवन में प्रवाहित होते देखी, उसकी मैने कभी कल्पना भी न की थी। किन्तु इन सबके बाद जब आमोद-प्रमोद की बाढ़ समाप्त हुई और मेरी जीवन सरिता समतल पर आकर साधारणरूप से बहने लगी, तो एक दिन शैल को न जाने क्या हो गया ! मै ज्यों ही रात को इधर-उधर से घूम कर नौ-दस बजे लौटा, तो घर में प्रवेश करते ही भाभी ने बतलाया—"अरे सतीश, जरा बहू के पास तो जाकर देख, आज उसकी

तबीयत बहुत खराब है।"

भाभी की इस बात को सुनकर मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे नियति ने तान कर मेरी कनपटी पर एक चाटा जमा दिया है। मैं तुरन्त शैल के पास जा पहुँचा। वह पलँग पर चुपचाप पड़ी हुई थी। बायाँ हाथ उसका आधे मस्तक और एक आँख पर था। सुवासित केश-गुच्छ अब बिखर गया था और वह अपने शरीर के ऊपर एक मुलायम तूश हुए थी। कमरे के दरवाजे सब बन्द थे। केवल मुख्य द्वार का एक पट और रोशनदान खुले हुए थे। एक खिडकी भी खुली थी, जो दूसरे कमरे से सम्बन्धित थी। सिर की ओर जो खि की बन्द थी, उसका एक किवाड़ अधखुला था। 'वहाँ धप बत्ती मन्द-मन्द धूम्र शिखाओं के साथ सौरभ बिखेर रही थी। उस नीरव रजनी में पलँग पर चुपचाप पड़ी शैल पिछले सप्ताह की चहल-पहल और मृदुल गुञ्जन का आभास जैसे अब तक दे रही थी।

उसके पास ही मेरा पलँग भी बिछा हुआ था और विगत रातों की अनेक पावन स्मृतियाँ अपनी दृश्यात्मक सत्ताओं को अब तक मेरे मानस पर मूर्तिमान कर उठती थीं। मैं पलँग के ऊपर ही उसके पास बैठ गया और मैंने उससे पूछा—"कैसी तबियत है शैल ?"

शैल, बहुत धीरे-धीरे, एक एक शब्द रुक-रुक कर कह रही थी—"तबीयत अभी तक जरूर गड़बड़ थी, पर अब बिलकुल ठीक हो गई है ! ·· मैं कुछ जानती न थी।···और बहुत-सी बातें तो मैं भूल ही गई थी। ··ऐसी बातें जो भूलने की नहीं होतीं ! मगर···अब···वे ·· स·· ब···इकट्ठी···होकर·· मुझे· फिर···याद·· हो ··· आई ··· है ! मगर···मुझे· किसी···से···कोई·· उलहना···नहीं है । ··· मगर··· मुझको···कुछ हो···जाय, तो···तुम···दुखी न होना !"

शैल का इतना कहना था कि मैंने उसके उसी हाथ को अपने दाहने हाथ में थाम लिया, जो अब तक उसके मत्थे पर टिका हुआ था।

मुझे ऐसा मालूम हुआ, वास्तव में ज्वर बहुत अधिक है। इसलिए उसके कथन मे निराशा बोल रही है। मै शैल को उसी दशा में छोड कर तुरन्त फोन पर जा पहुँचा और डाक्टर दास से कह दिया—"देखिए, दास बाबू! आप कृपा करके तुरन्त चले आइए! शैल की तबीयत थोड़ी नही, बहुत गडबड है! यहाँ तक कि 'डिलीरियम'-सा मुझे तो मालूम पडता है।"

उन्होने उत्तर दिया—"आप चिन्ता मत कीजिए। मै इस समय एक ऑपरेशन करने को बिलकुल तैयार हूँ। और मरीज के पास जा ही रहा हूँ। मुझे दस मिनट से ज्यादा इसमे नही लगेगे और मै तुरन्त चल दूँगा।"

डॉक्टर साहब के इस उत्तर को सुनकर मेरा कलेजा धक् से हो गया। मेरे मन मे आया कि क्यों न मै उनसे यह कह दूँ कि डॉक्टर साहब आप इस ऑपरेशन को भी छोड दीजिए और जो पैसा आप चाहेंगे, मै दे दूँगा; मगर तुरन्त मुझे ध्यान आ गया कि हम सब भगवान् के आजानु बाहुओ की छाया के नीचे रहते और पलते हैं। इसलिए मानवता की रक्षा के नाम पर मै उस रोगी का अधिकार नही छीनूँगा।—और 'रिसीवर' मैने यथास्थान रख दिया।

मै शैल के पास लौट आया। मैने उसे सन्तोष देते हुए कहा—"मैने डॉक्टर साहब को बुलाया है। वह आ रहे है। तुम्हारी तबीयत ठीक हो जायगी मिनटों में। चिन्ता मत करो, धीरज रक्खो!"

मेरी बात सुन कर शैल पहले मुस्कराई फिर गम्भीर हो गई। मै फिर उसके पास ही पलँग पर बैठ गया। इतने में भाभी आ गईं और मै उठ कर खडा हो गया और अलग कुर्सी पडी थी, उस पर बैठ गया। भाभी ने कहा—"बैठौ रहो, बैठे रहो, सकोच मत करो!" और भाभी फिर उसी स्थान पर, उसी जगह बैठ गईं, जहाँ मै पहले बैठा हुआ था।

भाभी ने पूछा—"अब कैसा जी है शैल ?"

शैल की आँखे चढी हुई थी और उसका दायाँ हाथ मस्तक पर रक्खा हुआ था। वह बोली—"अब धीरे-धीरे जी ठीक होता जा रहा है; मैने उन्हे बहुत समझाया है, बहुत विनय की है, चरणों मे सिर रख कर रात की रात मै रोती रही हूँ · मगर देखो, वह देखो, वो दूर खड़े हुए मुझसे कह रहे है कि तुम अब श्रीमती विश्वास नही हो, अब तो तुम श्रीमती अविश्वास हो। इसलिए दीदी, तुम मेरे कहने-सुनने का बुरा न मानना और जब मै चली जाऊँ, तो मुन्ना को भी यह न बताना कि मैं कहाँ चली गई हूँ। तुम उससे कह देना कि मै मसूरी चली गई हूँ और मैं फिर आ जाऊँगी! दद्दा कहाँ गए है? क्या वे मुझे आशीर्वाद नही देंगे? कोई दौडो, कोई बुलाओ उनको! जल्दी करो! यात्रा मे देर नही की जाती! · ·अरे· · यह मै क्या देखती हूँ? दीदी, जब तुम मेरे सामने रो पडी हो, तब मेरे परोक्ष मे अपने जी को कैसे सँभालोगी? अरे, दद्दा को बुलाओ दीदी, जल्दी करो!"

शैल की इन बातो का भाभी पर कुछ ऐसा प्रभाव पडा कि वह कमरे से बाहर चली गईं और मै सोचने लगा कि इनको बाहर भेज देने के लिए ही शैल ने ऐसा प्रयोग किया है। इसलिए मुझे थोड़ी प्रसन्नता हुई। पर भाभी का बाहर जाना था कि शैल बोली—"देखो सतीश बाबू, मेरे प्रियतम, तुम एक दिन के लिए भी, एक क्षण के लिए भी, दुखी न होना! तुम यहाँ आओ, मेरे पास बैठो।" मै इतनी जल्दी सब सोच भी न पाता था, जितनी जल्दी शैल एक के बाद दूसरी बात कह डालती थी। कभी वह पैर पटकती, कभी वह हाथ ही मत्थे पर दे मारती और कभी बड़ी शक्ति के साथ उठ कर भाग जाने की भी चेष्टा करती। एक बार जब वह उठ कर बैठ गई और खडी होने को हुई और साथ ही बोली—"मुझे जाने दो, मुझे जाने दो, पकडो मत,

हट जाओ, मेरे सामने से शरम करो, शरम करो, देखो वह सामने खडे खडे है ! क्या कहेगे वे अपने मन मे ? जो कुछ अब तक उन्होने कह डाला है, कलक के वे धब्बे ही ''ई मै नही धो पाऊँगी' 'एक, दो,''' तीन, ''चार, ' सात जन्म तक !" और इसके बाद जब मैने उसे लेटा दिया, तो उसकी आँखें झप गई ! अब मेरी आँखो के सामने से परदा हट चुका था । सारी स्थिति मेरी समझ में आ गयी थी । मै उस समय ऐसी परिस्थिति में नही था कि आँसू मेरी आँखो मे आ सकते । कोई रह-रह कर मेरे भीतर से बोल उठता था—"शैल ठीक कहती है ! क्योंकि वह एक पतिप्राणा नारी है । मिस्टर विश्वास उसको बहुत चाहते रहे होगे ! इतना अधिक, जितना मै भी नही चाह सका । इसी-लिए आज उसकी पवित्र अन्तरात्मा क्रन्दन कर उठी है ।" अब मुझे ऐसा मालूम पडा कि विवाह के लिए उसके मन में, लोभ और मोह उत्पन्न करके मैने कोई बड़ा पाप कर डाला है । पश्चिमी सभ्यता के जाल में फँसकर हम आदर्शों से कितने दूर जा पहुँचे है ? विधवा-विवाह का ढिढोरा पीटनेवाले, समाज के महन्त और मुखिया आकर आज मेरी शैल को देखें और उससे पूछें—"कहाँ है वह यौन-लिप्सा और बुभुक्षा, जिसकी तृप्ति के वे निरन्तर नारे लगाया करते है ?"

अब मुझे मालम हुआ कि शैल की अतरात्मा में जिस देवी का निवास था, उसके साथ मैने कितना अन्याय और अपकार किया है ! मै तो वास्तव मे उसे समझ ही नहीं सका

इतने में भइया को लेकर भाभी आ पहुँची । उधर शैल ने भी आँखें खोल दीं !—और वह फिर चीत्कार कर उठी—"द'''द्दा'''! दी'''दी'''! आ'''ग'''ए ? मुन्ना खेल रहा होगा ? उसे खेलने ही दो !"

मैने लक्ष किया, शैल कोई वाक्य बहुत धीरे से कहती है और कोई बहुत जोर से ! भावनाएँ उसके भीतर से इतनी जल्दी-जल्दी निकलती

है कि वह उन्हें सँभाल नहीं पाती। कोई-कोई वाक्य तो वह बहुत रुक-रुक कर कहती थी। इतने मे वह बोल उठी—"मुन्ना का जब विवाह हो, तब तुम यह मेरा आधा रुपया उसको दे देना और आधा उसकी बहू को। मगर लाओ अभी मै हस्ताक्षर कर सकती हूँ! हे प्रभू! जब मैं हस्ताक्षर करने बैठूँ, तो मेरे हाथ पर तुम अपना वही हाथ रख देना, जो सदा तुमने मेरे सिर पर रक्खा है! अरे, चेक बुक लाओ दद्दा! नहीं दीदी, वह तो तुम्हारे पास है! लाओ, जल्दी करो, जल्दी करो!"

शैल का इतना कहना था कि मुझे जान पड़ा, भइया को भी सन्देह हो गया है। उन्होंने भाभी को संकेत किया और भाभी तुरन्त चेक-बुक ले आई।

शैल ने दो चेकों पर हम सब लोगों के देखते-देखते हस्ताक्षर कर दिए। उसका हाथ ज़रा भी कम्पित नहीं हुआ। और इसके बाद वह बोली—"अब तुम मुझे आशीर्वाद दो दद्दा! कुछ ऐसा, कि जिनके साथ मैंने विश्वासघात किया है, वे अब तो मेरा विश्वास कर लें! अरे··· आज मैं यह क्या देख रही हूँ?···आपकी आँखों में और आँसू? आप तो देवता हैं! ठहरिए, मैं आपके आँसू पोछ देती हूँ! मैं भगवान से प्रार्थना करूँगी कि मैं तुरन्त मुन्ना की बहन बन कर दीदी की कोख में जन्म लूँ! और देखो दद्दा, मैं तुम्हारे छोटे भइया को अब तुमको और दीदी को सौंपे जा रही हूँ! मैं अब जा रही हूँ!" और इतना कहते-कहते शैल फिर अचेत हो गई! हाँ उसकी आँखों की कोरों से आँसू ढुलक जाते थे।

इतने में डाक्टर दास आ गए। आते-आते उन्होंने कहा—"आप लोग चिन्ता न करें। अभी सब ठीक होजायगा।" और उन्होने तुरन्त शैल का टेम्परेचर लिया। स्टेथसकोप का भी प्रयोग किया। तुरन्त एक इन्जेक्शन दिया।

इसके बाद, क्षण भर के लिए, उसने फिर आँखे खोल दी। कुछ ऐसी बात हुई कि उस समय मैं बिलकुल शैल के सामने पड गया और उसके मुँह से निकल गया—"तुम मेरी ओर क्या देखते हो? अब तुमको देने के लिए मेरे पास कुछ भी बाकी नही रहा! दीदी तुमको तो मालूम है? मैंने अपना कुछ भी तुमसे नही छिपाया है, दद्दा तुम इस बात को अधिक समझ सकोगे, कि जो कुछ मुझे देना था, वह सब भी मैं दे चुकी। अब मेरे पास कुछ भी 'देय' नही रह गया है। मैं खाली हाथ आई थी और खाली हाथ जा रही हूँ। लाओ दद्दा, अपने पैर यहाँ रख दो, मैं उनकी रज अन्तिम बार अपने मस्तक से लगा लूँ!· हाँ अब दीदी तुम भी मुझे अवसर दो, मेरे सिर पर हाथ रक्खो। एक बार और मुझे गले लगा लो!" और भाभी ने जब उसे कण्ठ से लगाया, तो वे अपने आँसू न सँभाल सकी।

मैं देख रहा था कि मेरा सर्वस्व मेरे सामने से जा रहा है, मेरा प्राण मुझसे विलग हो रहा है। लेकिन मुझको जान कुछ ऐसा पड़ा, मानो मैं एक नाटक देख रहा हूँ, यद्यपि नाटक मेरी ही जीवन-कथा का है।

डाक्टर और वैद्यो का ताँता लगा रहा। वे आते और लम्बी साँस लेकर चले जाते। डाक्टर दास पहले लगभग एक घण्टे तक मौन रहे। जब बारह का समय हो गया, तब वे बोले—"मेरी जिन्दगी में इस टाइप का यह पहला केस है। आज तक इतना 'हाई टेम्परेचर' मैंने किसी मरीज़ में नही पाया। आपको मालूम नही, शैल का टेम्परेचर इस वक्त 'हण्ड्रेड एण्ड फाइव' है। जिस वक्त मैं आया था, उस वक्त तो 'हण्ड्रेड एण्ड नाइन' था। बरफ का प्रयोग इसी तरह जारी रखिए।" थोडी देर बाद जब उन्होने फिर टेम्परेचर लिया तो वह एक सौ दो पर उतर आया मगर शैल का बोलना तो अब सदा के लिए बन्द हो चुका था। यद्यपि कभी-कभी मेरे मन मे एक आशा-दीपक अब भी

जग उठता था—'ऐसा कैसे हो सकता है कि शैल इतनी जल्दी इस जगत से विदा हो जाय ?'

रात बीतने को हुई। वह रात स्वयं भी जैसे मृत्यु की भयकर छाया से कम्पित होकर सिसकियाँ भरती रही! वह ऐसी भयानक रात थी कि उसका जब कभी स्मरण आता है, तो मेरे शरीर का रोम-रोम दहल उठता है और मेरा प्राण हिल जाता है। यद्यपि मैं यही सोचता रहता हूँ कि शैल का पूरा परिचय तो मुझे उसी दिन मिला था। उसका जीवन भी जो बात मुझसे नही कह सका था, वह मृत्यु की घड़ियों ने, निमेषमात्र मे, कह डाली थी। आज भी मैं यही अनुभव करता हूँ कि शैल मरी नहीं है, इसी संसार मे कही छिपी बैठी है। केवल मेरे पास वे आँखे नही है, जिनके द्वारा मैं उसे देख सकूँ! आज भी रात्रिकी नीरवता में जब दूर, बहुत दूर कही से करुण संगीत की कोई स्वर-लहरी आकर मेरे कानों से टकराती है, तो जान पड़ता है—यह मेरी शैल का ही स्वर है! ··वह मरी नही ··किसी नीरव, निर्जन और अदृश्य प्रान्त मे अब भी गा रही है रात दिन वह गाती ही रहती है !

उसके बाद फिर अपने आप, धीरे-धीरे, एक, दो, तीन, दस दिन बाद सब कुछ वैधानिकरूप से हुआ और होता रहा। संसार का क्रम जो ठहरा। दुख के दिन भी आदमी हँस-हँस कर काट देता है।

अन्त में तेरहवे दिन मैंने इस घटना का एक 'रहस्य' पा लिया। इसी कमरे मे जहाँ शैल उस दिन प्रलाप कर रही थी, उसमें एक उसका एकान्त—निजी कक्ष था, जिसमें वह वस्त्र बदलती और शृंगार करती थी। उसी मे मिस्टर विश्वास का एक बडा तैलचित्र लगा हुआ था। पहले तो उस पर झीने कागज का एक परदा पडा रहता था, पर आज झीना कागज नीचे फटा पडा था। उसके अन्दर प्रवेश करने पर पहले तो मैं उस चित्र को एक टक देखता रह गया, पर फिर मेरे मन मे

आया, इसी चित्र के बहाने शैल की पवित्र अन्तरात्मा का प्राण डोल गया था। इसी के आघात को वह सहन न कर पाई थी। सच है, मनुष्य स्वय नहीं जानता कि किस समय उसी के जीवन का छिपा हुआ कोना उसके समक्ष इतना मूर्तिमान और सप्राण हो उठेगा कि वह अपनी ही भावनाओं के दारुण आघात से मर्माहत हो, मृत्यु के गहन गह्वर में डूब जायगा, समा जायगा।

मैंने जब यह डायरी प्रारम्भ की थी, तब मेरे जीवन में एक तूफान आ गया था। आज भी तूफान आ गया है। दिशाएँ बवण्डर से धूमिल होकर भारी एव बोझिल हो उठी है। विषाद की एक कालिमा-सी गगन के मुख पर, लिप-पुत कर, धीरे-धीरे, गहरी होती जा रही है?